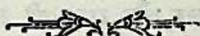
ओ३म्

ऋग्वेद-विषय-सूची

(प्रथम खण्ड)



प्रथम-मण्डलम् । प्रथमोऽष्टकः ।

प्रथमोऽध्यायः ।

सूक्त १ (पृष्ठ १-४)—(१) परमेश्वर की स्तुति, पक्षान्तर में राजा एवं विद्वान्, भौतिक अग्नि, यज्ञाग्नि; (२) उपास्यदेव परमेश्वर; (३) परमेश्वर-स्तुति से वीर सन्तान-युक्त धन की प्राप्ति; (४) सृष्टिरूप यज्ञ में व्यापक ईश्वर; (५) सर्व-प्रकाशक; (६) दानशील उपासक का कल्याणकारी; (७) परमेश्वर एवं विद्वान्; (८) सृष्टि-रक्षक; (९) कल्याणदाता ईश्वर ।

सूक्त २ (पृष्ठ ४-८)—(१) ज्ञानस्वरूप ईश्वर; (२) विद्वानों द्वारा स्तुत्य ईश्वर; (३) वेदवाणी; (४) सूर्य एवं वायु के समान ईश्वर; (५) सूर्य एवं वायुरूप गुरु तथा आचार्य; (६) दोनों के द्वारा शिष्य का उपनयन; (७) मित्र-सूर्य और वरुण-वीर पुरुष की प्राप्ति; (८) मित्र-वरुण रूपी न्यायाधीश और राजा; (९) दोनों के द्वारा बल का धारण ।

सूक्त ३ (पृष्ठ ८-१२)—(१) स्त्री और पुरुषरूपी अश्वियों का वर्णन; (२) कर्मकुशल एवं नायक अश्वी; (३) दुःख तथा शत्रुनाशक अश्वी; (४) ऐश्वर्यवान् राजा; (५) सूर्य के समान तेजस्वी राजा; (६) इन्द्रतुल्य वीर पुरुष; (७) विश्वे देवा-समस्त विद्वान् पुरुष; (८) विद्वानों द्वारा ज्ञान-प्राप्ति; (९) यज्ञ सत्संग आदि का सेवन; (१०-१२) वेदवाणी का वर्णन ।

सूक्त ४ (पृष्ठ १२-१५)—(१) गौ के दृष्टान्त से विद्वान् और परमेश्वर की उपासना; (२) राष्ट्र का रक्षक राजा; (३) ज्ञानियों द्वारा उपदिष्ट ईश्वर और राजा; (४) आत्मज्ञानी विद्वान् की प्राप्ति; (५) निन्दक जन दूर जावें; (६) विद्वान् तथा राजा की शरण में जाना; (७) अश्व के दृष्टान्त से राजा की नियुक्ति; (८) राजा द्वारा राष्ट्र की रक्षा; (९) ऐश्वर्यवान् की प्रार्थना; (१०) इन्द्ररूपी ईश्वर और राजा की स्तुति।

सूक्त ५ (पृष्ठ १५-१८)—(१) ईश्वर-स्तुति करना; (२) वरणीय ऐश्वर्य का स्वामी ईश्वर; (३) बुद्धिदाता ईश्वर; (४) ऐश्वर्यवान् राजा; (५) सदाचारी राष्ट्रकर्मी पुरुष; (६) ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ राजा; (७) सेनापतियों से युक्त राजा; (८) वाणियों द्वारा ईश्वर महिमा का गान; (९) पौरुष-युक्त राजा; (१०) ईशान राजा।

सूक्त ६ (पृष्ठ १८-२१)—(१) विद्वानों द्वारा ईश्वर का ध्यान; (२) प्राण और अपान को वश में करना; (३) परमेश्वर तथा राजा का वर्णन; (४) वायुओं द्वारा आकाश में जल का धारण; (५) राजा द्वारा नाना ऐश्वर्य-प्राप्ति; (६) स्तोता द्वारा ईश्वर-स्तुति; (७) राजा और सेनापति; (८) सेना-सहित सेनापति का वर्णन; (९) वायु; (१०) पदार्थों का संयोग-विभाग-कर्त्ता सूर्य।

सूक्त ७ (पृष्ठ २१-२४)—(१) ऐश्वर्यवान् ईश्वर की पूजा; (२) संवत्सर तथा तप से युक्त सूर्य; (३) ईश्वर द्वारा सूर्य की स्थापना; (४) परमेश्वर तथा राजा द्वारा प्रजा-रक्षा; (५) प्रजास्नेही राजा का स्मरण; (६) अभीष्टफल दाता परमेश्वर; (७) ईश्वर-स्तुति के मन्त्र श्रेष्ठ हैं; (८) वृषभ के दृष्टान्त से ईश्वर और राजा का वर्णन; (९) पञ्चों का राजा इन्द्र है, (१०) मोक्षमय ईश्वर।

सूक्त ८ (पृष्ठ २४-२७)—(१) राजा एवं परमेश्वर; (२) अश्वबल से शत्रु का विनाश; (३) शस्त्रास्त्रों का ग्रहण; (४) सेना की वृद्धि; (५) महान् राजा परमेश्वर; (६) आदर-योग्य पुरुष; (७) आदर-योग्य राजा; (८) पूजनीय

ईश्वर वाणी; (९) जीवरक्षक ईश्वर की विभूतियां; (१०) मन्त्रों में ईश्वर के गुणों का वर्णन।

सूक्त ९ (पृष्ठ २८-३०)—(१) सूर्य के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन; (२) अग्नि तथा जल का उपयोग; (३) ईश्वर द्वारा मनुष्यों को हर्षित करना; (४) वेदवाणी द्वारा प्रतिपादित सर्वोच्च ईश्वर; (५) सम्पत्ति-दाता परमेश्वर; (६) उत्तम मार्ग में प्रेरक ईश्वर; (७) पूर्ण आयु का दाता ईश्वर; (८) सुख, ऐश्वर्यदाता ईश्वर; (९) वेदमन्त्रोपदेष्टा ईश्वर; (१०) शत्रु द्वारा प्रशंसित राजा और सेनापति।

सूक्त १० (पृष्ठ ३१-३५)—(१) परमेश्वर की महिमा; (२) काम्य-सुख-वर्षक ईश्वर; (३) स्तुतिवाणियों का श्रोता ईश्वर; (४) ईश्वर और आचार्य, (५) उपदेष्टा आचार्य; (६) दानदाता शब्दरूप परमेश्वर; (७) ईश्वर और गुरु; (८) सूर्य के दृष्टान्त से ईश्वर-वर्णन; (९) स्तुति-श्रोता ईश्वर; (१०) राजा और ईश्वर; (११) नवजीवन-दाता ईश्वर; (१२) वेदवाणी द्वारा ईश्वर-वर्णन।

सूक्त ११ (पृष्ठ ३५-३८)—(१) वेदवाणियों द्वारा ईश्वर-महिमा; (२) परमेश्वर, राजा और सेनापति; (३) ज्ञान और दान का दाता ईश्वर; (४) इन्द्ररूपी ईश्वर; (५) अखण्ड पराक्रमी राजा; (६) शूर राजा और परमेश्वर; (७) अधार्मिकजनों का नाशक राजा; (८) राजा और परमेश्वर।

सूक्त १२ (पृष्ठ ३८-४२)—(१) परमेश्वर का वरण; (२) ज्ञानी का सत्कार; (३) परमेश्वर और विद्वान्; (४) विद्वान् और राजा; (५) अग्नि-तुल्य राजा; (६) अग्नि-तुल्य विद्वान्; (७) अग्निरूप परमेश्वर; (८) परमेश्वर और राजा; (९) पावक परमेश्वर; (१०) अन्नदाता ईश्वर; (११) परमेश्वर और राजा; (१२) तेजस्वी परमेश्वर।

सूक्त १३ (पृष्ठ ४२-४७)—(१) परमेश्वर और विद्वान्; (२) क्रान्त-दर्शी पुरुष, (३) मधुजिह्व विद्वान्; (४) ज्ञानवान् पुरुष; (५) मनीषी विद्वान्; (६) विस्तृत द्वारों का निर्माण; (७) रात और दिन का उपयोग; (८) यज्ञ

में विद्वानों की नियुक्ति; (९) इडा, सरस्वती और मही नामक तीन देविय; (१०) त्वष्टा परमेश्वर का स्मरण; (११) वनस्पति; (११) 'स्वाहा' का वर्णन।

सूक्त १४ (पृष्ठ ४७-५१)—(१) सर्वव्यापक ईश्वर; (२) विद्वान् पुरुष; (३) विद्वान् द्वारा उपदेश; (४) विद्वानों द्वारा वीरों का पालन; (५) विद्वानों द्वारा ईश्वर-स्तुति; (६) परमेश्वर; (७) अग्निरूप ईश्वर; (८) वषट्कार का वर्णन; (९) होता पुरुष; (१०) ज्ञानी पुरुष-जीव; (११) मनु होता; (१२) विद्वानों द्वारा शक्ति-संयोजन।

सूक्त १५ (पृष्ठ ५२-५६)—(१) सूर्य द्वारा जलपान; (२) विद्वान् का वर्णन; (३) आत्मतत्त्व का धारक; (४) अग्निरूप ज्ञानी; (५) इन्द्ररूप आत्मा; (६) राजा और मन्त्री; (७-१०) द्रविणोदा पुरुष; (११) पति-पत्नी रूप अश्वियों का वर्णन; (१२) दानी पुरुष।

सूक्त १६ (पृष्ठ ५६-५९)—(१) आत्मा और ईश्वर; (२) आत्मा को धारण करनेवाली नाड़ियां; (३) ऐश्वर्यशाली परमात्मा; (४) सूर्य के दृष्टान्त से परमात्मा का वर्णन; (५) मृग के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन; (६) ईश्वर द्वारा सूर्यादि का धारण; (७) ईश्वर द्वारा जीव को शरण में लेना; (८) वायु के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन; (९) परमेश्वर और राजा।

सूक्त १७ (पृष्ठ ६०-६२)—(१-३) राजा और सेनापति; (४) विद्वानों का सत्सङ्ग; (५-९) इन्द्र तथा वरुण रूपी परमात्मा।

सूक्त १८ (पृष्ठ ६२-६५)—(१) ब्रह्मणस्पति परमेश्वर; (२) वैद्य के समान सुखदाता ईश्वर; (३-५) ब्रह्मणस्पति परमेश्वर; (६) सभापति की प्राप्ति; (७) यज्ञसाधक ईश्वर; (८) सभापति के दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन; (९) मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय ईश्वर।

सूक्त १९ (पृष्ठ ६५-६८)—(१) विद्वान् और ईश्वर; (२-३) भूतों सहित परमेश्वर का प्रकट होना; (४) सूर्य-समान तेजस्वी सम्राट्; (५) वीर पुरुषों का वर्णन; (६) सूर्य के दृष्टान्त से नायक पुरुष का वर्णन; (७) सूर्य एवं विद्युत्; (८) मरुतों के साथ सूर्य का आगमन; (९) राजा का आगमन।

द्वितीयोऽध्यायः।

सिंचाई द्वारा अन्न-प्राप्ति; (१९) अमृतमय जल; (२०) रोगनाशक जल, (२१) औषध-सेवन; (२२) असत्यवचन को दूर करना; (२३) जल तथा अग्नि; (२४) परमेश्वर और आचार्य।

सूक्त २४ (पृष्ठ ८८-९४)—(१) जीव द्वारा पिता-माता का दर्शन; (२) जीवों द्वारा प्रभु-नाम-स्मरण; (३) उत्पादक सविता; (४) परमेश्वर, (५) प्रभु एवं राजा; (६) प्रभु का अपारबल; (७) राजा वरुण-सूर्य; (८) राजा के कर्तव्य; (९) राजा और परमेश्वर; (१०) आकाश-स्थित नक्षत्रगण; (११) वरुण-ईश्वर; (१२-१४) शुनःशेप अर्थात् सुखाभिलाषी मुमुक्षु-बद्ध जीव की प्रार्थना; (१५) वरुण द्वारा पाशछेदन।

सूक्त २५ (पृष्ठ ९४-१०१)—(१) वरणीय परमेश्वर; (२) हम किसी पर आघात न करें; (३) सुख के लिये ईश्वर-स्तुति; (४) पक्षियों के दृष्टान्त से ज्ञानी पुरुष का वर्णन; (५) राजा की नियुक्ति; (६) गायक के दृष्टान्त से साधक का वर्णन; (७) राजा और परमेश्वर; (८) परमेश्वर और विद्वान्; (९) वरुण द्वारा वायु के मार्ग का ज्ञान; (१०) राज-नियमों का धारक राजा; (११) ज्ञानी पुरुष; (१२) परमेश्वर विद्वान् और राजा; (१३) सूर्य के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (१४) द्रोह के अयोग्य राजा और परमेश्वर; (१५) ईश्वर सूर्य और मेघ; (१६) गौ के दृष्टान्त से बुद्धियों का वर्णन; (१७) गुरु और शिष्य; (१८) परमेश्वर का दर्शन; (१९) परमेश्वर-स्तुति; (२०) विद्वान्, परमेश्वर और राजा; (२१) उत्तम, मध्यम, अधम, बन्धनों का नाश।

सूक्त २६ (पृष्ठ १०१-१०४)—(१) विद्वान् राजा और परमेश्वर; (२) विद्वान् द्वारा वेदवाणी का उपदेश; (३) पिता के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (४) न्यायाधीश; (५) विद्वान् द्वारा वेदवाणी का श्रवण; (६) विद्वान् का आदर ईश्वर का आदर; (७) विश्वपति राजा हमारा प्रिय हो; (८) सूर्य-किरणों के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (९) अमृत और मर्त्य; (१०) सेना-पति और राजा।

सूक्त २७ (पृष्ठ १०४-१०८)—(१) प्रतापी सम्राट्; (२) वीर्यवान् पुरुष राजा हो; (३) राजा या सभापति; (४) परमेश्वर और विद्वान्; (५) प्रथम, द्वितीय, तृतीय कोटि के यज्ञों की प्राप्ति; (६) ऐश्वर्य तथा ज्ञानराशि की प्राप्ति; (७) विद्वान् और राजा (८) सेनापति का प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं; (९) प्रजा का द्रष्टा राजा; (१०) रुद्ररूपी वीर; (११) धूमकेतु के समान वीर पुरुष; (१२) सूर्य के समान दीप्त राजा; (१३) उत्तम पुरुषों की कीर्त्ति नष्ट न करें।

सूक्त २८ (पृष्ठ १०८-११२)—(१-६) उलूखल के दृष्टान्त से विद्वान् के कर्त्तव्य; (७) दो अश्वों के दृष्टान्त से स्त्री-पुरुष के कर्त्तव्य; (८) ऊखल और मूसल के दृष्टान्त से स्त्री-पुरुष का वर्णन; (९) नायक राजा द्वारा विद्वान् का उच्च पद पर स्थापन।

सूक्त २९ (पृष्ठ ११२-११४)—(१-७) राजा और परमेश्वर से ऐश्वर्य-प्रार्थना।

सूक्त ३० (पृष्ठ ११५-१२२)—(१) कृषक के दृष्टान्त से वीर का वर्णन; (२) जल के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (३) समुद्र के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (४) कबूतर के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (५) वीर्यवान् पुरुष; (६) शतक्रतु राजा और परमेश्वर; (७) परमेश्वर और सेनापति; (८) सेना की प्राप्ति; (९) नायक परमेश्वर; (१०) पुरुहूत परमेश्वर और राजा; (११-१२) सोम या राजा; (१३) ऐश्वर्यवती स्त्रियां; (१४-१५) चक्र के दृष्टान्त से राजा और परमेश्वर का वर्णन; (१६) दानदाता इन्द्र; (१७) अश्विनौ-सूर्य और पृथिवी; (१८-१९) अश्वियों का रथ; (२०) ऊषा के समान ईश्वर-शक्ति; (२१) अज्ञात ईश्वर-शक्ति; (२२) ज्ञान-प्रकाशिका शक्ति के साथ राज-शक्ति का वर्णन।

सूक्त ३१ (पृष्ठ १२२-१३१)—(१) प्रथम ईश्वर के नियम में रहने वाले विद्वान्; (२) कवि विभु एवं मेधावी ईश्वर; (३) ईश्वर का महान् सामर्थ्य; (४) ईश्वर और आचार्य का कर्त्तव्य; (५) वृषभ और पुष्टिवर्धन

रहैश्व (६) नायक सेनापति; (७) श्रेय और प्रेय का दाता ईश्वर; (८) कर्मशील पुरुष की नियुक्ति; (८) जागरणशील परमेश्वर; (१०) आचार्य परमेश्वर और राजा; (११) राजा के समान ईश्वर भी प्रजापालक है; (१२) परमेश्वर, राजा और सभाध्यक्ष; (१३) चतुरक्ष ईश्वर; (१४) राजा, विद्वान् और सभाध्यक्ष; (१५) साधक का रक्षक ईश्वर; (१६) आप्त और व्यापक परमेश्वर; (१७) तेजस्वीजनों से युक्त ईश्वर; (१८) ईश्वर, विद्वान् और राजा।

सूक्त ३२ (पृष्ठ १३१-१४०)—(१-१५) राजा और सेनापति के पराक्रमों का इन्द्ररूप से वर्णन। सूर्य, वायु और मेघों के वर्णन से वृष्टि-विद्या का रहस्य, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर के वध का रहस्य।

तृतीयोऽध्यायः।

सूक्त ३३ (पृष्ठ १४०-१४८)—(१) विद्वानों द्वारा प्रभु-शरण-प्राप्ति; (२) बाज के दृष्टान्त से ईश्वर के समीप जाने का वर्णन; (३) सेनाओं का स्वामी राजा; (४) अधर्मियों का नाशक राजा; (५) वायु के समान राजा; (६) ऐश्वर्यवान् राजा; (७) प्रजा के नाशक पुरुष का नाश; (८) राष्ट्र का तेजस्वी स्वामी; (९) सूर्य के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (१०) सूर्य के दृष्टान्त से राष्ट्रपति का वर्णन; (११) शत्रुहन्ता राजा; (१२) शुष्ण और इलीविश का रहस्य; (१३-१५) वीर योद्धा और वृषभ की तुलना।

सूक्त ३४ (पृष्ठ १४८-१५४)—(१) विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य; (२) मधुवाह त्रिचक्र रथ का रहस्य; (३) आत्मा, शरीर और मनका सेचन; (४) स्त्री-पुरुषों द्वारा बार-बार किये जाने वाले कर्त्तव्य; (५) सूर्य-पुत्री प्रभा के दृष्टान्त से राजपुत्री प्रजा का वर्णन; (६) स्त्री-पुरुषों द्वारा रोगनाशक उपाय करना; (७) आत्मा और वायु के दृष्टान्त से स्त्री-पुरुषों का वर्णन; (८) आहुति-योग्य अन्नादि पदार्थों का सम्पादन; (९) त्रिवृत त्रिचक्र रथ; (१०-१२) स्त्री-पुरुषों को उत्तम जल, अन्न आदि ऐश्वर्य-प्राप्ति का उपदेश।

सूक्त ३९ (पृष्ठ १७६-१८१)—(१) विद्वान्, सैनिक एवं व्यापार-कुशल पुरुष; (२) वीरों के शस्त्र स्थिर हों; (३) वीरों का आक्रमण सर्वत्र हो; (४) वीरों द्वारा शत्रुनाश; (५) मरुत् के समान वेगवान् वीर; (६) वीरों के प्रयाण से लोग डरें; (७) संकट-ग्रस्तों की रक्षा; (८) विद्वान् पुरुष एवं सैनिक; (९) विद्युत् के दृष्टान्त से विद्वानों का वर्णन; (१०) वीर एवं विद्वान् का वर्णन।

सूक्त ४० (पृष्ठ १८१-१८४)—(१) वेदज्ञ विद्वान् के कर्त्तव्य; (२) पुत्रों और शिष्यों द्वारा ब्रह्मचर्य व्रत का धारण; (३) वेदज्ञ ब्राह्मण; सूनृता स्त्री और राजसभा; (४) नायक पुरुष; (५) राजा, विद्वान् और न्यायाधीश; (६) वेदोपदेश तथा वेदाभ्यास का उत्तम फल; (७) राजा को कौन प्राप्त होता है? (८) राजा द्वारा शत्रुनाश कब होता है?

सूक्त ४१ (पृष्ठ १८४-१८७)—(१) वरुण, मित्र, अर्यमा नामक राज्याधिकारी; (२) बाहुबल से सुरक्षित मनुष्य; (३) राजा द्वारा शत्रु के दुर्गों का नाश; (४) आदित्य ब्रह्मचारी विद्वान्; (५) राजा एवं राज-कार्य; (६) पुत्ररत्न की प्राप्ति; (७) न्यायाधीश; (८) पीडक तथा निन्दक से बात न करना; (९) चार भय स्थानों का वर्णन।

सूक्त ४२ (पृष्ठ १८७-१९०)—(१-९) पूषा, पृथ्वी के तुल्य पोषक, प्रजापालक राजा के कर्त्तव्य, नाना प्रकार के दुष्ट पुरुषों का दमन, ऐश्वर्यों की याचना और सञ्चय।

सूक्त ४३ (पृष्ठ १९०-१९२)—(१-४) रुद्र, मित्र वरुण आदि राज्याधिकारियों का वर्णन; (५) सूर्य-समान परमेश्वर; (६) परमेश्वर वैद्य और राजा; (७) राजा द्वारा प्रजा की सहायता; (८) राजा द्वारा युद्ध; (९) राजा द्वारा प्रजा-प्राप्ति।

सूक्त ४४ (पृष्ठ १९२-१९९)—(१) ज्ञानी पुरुष द्वारा विद्वानों का धारण; (२) दूतरूप से विद्वान् का वर्णन; (३) दूत का वरण-चुनाव, (४) ज्ञानी पुरुष की समस्त कार्यों में नियुक्ति; (५) विद्वान् की स्तुति;

सूक्त ४८ (पृष्ठ २११-२२०)—(१) 'दिवो दुहिता' का रहस्य; (२) उषा-प्रभात वेला, राज्य संस्था; (३) उषा के आगमन पर होने वाले कार्य; (४) उषा काल में परमेश्वर का नाम स्मरण; (५) स्त्री के समान उषा; (६) नववधू के समान उषा; (७) नववधू द्वारा पितृगृह प्राप्ति; (८) सूनरी और मघोनी उषा; (९) पूर्व तथा पश्चिम से आनेवाली उषा के दृष्टान्त से कन्या का वर्णन; (१०) कन्या द्वारा वृद्धों के वचनों का श्रवण; (११) कन्या द्वारा अन्नादि की प्राप्ति; (१२) कन्या द्वारा उत्तम गुणों का धारण; (१३) कन्या द्वारा सौभाग्य-प्रदान; (१४) स्त्रियों द्वारा उपदेश; (१५) स्त्री द्वारा ऐश्वर्य-प्रदान; (१६) विदुषी स्त्री द्वारा हमारा संवर्धन।

सूक्त ४९ (पृष्ठ २२०-२२१)—(१-४) उषा के दृष्टान्त से कान्तिमती कन्या के कर्त्तव्यों का वर्णन।

सूक्त ५० (पृष्ठ २२१-२२७)—(१) सूर्य के दृष्टान्त से उत्तम पति का वर्णन; (२) स्त्री-पुरुष ऋतुकालाभिगामी हों; (३) अग्नि के दृष्टान्त से पुरुष का वर्णन; (४) सूर्य के समान परमात्मा; (५) परमेश्वर और विद्वान्; (६) वरुण-परमात्मा; (७) जन्मों का द्रष्टा परमेश्वर; (८-९) सूर्य के सप्त अश्वों का रहस्य; (१०) आत्मज्योति की प्राप्ति; (११) हृदय-रोग का नाशक सूर्य; (१२) पाण्डु रोग चिकित्सा तथा उसका आध्यात्मिक रहस्य; (१३) शत्रु का विनाश।

सूक्त ५१ (पृष्ठ २२७-२३५)—(१) विद्वान् पुरुष की स्तुति; (२) शतकर्मा सेनापति; (३) सेनापति और राजा; (४) इन्द्र द्वारा वृत्रवध का रहस्य; (५) ऋजिश्वा की रक्षा; (६) कुत्स की रक्षा, अतिथि के लिये शम्बर का नाश; (७) विद्वान् राजा और सेनापति; (८) आर्य एवं दस्यु; (९) शत्रुहन्ता राजा; (१०) राजा को ऐश्वर्य की प्राप्ति; (११) उशना-राजमन्त्री; (१२) राजसभा में राजा; (१३) वृषणश्व की सेना का रहस्य; (१४) शत्रुहन्ता इन्द्र का रहस्य; (१५) स्वराष्ट्र वृषभ का रहस्य।

सूक्त ५२ (पृष्ठ २३६-२४५)—(१) सुखवर्धक राजा का आदर; (२) इन्द्र द्वारा वृत्र वध का रहस्य; (३) गम्भीर राजा; (४) वीर पुरुष; (५) त्रिगुण सैन्य से युक्त सेनापति; (६) इन्द्र द्वारा वृत्र पर वज्र-प्रहार का रहस्य; (७) त्वष्टा ईश्वर; (८) ज्ञान का धारक परमेश्वर; (९) समृद्ध राष्ट्र का उपभोग; (१०) इन्द्र द्वारा वृत्र का शिरश्छेदन; (११) दशभुजि पृथिवी; (१२) सर्वत्र व्यापक ईश्वर; (१३) ईश्वर के समान कोई नहीं; (१४) अन्तहीन परमेश्वर; (१५) वृत्र-वध का रहस्य।

सूक्त ५३ (पृष्ठ २४५-२५१)—(१) ज्ञानदाताओं को बुरा वचन न कहना; (२) परमेश्वर और राजा; (३) विद्वान् की अभिलाषा नष्ट न हो; (४) प्रबल सेना द्वारा युद्ध; (५) सभाध्यक्ष–सेनाध्यक्ष; (६) सज्जन-रक्षक सेनापति; (७) नमुचि नामक मायावी का रहस्य; (८) शत्रु के दुर्गों का भेदन, (९-११) वीर सेनापति, राजा।

सूक्त ५४ (पृष्ठ २५१-२५८)—(१) मघवा परमेश्वर; (२) शचीपति परमेश्वर; (३) राजा का आदर; (४) शम्बर दानव के भेदन का रहस्य; (५-११) परमेश्वर और राजा के विविध कार्य।

सूक्त ५५ (पृष्ठ २५७-२६२)—(१-८) राजा द्वारा शस्त्रबल की वृद्धि, अनेक कर्त्तव्यों का पालन करना।

सूक्त ५६ (पृष्ठ २६२-२६६)—(१-६) राज, वीर पुरुष, सेनाध्यक्ष का वर्णन।

सूक्त ५७ (पृष्ठ २६६-२६८)—(१-६) राजा, राजपद, परमेश्वर, सेनापति का इन्द्र देवता के माध्यम से वर्णन।

सूक्त ५८ (पृष्ठ २६९-२७५)—(१) जीवों द्वारा जन्मान्तर ग्रहण; (२) अजर आत्मा; (३) बाल्य, यौवन और वार्धक्य में अपरिवर्तनीय जीवात्मा; (४) अग्निरूप से आत्मा का निरूपण; (५) जीव द्वारा भोग्य-पदार्थों में भ्रमण; (६) जीव का सात्त्विक जन्म; (७) सात प्राणों द्वारा आत्मा का वरण; (८-९) विद्वान् और आत्मा का सुखदायक स्वरूप।

सूक्त ५९ (पृष्ठ २७५-२७९)—(१-७) अग्नि, वैश्वानर नाम से अग्नि, विद्युत् एवं सूर्य के दृष्टान्त से अग्रणी नायक, सेनापति, राजा के कर्त्तव्य तथा परमेश्वर की दिव्य महिमा का वर्णन। वैश्वानर शब्द के विविध अर्थ।

सूक्त ६० (पृष्ठ २७९-२८१)—(१) वायु के दृष्टान्त से विजिगीषु राजा का वर्णन; (२) सूर्य के समान मुख्य राजा का वर्णन; (३) मधुर-भाषी पुरुष; (४) मनुष्यों में वरेण्य शासक; (५) विद्वान् और राजा;

सूक्त ६१ (पृष्ठ २८१-२९०)—(१) इन्द्र-राजा को भेंट देना; (२) राजा और विद्वान्; (३) उत्तम पद के लिए राजा की प्राप्ति; (४) शिल्पी के उदाहरण से राजा का वर्णन; (५) अश्व के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (६) विद्वान् शिल्पी का कर्त्तव्य; (७) शत्रु-विजय की नीति; (८) गृह-पत्नियों के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य; (९) स्वराट् इन्द्र का स्वरूप; (१०) उसके प्रजा और शत्रुओं के प्रति कर्त्तव्य; (११) प्रजाजन के हाथ में शासन देना; (१२) वायु, मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से शत्रु-विजय का उपदेश; (१३) युद्ध-विद्या के नित्य अभ्यास का उपदेश; (१४) बलशाली सेनापति का स्वरूप; (१५) इन्द्र का लक्षण; (१६) हारियोजन इन्द्र का रहस्य।

पञ्चमोऽध्यायः।

सूक्त ६२ (पृष्ठ २९०-२९९)—(१) विश्रुत परमेश्वर की स्तुति; (२) विद्वानों के कर्त्तव्य। आङ्गिरस, विद्वान्; (३) माता-पुत्र के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य, सरमा का रहस्य; (४) शत्रु-विजय के लिये तोपों का प्रयोग; (५) राष्ट्र-संवर्धन एवं प्रजा का उपकार; (६) विद्युत् के समान राजा का कर्त्तव्य; (७) प्राण एवं सूर्य के समान राजा तथा सेनापति के कर्त्तव्य; (८) दिन-रात्रि के समान राजा तथा प्रजा का कर्त्तव्य; (९) सूर्य के समान पुत्र तथा राजा के कर्त्तव्य; (१०) अंगुलियों के समान

गोस्तन के समान विद्वान्; (३) विद्वान्, सभापति या राजा; (४) राजा, सभाध्यक्ष; (५) राजा द्वारा प्रजा-कल्याण ।

सूक्त ७० (पृष्ठ ३२६-३२९)—(१-६) अग्नि-तुल्य भोक्ता राजा, स्वामी और परमेश्वर का वर्णन ।

सूक्त ७१ (पृष्ठ ३२९-३३५)—(१) बहिनों तथा गौओं के समान प्रजाओं का वर्णन; (२) वायु के समान वीरों तथा विद्वानों का वर्णन; (३) वैश्यों के समान स्त्रियों का वर्णन; (४) तीव्र वायु के समान वीर राजा के कर्त्तव्य; (५-६) योगी, गृहपति, सूर्य और आचार्य का समान वर्णन; (७) सागर के समान आचार्य, राजा और परमेश्वर; (८) स्त्री-पुरुषों द्वारा पुत्रोत्पादन; (९) राजा और विद्वान्; (१०) राजा और परमेश्वर ।

सूक्त ७२ (पृष्ठ ३३५-३४०)—(१) विद्वान् का वर्णन; (२) विद्वानों का कर्त्तव्य; (३) ईश्वर और गुरु की उपासना; (४) ईश्वर और राजा का आश्रय; (५) आचार्य-विद्वान्, शिष्य एवं गुरुजन; (६) प्रभु और विद्वान्, २१ तत्त्व; (७) राजा और ईश्वर; (८) सप्त प्राणमय देह और सप्ताङ्ग राज्य; (९) मोक्षमार्ग, माता के समान परमेश्वर का वर्णन; (१०) मुक्तजन साधक ।

सूक्त ७३ (पृष्ठ ३४०-३४५)—(१-२) विद्वान् एवं राजा; (३) प्रजा या सेना; (४) ईश्वर और राजा का आश्रय; (५) धनाढ्यों और ज्ञानवृद्धों के कर्त्तव्य; (६) नदियों और गौओं के समान विद्वानों का कर्त्तव्य; (७) गुरु एवं शिष्य; (८) राजा और ईश्वर; (९) परमेश्वर, सेनापति और राजा; (१०) परमेश्वर, नायक एवं ज्ञानवान् ।

सूक्त ७४ (पृष्ठ ३४५-३४८)—(१-९) परमेश्वर की स्तुति, राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों का उपदेश ।

सूक्त ७५ (पृष्ठ ३४८-३४९)—(१-५) विद्वान्, ज्ञानी और परमेश्वर का वर्णन ।

सूक्त ७६ (पृष्ठ ३४९-३५२)—(१) विद्वान् की भेंट क्या हो?; (२) राजा और प्रजा द्वारा परमेश्वर का ज्ञान; (३) विद्वान् राजा और परमेश्वर; (४) राष्ट्र दुष्ट पुरुषों से रहित हो; (५) विद्वान् द्वारा अपनी वाणी से सब को सुख-प्रदान करना।

सूक्त ७७ (पृष्ठ ३५२-३५४)—(१) ईश्वर को आत्म-समर्पण कैसे करें?; (२) ईश्वर को नमस्कार द्वारा अभिमुख करें; (३) प्रजायें किसे प्रस्तुत करती हैं?; (४) नरों में श्रेष्ठ नर; (५) ज्ञानवान् पुरुष के कर्त्तव्य।

सूक्त ७८ (पृष्ठ ३५४-३५५)—(१-५) परमेश्वर, विद्वान् एवं वीर नायक पुरुष का वर्णन।

सूक्त ७९ (पृष्ठ ३५५-३६०)—(१) पुरुष एवं स्त्रियों को उपदेश; (२) वृष्टियों के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (३) वृष्टि के समान गर्भ-निषेक तथा पुरुषोत्पत्ति का विज्ञान; (४) परमेश्वर और विद्वान् से प्रार्थना; (५-१२) परमेश्वर, राजा और विद्वान्।

सूक्त ८० (पृष्ठ ३६०-३६७)—(१-१५) विद्वान् द्वारा राज्यशासन का उपदेश, राष्ट्रीय स्वराज्य का वर्णन, परमेश्वर के स्वराट् रूप की उपासना।

षष्ठोऽध्यायः।

सूक्त ८१ (पृष्ठ ३६८-३७१)—(१) राजा का नायकों के प्रति कर्त्तव्य; (१) सेनापति का स्वरूप; (३) राजा द्वारा राष्ट्र में शक्तिधारण; (४) सेनाबल की वृद्धि; (५) परमेश्वर द्वारा सूर्यादि लोकों का धारण; (६) राजा और परमेश्वर; (७) परमेश्वर का सामर्थ्य; (८) राजा द्वारा ऐश्वर्य का दान; (९) जीवों द्वारा राजा की ऐश्वर्य-वृद्धि।

सूक्त ८२ (पृष्ठ ३७१-३७४)—(१) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्य; (२) ज्ञानी पुरुषों के कर्त्तव्य; (३-५) राजा, विद्वान् एवं ईश्वर; (६) सेनापति द्वारा विजय-प्रयाण।

सूक्त ८३ (पृष्ठ ३७४-३७७)—(१) राजा द्वारा प्रजापालन; (२) जलधारा के दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्य; (३) विद्वान् एवं परमेश्वर; (४) ज्ञानियों द्वारा ऐश्वर्य प्राप्ति; (५) प्रजापालक पुरुष; (६) ज्ञानोपदेष्टा [illegible]रा उपदेश।

सूक्त ८४ (पृष्ठ ३७८-३८६)—(१-३) वीर राजा तथा सेनापति के कर्त्तव्य; (४) अभिषेक द्वारा राज्यपद प्राप्ति; (५) राजा का आदर; (६) राजा सर्वाधिक बली एवं रथी; (७) राष्ट्र का अपराजित स्वामी; (८) ऐश्वर्यवान् राजा; (९) राजा का भयकारी बल; (१०) किरणों के दृष्टान्त से सेनाओं का वर्णन; (११) गौओं के दृष्टान्त से सेना की वृद्धि; (१२) स्वराज्य की वृद्धि; (१३) ८१० शत्रुओं का विनाश, दधीचि की अस्थियों का रहस्य; (१४) मेघ के दृष्टान्त से विजिगीषु का वर्णन, अश्व का सिर; (१५) चन्द्रमा में भी सूर्य रश्मियों का प्रकाश है; (१६) प्रश्नोत्तर रूप में राजा का वर्णन; (१७-१८) राजा द्वारा यथायोग्य विचार किया जाना चाहिये; (१९) राजा के लिये धर्मयुक्त वाणी; (२०) दीर्घदर्शी राजा द्वारा प्रजा का उपकार।

सूक्त ८५ (पृष्ठ ३८६-३९४)—(१) वायु (मरुत्) के दृष्टान्त से पदाभिषिक्त विद्वानों तथा वीरों का वर्णन; (२) उन्हें मातृभूमि का सेवक होना चाहिये, पृश्निमातरः का रहस्य; (३) गोमातरः का रहस्य, वीरों द्वारा शत्रु को परास्त करना; (४-५) मरुतों के रथ में पृषती नामक अश्वाओं का रहस्य, वायु का रहस्य; (६) वेगवान् यान तथा विशाल भवनों के उपयोग का वर्णन; बाहुबल से विजय का आदेश; (७) सूर्य के दृष्टान्त से वीरों का वर्णन; (८) विद्वानों तथा वीरों का प्राणों के समान कर्त्तव्य; (९) त्वष्टा द्वारा वज्र बनाने तथा इन्द्र द्वारा उससे वृत्रहनन का रहस्य; (१०) वृष्टि-विज्ञान का रहस्य, वीरों द्वारा अवनत राष्ट्र की उन्नति करना; (११) प्रजा की रक्षा, मरुतों द्वारा प्यासे गौतम के लिये कूप को उखाड़ लाने की कथा का रहस्य; (१२) त्रिधातु गृह, विद्वानों को दान तथा 'त्रिधातुशर्म' का रहस्य।

सूक्त ८६ (पृष्ठ ३९४-३९७)—(१) उत्तम रक्षक; (२) मननशील पुरुषों के उपदेशों का श्रवण; (३) ज्ञानमार्ग में सफलता; (४) पराक्रमी पुरुष के गुणों की प्रशंसा; (५) प्रजाएँ और सेनाएँ; (६) मनुष्यों को सुख-साधन का प्रदान; (७) वायु तथा प्राण के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (८) नायक पुरुषों के कर्त्तव्य; (९) आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग; (१०) कामनायोग्य ज्योति।

सूक्त ८७ (पृष्ठ ३९७-४००)—(१) वीरों द्वारा शत्रुओं को उखाड़ना; (२) वायु के दृष्टान्त से राजा का वर्णन; (३) वीरों के प्रयाण से भूमि-कम्पन; (४) वीरों तथा विद्वानों का गण कैसा हो; (५) परमेश्वर की प्रार्थना; (६) तीन प्रकार के व्यक्ति।

सूक्त ८८ (पृष्ठ ४००-४०३)—(१-२) वीरों तथा विद्वानों के कर्त्तव्यों का उपदेश; (३) वीरों द्वारा शत्रुसेना का संहार; (४) वार्क्षार्यधी का रहस्य, जल-विद्या का उपदेश; (५) वीरों को उपदेश; (६) वीरों तथा विद्वानों का बन्धन।

सूक्त ८९ (पृष्ठ ४०३-४०९)—(१) भद्र पुरुष हमें बढ़ावें; (२) देव-विद्वानों की क्या-क्या वस्तुएँ हमें मिलें; (३) सरस्वती का कार्य; (४) कौन-कौन हमें क्या-क्या प्राप्त करावे; (५) परमात्मा द्वारा हमें सुख प्राप्त हो; (६) हमें सब ओर से 'स्वस्ति' मिले; (७) वायु के दृष्टान्त से विद्वानों तथा वीरों का वर्णन; (८) हम क्या देखें, सुनें और प्राप्त करें; (९) पूर्णायु का लाभ; (१०) अदिति के नाना प्रकार, उसका रहस्य।

सूक्त ९० (पृष्ठ ४०९-४११)—(१) वरुण, मित्र और अर्यमा का रहस्य; (२) वसु का स्वरूप; (३) विद्वानों द्वारा शर्म का दान; (४) देशान्तर में जाने के लिए मार्गों तथा उपायों का निर्धारण; (५) परमेश्वर एवं विद्वान्; (६-८) मधुमती ऋचाएँ; (९) शान्ति की कामना।

सूक्त ९१ (पृष्ठ ४१२-४१९)—(१) परमेश्वर एवं विद्वान्; (२) सोम, अभिषेक-योग्य राजा, परमेश्वर एवं विद्वान्; (३) उत्तम राजा

वरुण का वर्णन; (४) सोम-राजा के विभिन्न धाम; (५-२३) राजा का सोमरूप से वर्णन, पक्षान्तर में, परमेश्वर तथा विद्वान् का वर्णन।

सूक्त ९२ (पृष्ठ ४२०-४२८)—(१) उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी के कर्त्तव्य; (२) कन्याओं का योग्य वर से साथ संयोग; (३) उत्तम नारी का आदर; (४) उषा के समान वधू के गुणों का प्रकाश; (५-९) उषा के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन; (१०) पुराण देवी का रहस्य; (११-१५) उत्तम गृहपत्नी का स्वरूप वर्णन; (१६-१७) वर-वधू के कर्त्तव्य; (१८) विद्वानों की प्राप्ति।

सूक्त ९३ (पृष्ठ ४२८-४३५)—(१) अग्नि और सोम—विद्वान् और पिता; (२) आचार्य और विद्वान्; (३) ज्ञानवान् ब्राह्मण और आज्ञापक राजा; (४) विद्वान् और राजा; (५) शिक्षक और आचार्य; (६) ब्राह्मण और क्षत्रिय; (७) भौतिक अग्नि और वायु का वर्णन; (८) परमेश्वर एवं विद्वान्; (९) अग्नि और वायु के दृष्टान्त से मन्त्री और राजा तथा आचार्य और शिष्य का वर्णन; (१०-१२) विद्वान् एवं राजा।

सूक्त ९४ (पृष्ठ ४३६-४४४)—(१) परमेश्वर की प्रार्थना; (२) विद्वान् राजा और परमेश्वर, (३) अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् और राजा का वर्णन; (४) अग्नि के दृष्टान्त से नायक की वृद्धि; (५) सभापति, राजा और विद्वान्; (६) राष्ट्र का स्वामी विद्वान्; (७) अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् का वर्णन; (८) विद्वान् और नायक पुरुष; (९) नायक द्वारा दुष्टों को दण्डित करना; (१०) नायक का स्वरूप; (११) रणनायक से शत्रुओं को भय; (१२) राजा का मित्रभाव; (१३) राजा और परमेश्वर; (१४) विद्वान् और राजा; (१५-१६) अदिति-राजा, विद्वान् एवं परमेश्वर।

सप्तमोऽध्यायः।

सूक्त ९५ (पृष्ठ ४४४-४५१)—(१) दो स्त्रियों के दृष्टान्त से दिन-रात, आकाश-पृथिवी और ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्ग का वर्णन; (२) दस

युवतियों के दृष्टान्त से वीर पुरुष का वरण; (३) नायक के तीन रूप; (४) सूर्य के समान राजा की उत्पत्ति, मातृगर्भ से प्रजा की उत्पत्ति; (५) गर्भगत शिशु की वृद्धि के समान राजा की वृद्धि; (६) दो स्त्रियों तथा गौओं के दृष्टान्त से नायक विद्वान् का वर्णन: (७) सूर्य के दृष्टान्त से सेना-नायक का वर्णन; (८) विद्वानों की राजकीय सभा; (९) राजा द्वारा हमारी रक्षा; (१०) राजा के आवश्यक कर्त्तव्य; (११) अग्नि के दृष्टान्त से राजा का वर्णन।

सूक्त ९६ (पृष्ठ ४५१-४५५)—(१-४) द्रविणोदा अग्नि-परमेश्वर परमपुरुष की उपासना; (५) दिन-रात के समान स्त्री-पुरुषों के विद्वानों को धारण-पोषण करने के कार्य; (६) विद्वानों का नायक के प्रति और उसका प्रजाजनों के प्रति कर्त्तव्य; (७) विद्वानों एवं दिव्य शक्तियों द्वारा परमेश्वर का धारण; (८) ऐश्वर्यदाता राजा और परमेश्वर; (९) विभिन्न शक्तियों द्वारा ऐश्वर्य प्रदान करना।

सूक्त ९७ (पृष्ठ ४५५-४५७)—(१-८) परमेश्वर से पापनाश करने की प्रार्थना। राजा से पापियों को दण्ड देने का निवेदन।

सूक्त ९८ (पृष्ठ ४५७-४५९)—(१-३) वैश्वानर—सर्व-हितकारी परमेश्वर की स्तुति। अग्नि और सूर्य के दृष्टान्त से सर्वहितैषी राजा को उपदेश।

सूक्त ९९ (पृष्ठ ४५९)—(१) सोम-ऐश्वर्य का लाभ, दुरितों को पार करना।

सूक्त १०० (पृष्ठ ४५९-४६८)—(१-३) मरुत्वान् इन्द्र-वायुगणों के स्वामी सूर्य के समान पृथिवी के सम्राट् का वर्णन; (४-१५) परम विद्वान् परम सखा आचार्य भी मरुत्वान् इन्द्र है, उसके कर्त्तव्यों का उपदेश; (१६-१८) नाहुषी प्रजा का रहस्य, सेना का वर्णन, राजा द्वारा दुष्टों का सर्वथा दमन; (१९) आचार्य एवं सभाध्यक्ष।

सूक्त १०१ (पृष्ठ ४६८-४७३)—(१-७) राष्ट्रपति को स्वीकार करना, वीर पुरुषों का मित्रता के लिये आह्वान, परमेश्वर का मित्रभाव से स्वीकार; (८) वीरों के अध्यक्ष से प्रार्थना; (९) राजा और सेनापति; (१०) राजा द्वारा राष्ट्र कार्यों का ग्रहण; (११) शत्रुहन्ता सेनापति।

सूक्त १०२ (पृष्ठ ४७४-४७९)—(१-११) परमेश्वर की स्तुति, पक्षान्तर में राजा तथा सेनापति का वर्णन।

सूक्त १०३ (पृष्ठ ४७९-४८३)—(१-८) परमेश्वर की स्तुति, उसके बल का वर्णन, पक्षान्तर में राजा तथा सेनाध्यक्ष का वर्णन, इन्द्र द्वारा वृत्रासुर तथा शम्बरासुर को मारने का रहस्य।

सूक्त १०४ (पृष्ठ ४८३-४८८)—(१) राजा का सिंहासन पर अभिषेक; (२) कर्मानुरूप वेतनादि देना; (३) स्वार्थ तथा अन्याय से धन हरने की निन्दा; (४) तेजस्वी की सेनाबल तथा ऐश्वर्य से वृद्धि; (५) बुरे राजा में अच्छे होने के भ्रम की सम्भावना; (६-८) राजा का प्रजा-पालन कर्त्तव्य; (९) राजा के आदर्श की प्रतिष्ठा।

सूक्त १०५ (पृष्ठ ४८८-४९६)—(१) चन्द्रमा तथा अन्यान्य आकाशीय पिण्डों के सम्बन्ध में ज्ञान; (२) वृष्टि-जल के आदान-प्रतिदान में सूर्य-पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री-पुरुष तथा राजा-प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन; (३) प्रजा तथा शिष्यों के राजा एवं आचार्य के प्रति आवश्यक विनय भाव; (४) ईश्वर-विषयक प्रश्न और प्रतिवचन तथा वेद ज्ञान के पुराने और नये धारण करने वालों का प्रतिपादन; (५) परममूल तथा सर्वाश्रय का निरूपण; (६) मूल कारण का अन्वेषण; (७) अमृत जीव का वर्णन; (८) जीवात्मा को रुलाने वाली व्याधियों को दूर करने की प्रार्थना; (९) युद्धार्थी वीर पुरुष की स्थापना, आसक्त चित्त का रहस्य; (१०) देहगत प्राणों के समान पांच प्रमुख; पञ्चायत तथा पञ्चतत्त्वों का वर्णन; (११) नक्षत्रों तथा चन्द्र का वर्णन; (१२) ज्ञानियों द्वारा ईश्वर-दर्शन; (१३) ज्ञान

सूक्त १११ (पृष्ठ ५१५-५१८)—(१-५) ऋभु-शिल्पी के समान विद्वानों के कर्त्तव्यों का वर्णन।

सूक्त ११२ (पृष्ठ ५१८-५३०)—(१) राजा प्रजावर्ग तथा स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य; (२) राजा और अमात्य अथवा राजा और सेनापति; (३) राजा-रानी तथा राजा-सेनापति युगल; (४) द्विमाता तरणि का रहस्य; (५) आचार्य एवं शिक्षक; (६) राजा तथा प्रजावर्ग का पारस्परिक उपकार; (७) स्त्री-पुरुष तथा राजा एवं विद्वान् के कर्त्तव्य; (८) सभा एवं सेनाध्यक्ष के कर्त्तव्य; (९) प्राण और अपान; (१०) विश्पला का रहस्य; (११) मधुकोश का रहस्य; (१२) बिना अश्वों का रथ; (१३-२५) नायक, दो मुख्य जन, शिल्पी आदि के द्वारा रक्षा के नाना उपाय।

अष्टमोऽध्यायः।

सूक्त ११३ (पृष्ठ ५३१-५४०)—(१-२०) उषा के दृष्टान्त से नववधू गृहपत्नी, विदुषी स्त्री के कर्त्तव्यों का उपदेश, भौतिक देवता उषा के नाना रूपों तथा कार्यों का विविध दृष्टान्तों द्वारा सुन्दर वर्णन।

सूक्त ११४ (पृष्ठ ५४०-५४५)—(१) राजा के गुणों के वर्णन से लाभ; (२) आचार्य एवं प्रभु; (३) उपदेष्टा द्वारा प्रजाओं को सुखी करना; (४) दूरदर्शी पुरुष के सुख दुःख का निवेदन; (५) तेजस्वी पुरुष द्वारा साधन-प्रदान; (६) स्वादिष्ट भोगों का दान; (७) राजा और वैद्य; (८) राजा द्वारा हिंसा न करना; (९) पालक राजा और गुरु; (११) गौहत्यारों आदि को देश निकाला; (११) 'नमस्ते' का प्रयोग।

सूक्त ११५ (पृष्ठ ५४५-५४८)—(१-६) भौतिक सूर्य देवता के दृष्टान्त से परमेश्वर की स्तुति तथा तेजस्वी विद्वान् पुरुष के कर्त्तव्यों का उपदेश।

सूक्त ११६ (पृष्ठ ५४८-५६०)—(१-२) दो प्रमुख नायक तथा विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य; (३) तुग्र और भुज्यु की समुद्र यात्रा का

रहस्य; (४) विचित्र विमान का वर्णन; (५) शतारित्र नौ; (६-७) अघाश्व को श्वेत अश्व के खुर से सुरा के सैकड़ों कुम्भ आदि कल्पनाओं का रहस्य; (८) आकाश-पृथिवी, दिन-रात; (९) सूर्य और वायु; (१०-१२) विद्वान् स्त्री-पुरुष; (१३) मुख्य पद पर स्थित दो पुरुष; (१४) दो नायक पुरुष; (१५) दो विद्वान् पुरुष, विश्पला की दो लोहे की जांघों का रहस्य; (१६) भिषक् नासत्य-अश्विनीकुमारों का रहस्य; (१७) दो प्रमुख पुरुष; (१८) दिवोदास तथा शिशुमार का रहस्य; (१९) स्त्री-पुरुष; (२०-२१) दो मुख्य नायक; (२२) सेनाबल पर भूमि का विस्तार; (२३) सत्य-व्यवहारकर्त्ता दो पुरुष; (२४) सेना तथा सभा के नायक; (२५) स्त्री-पुरुष के कर्त्तव्यों का वर्णन।

सूक्त ११७ (पृष्ठ ५६०-५७१)—(१) दो मनस्वी पुरुष, राजा और रानी; (२) दो नायक विद्वान् व्यक्ति; (३) राजदम्पती; (४) सुखवर्षक दो विद्वान् एवं राज्य के मुख्य अधिकारी; (५) दो पुरुष नायक; (६) सभा तथा सेना के अध्यक्ष; (७) दो नायक पुरुष; (८) दो राज्य के भोक्ता पुरुष; (९) दो विद्वान् शिल्पी; (१०) दो दानशील स्त्री-पुरुष; (११) दो विद्वान् स्त्री-पुरुष; (१२) हिरण्यकलश का रहस्य; (१३) अश्विनीकुमारों द्वारा वृद्धच्यवान को जवान बनाने का रहस्य; (१४-१५) अश्वियों द्वारा भुज्यु को समुद्रपार उतारने का रहस्य; (१६) सेना तथा सभा के अध्यक्ष (१७-१८) सौ मेषों का रहस्य, ऋज्राश्व की कथा का रहस्य; (१९) स्त्री-पुरुषों की रक्षण-शक्ति; (२०) सेना की सम्पन्नता करना; (२१) राष्ट्रभूमि की सम्पन्नता का उपाय; (२२) अश्वियों द्वारा दधीची को अश्वशिर के दान का रहस्य; (२३-२४) विदुषी स्त्री एवं विद्वान् पुरुष; (२५) सभा-ध्यक्ष तथा सेनाध्यक्ष, उनके पराक्रम।

सूक्त ११८ (पृष्ठ ५७१-५७६)—(१) दो प्रमुख पुरुष; (२) राष्ट्र के दो विद्वान् शिल्पी; (३) विद्वान् स्त्री-पुरुष; (४) अश्वियों द्वारा रथ-

वहन का रहस्य; (५) दो नायक पुरुष; (६) माता एवं पिता; (७) दो नायक पुरुष; (८) विश्पला की जंघा का रहस्य; (९) विद्वान् स्त्री पुरुष; (१०) सन्मार्गगामी दो नायक; (११) ऐश्वर्यभोक्ता स्त्री-पुरुष ।

सूक्त ११९ (पृष्ठ ५७६-५८१)—(१-१०) विद्वान् स्त्री-पुरुषों तथा दो प्रमुख नायकों के कर्त्तव्यों का विस्तार से वर्णन ।

सूक्त १२० (पृष्ठ ५८१-५८५)—(१-१२) दो विद्वान् तथा पति-पत्नी भाव से रहने वाले स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश ।

सूक्त १२१ (पृष्ठ ५८५-५९६)—(१) राजा द्वारा उपदेश श्रवण; (२) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी पुरुष का कर्त्तव्य; (३) तेजस्वी पुरुष द्वारा धर्मनीतियों का पालन; (४) राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्र-शासन; (५) राजा एवं विद्वान्; (६) प्रजा द्वारा राजा का अभिषेक; (७) सूर्य-समान तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य; (८) सभापति और सेनापति; (९) राजा और सेनापति; (१०) वज्रधारक राजा का कर्त्तव्य; (११) राजवर्ग और प्रजावर्ग; (१२) ऐश्वर्यवान् पुरुष; (१३) राजा द्वारा योद्धाओं का सञ्चालन; (१४) राजा एवं परमेश्वर; (१५) सुमति दूर न हो ।

इत्यष्टमोऽध्यायः ।

इति प्रथमोऽष्टकः ।

—:o:—

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

अथ द्वितीयोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

प्रथम मण्डल । सू० [१२२]—आचार्य के प्रति शिष्यों का कर्त्तव्य । (२) 'उपासानक्ता' रूप में पति-पत्नी का वर्णन । (३–१०) पिता, आचार्य का शिष्यवत् पुत्रों के प्रति और शिष्यों और पुत्रों का गुरु, आचार्य, माता और पिता जनों के प्रति कर्त्तव्य का वर्णन । (११–१५) महान् परमेश्वर का वर्णन । (१२) दशतय का रहस्य । (१४) हिरण्यकर्ण मणिग्रीव का रहस्य । (१५) 'मशर्शार' के चार शिशुओं का रहस्य । (पृ० १—७)

सू० [१२३]—उषा के दृष्टान्त से नववधू का आदर और उसके तथा गृहपत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) पति के कर्त्तव्य । (७) रात्रि दिन के दृष्टान्त से पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (पृ० ७—१२)

सू० [१२४]—उषा के दृष्टान्त से युवती कन्या तथा युवा पुरुष को गृहस्थ प्रवेश का उपदेश, और उनके गृहस्थोचित कर्त्तव्यों का वर्णन । पक्षान्तर में सेना और योगज विशोका का दिग्दर्शन । (पृ० १२—१८)

सू० [१२५]—आयु के पूर्व भाग में ब्रह्मचर्य का और अनन्तर गृहस्थ का उपदेश, और उनके कर्त्तव्य । (पृ० १८—२१)

सू० [१२६]—वीरों के दृष्टान्तों से जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य । ६–७) राजा, राजनीति, राजसत्ता का वर्णन, पक्षान्तर में चेतना,

सू० [१३४]—शूर पुरुष का प्रयाण, समृद्धि की वृद्धि, तथा सहोद्योग। आचार्य का कर्मों और ज्ञानों का उपदेश। वायु, सूर्य, सारथि, आदि के दृष्टान्त से गुरु का कर्त्तव्य, (४) उषाओं के दृष्टान्त से शिष्यों का गुरु की कीर्ति प्रसारित करना, वायु के दृष्टान्त से उनको ऐश्वर्य प्राप्त करने का उपदेश। (५) राजा के अधीनस्थ अधिकारियों के कर्त्तव्य। राजा को दुष्टों के नाश का उपदेश। (६) राजा का सर्वोपर पालन और ऐश्वर्यभोग का अधिकार। (पृ० ५५–५८)

सू० [१३५]—प्रधान पदवीधर के आदर की विधि, (२) उसकी वेष भूषा, और कर्त्तव्य, सेनानायक होने योग्य पुरुष। (३) शतिनी, सहस्त्रिणी सेनाओं सहित सेनापति की नियुक्ति, राज्यव्यवस्थापक अध्वर्युजनों का कर्त्तव्य। (४) सेनापति, सभापति आदि का रथों से गमन, उत्तम ऐश्वर्यों में प्रथमाधिकार। (५) प्रधान पुरुष की राष्ट्र में, देह में आत्मा के समान स्थिति, देह में वीर्यों के समान राष्ट्र में बलवान् शासकों की स्थिति। (७) सूर्य, वायु, वृष्टि आदि के दृष्टान्त से शासक के प्रजापालन के कार्यों का वर्णन। (८) पक्षियों के आश्रय-वृक्षवत् शासक प्रधान पुरुष की स्थिति और राष्ट्र की समृद्धि का वर्णन। (९) मेघवत् पराक्रमी, ऐश्वर्यवान् पुरुषों को प्रजापालन का उपदेश। (पृ० ५९–६४)

सू० [१३६]—अधीन प्रजाओं का उत्तम प्रधान शासकों के प्रति पुत्रवत् कर्त्तव्य। शासकों को न्यायोचित व्यवहार का उपदेश। सूर्य-चन्द्रादिवत् व्यवस्थापकों का कर्त्तव्य। राजाप्रजा का प्रेममय व्यवहार। परस्पर पाप से रक्षा करने का कर्त्तव्य। (६) श्रेष्ठ जनों का आदर सत्कार। (७) समृद्ध होकर उत्तम सुख प्राप्त करने का उपदेश। (पृ० ६४–६७)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [१३७]—देह में प्राण-उदानवत् मित्र और वरुण दो अधि-

कारियों और अन्न-औषधिरसवत् सोम नाम विद्वानों के कर्त्तव्य। वैदिक श्लेषमय वाक्यों का स्पष्टीकरण। (३) सोम और गोदोहन के दृष्टान्त से भूमिदोहन। (पृ० ६७–६९)

सू० [१३८]—पूषा, नाम प्रजापोषक अधिकारी राजा के कर्त्तव्य (४) पूषा के 'अजाश्व' होने का कारण। [६९–७१)

सू० [१३९]—विद्वान् आचार्य के अधीन वेदाभ्यास करने का उपदेश। (२) मित्र वरुण का सत्यासत्य विवेक, न्याय का कर्त्तव्य। (३) उत्तम स्त्री पुरुषों के प्रति अन्य जनों के सद्व्यवहार का उपदेश। (४) रथ में दो अश्वों के समान शासनादि कार्य में उत्तम पुरुषों की नियुक्ति। (५) ज्ञानी, कर्मिष्ठ पुरुषों के कर्त्तव्य। (६) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (७) विद्वान् नेता के कर्त्तव्य। (८) व्यापारियों और वीरों का कर्त्तव्य। ९ विद्वानों के कर्त्तव्य। दध्यङ् अङ्गिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु, आदि की व्याख्या। (१०) सूर्य, मेघ दृष्टान्त से विद्या धनादि देने लेने वाले के कर्त्तव्य। (११) ११, ११, ११, करकेदे ३३ व, ३३ अधिकारी (७१–७७)

सू० [१४०]—यज्ञाग्निवत् राजा को पोषण करने का उपदेश। (२) द्विजन्मा और त्रिवृत् अग्नि, विद्वान् और राजा। (३) बालक के प्रति माता पिता के समान राजा प्रजावर्ग के कर्त्तव्य। (४–५) मुमुक्षु जनों का वर्णन (६) सूर्य और अग्नि के दृष्टान्त से राजा वा नायक का प्रजा के ग्रहण पालनादि का वर्णन। (७–८) राजा प्रजा का पति-पत्नीवत् परस्पर स्नेहवान् होकर रहने का वर्णन। (९) भूमि और राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (१०–११) मेघस्थ विद्युत् के दृष्टान्त से विद्वान् नायक वा राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (१२) नौकावत् सेना का निर्माण, पक्षान्तर में 'पद्वती नौ' का रहस्य। (१३) उषाओं के दृष्टान्तों से विद्वान् वीर पुरुषों का कर्त्तव्य। (पृ० ७७—८३)

सू० [१४१]—सत्य प्रकाश में अग्नि और गौओं के दृष्टान्त से

विद्वान् और वेदवाणियों का वर्णन। (२) जीवात्मा और मनुष्य की तीन दशाएं (३) असंग आत्मा के ज्ञान करने का उपदेश। (४) वनस्पतिवत् जीवों के जन्म लेने आदि का वर्णन। (५–७) अविनाशी आत्मा का जन्म लेने का रहस्य। (८) उसके बन्धनों के नाश का उपदेश। (९, १०) नायकवत् प्रभु का वर्णन। (१०–१२) वीर नायक और आत्मा का वर्णन। (पृ० ८३–८९)

सू० [१४२]—अग्निवत् नायक के कर्त्तव्य। तनूनपात् का रहस्य। (५) यज्ञाग्निवत् उपासना कर्म, यज्ञकर्त्ता जनों के समान उपासक का वर्णन। द्वारों के समान प्रजाओं और सेनाओं का वर्णन। (७) रात दिन के समान माता पिता का वर्णन। (८) दैव्य होता, विद्वानों का कर्त्तव्य। (९) भारती, इळा, सरस्वती, और होत्रा का वर्णन। (१०) त्वष्टा, शिल्पी, (१२) वनस्पतिवत् राजा का वर्णन। (१२) राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य। (१३) विद्वानों के आदर का उपदेश। (पृ० ८९–९३)

सू० [१४३]—विद्यार्थी शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) अग्नि सूर्यवत् आचार्य की स्थिति, (४) सर्वपापनाशक अग्नि प्रभु की स्तुति। (५) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (६–७) तपस्वी विद्यार्थी का कर्त्तव्य। (८) विद्वान् को अप्रमादी रहने का उपदेश। (पृ० ९३–९६)

सू० [१४४]—अग्नि-व्रत का वर्णन। विद्यार्थी के आचार्य शुश्रूषा व्रत का वर्णन। आचार्य शिष्य के सम्बन्ध का वर्णन। (३) माता, पिता, आचार्य के कर्त्तव्यों का विवेक। (४) माता पिता का बालक के प्रति कर्त्तव्य। (५) प्रजाओं का रक्षक के प्रति व्यवहार और रक्षक का कर्त्तव्य। (६) अग्निवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। (७) मेघवत् राजा का कर्त्तव्य। (पृ० ९६–९९)

सू० [१४५]—आदर्श विद्वान् का वर्णन। (२) जिज्ञासु का

तृतीयोऽध्यायः

सू० [१६०]—सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से पति-पत्नियों के कर्त्तव्यों का वर्णन, (३) उत्तम पुत्र के लक्षण और कर्त्तव्य। (पृ० १३४–१३६)

सू० [१६१]—दूत कर्म के योग्य पुरुष का वर्णन। सुधन्वा के तीन पुत्र ऋभु, विभ्वा, वाज का स्पष्टीकरण। (२) उत्तम दूत के उत्तम फल, ऋतुओं के एक चमस को चार करने का रहस्य। (३) नाना रथ तथा यन्त्र कलादि के चालक अग्नि के दृष्टान्त से दूत के राष्ट्र-भूमि के प्रति कर्त्तव्यों का वर्णन। (४) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा वा शासकों का कर्त्तव्य। (५) दुष्टों के दमन का उपाय (६) सूर्य, राजा सेनापति आदि के दृष्टान्त से विद्वानों को उत्तम उपदेश। (७) धनुर्धर पुरुषों और शिल्पियों के कर्त्तव्य। (९) विद्वानों का नाना विद्याओं के प्रचार का कार्य। (१०–१४) विद्वानों, राष्ट्रवासियों को लाभप्रद उपदेश। (पृ० १३६–१४२)

सू० [१६२]—श्रेष्ठ जनों के प्रति आदर का उपदेश। वाजी देव जात सप्ती आदि का रहस्य। (२) अभिषिक्त राजा और प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य, विश्वरूप अज का रहस्य। (३) सेनापति के योग्य पुरुष, अश्व-मेध के अश्व के आगे छाग आदि लाने का रहस्य। (४) अश्ववत् राष्ट्र-पति के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य। अध्यात्म में अश्व, परमेश्वर का वर्णन। (५) राष्ट्ररूप यज्ञ का वर्णन, अध्यात्म यज्ञ का स्वरूप, (६) राष्ट्र पति के सहयोगियों का कर्त्तव्य। (७) अश्ववत् राष्ट्रपति, ब्रह्मचारी, और गृहस्थ पति का वर्णन। आत्मा का वर्णन (८) अश्व के बन्धनों के समान राष्ट्रपति की मर्यादाएं। (९) राष्ट्र के ऐश्वर्य के प्रबन्ध को विद्वानों के अधीन रखने का उपदेश। (१०) वध किये अश्व के मांसादि की नाना कल्पना आदि अयुक्त अर्थों का खण्डन। शरीर की व्यवस्थावत् राष्ट्र की सुव्यवस्था। अश्वमेध के अश्व के मांस पकाने आदि का खण्डन। (११) त्याग और तप के सत्फल का उपभोग राष्ट्र की भावी प्रजा को मिले (१२) तपस्वी, दृढ़ राष्ट्रपति की परिपक्व अन्न से तुलना।

'मांसभिक्षा' का सत्यार्थ । (१३) भूमि के स्थल, जल आदि का निरिक्षण, पक्षान्तर में आत्मा और शरीर का वैज्ञानिक और दार्शनिक रहस्य । मांस्-पचनी उखा और पात्रों का सत्य रहस्य । (१४) राष्ट्र की अश्व से तुलना । उनके सब कार्यों पर विद्वानों की अध्यक्षता । (१५) राष्ट्रशासक बल और सैन्य का कर्त्तव्य । अश्वसैन्य और राष्ट्रपति की अश्व से तुलना । (१७) अश्ववत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (१८) अश्व-देह की राष्ट्र-देह से तुलना (१९) अश्व, काल, संवत्सर और प्रजापति राजा की तुलना (२०) राजा के कर्त्तव्य । (२१) ज्ञानी विद्वान् और राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२२) विद्वान् और राजा के प्रति राष्ट्र का कर्त्तव्य । अश्वमेध के इस सूक्त का सर्वतोमुखी रहस्य । (पृ० १४२—१५१)

सू० [१६३]—आचार्य के सावित्रीमय गर्भ से शिष्य की उत्पत्ति, और विद्वान् होने पर उसकी सफलता । आचार्य का शिष्य के प्रति कर्त्तव्य । यम से दिये अश्व को त्रित का जोड़ना और इन्द्र का उस पर बैठने और गन्धर्व का लगाम पकड़ने का सत्यार्थ । (३) अश्व की उपमा से ब्रह्मचारी का वर्णन, शिष्य की पुत्र से तुलना । (४) तीन बन्धन (५) आत्म-शुद्ध्यर्थ व्रतों का आचरण (६–७) शिष्य का कर्त्तव्य अध्यात्म में भक्त का उपास्य-आत्मदर्शन । (८) विद्वान् तेजस्वी के शासन में सब सम्पदाएं । (९) आचार्य, सर्वोच्च पद । (१०) जिज्ञासु शिष्यों का कर्त्तव्य (११) वीर, बलवान् राजा और राजा को तेजस्वी होने का उपदेश । (१२) सर्वोपास्य प्रभु । (१३) उत्तम पुरुष का मां बाप के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० १५३–१५७)

सू० [१६४]—सप्त प्राण आत्मा का वर्णन परमेश्वर का वर्णन । (२) आत्मा, सूर्य, परमात्मा संवत्सरात्मक चक्र का वर्णन, एक त्रिनाभि अनर्व चक्र का रहस्य । (३) सप्त चक्र रथवत् आत्माधिष्ठित देह और परमेश्वर के विराट् रूप का वर्णन । (४) हड्डी वाले देह में बेहड्डी के आत्मा का रहस्य । (५) देह में प्राणों और आत्मा में यज्ञों का

विस्तार। वस्त्र में तन्तु वितान और वयन का रहस्य। (६) सर्वाधार परमेश्वर विषयक प्रश्न। (७) ब्रह्मज्ञानी से आत्मविषयक प्रश्न। शिर से क्षीर दोहने वाली गौओं का रहस्य। (८) माता पिता या दम्पतिवत् परमेश्वर प्रकृति का वर्णन। गर्भरसा बीभत्सु माता का रहस्य। (९) उत्पत्ति कार्यों में परमात्मशक्ति को देखना। (१०) तीन माता तीन पिताओं के पालक प्रभु का वर्णन। (११) द्वादशार, द्वादशाकृति और षडर सप्तचक्र का वर्णन। (१३) पञ्चार चक्र, आत्मा। (१४) दशाश्व रथवत् सर्वाधार आत्मा। (१५) सात साकंज और ६ ऋषियों का वर्णन। (१६) परमेश्वरी शक्तियों का वर्णन। (१७) सवत्सा गौवत् उषा सूर्य, और परमेश्वर, शक्ति का वर्णन। (१८) परात्पर प्रभु के विरल ज्ञाता। (१९) समीप के लोकों का विवेक। (२) विश्व में विद्यमान जीव ब्रह्म का दो पक्षियोंवत् वर्णन। (२१) रश्मिवत् ज्ञानी-जनों का ज्ञानप्रकाश करना। आत्मा के रश्मि इन्द्रियों का वर्णन। (२२) संसार वृक्ष पर मधुभोजी सुपर्ण। (२३) विद्वानों की अमृत पद प्राप्ति। छन्दस्त्रयी ईश्वर स्तुति। (२४) चारों वेदों की उत्पत्ति। (२५) महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर। (२६) वेद वाणी का गौ के समान ज्ञान-दोहन। आचार्य का सवितावत् ज्ञानवर्षण। (२७–२८) परमेश्वर का माता एवं गौवत्, ज्ञानरसदान, और मातृवत् प्राणिमात्र से प्रेम। (२९) विद्युत् मेघवत् ईश्वर का वेदोपदेश प्रकाश। (३०) देहों में आत्मवत् लोकों में प्रभु की स्थिति। (३१) परमेश्वर और जीव का साक्षात्कार। (३२) अगम्य आत्मा। (३३) जीव और विश्व की उत्पत्ति का रहस्य। (३४–३५) पृथिवी के परम अन्त भुवन की नाभि, महान् आत्मा के विश्वोत्पादक सामर्थ्य और परमाश्रय विषयक प्रश्न और उत्तर। (३६) सूर्यवत् प्रभु का शासन। (३७) जीव की ज्ञानप्राप्ति। (३८) कर्मों से जीव का उच्च नीच योनि में जन्म लेना। (३९) सूर्य में किरणोंवत् परब्रह्म के ज्ञानियों की स्थिति। (४०) गौ

समान परमेश्वरी शक्ति का वर्णन। (४१) विद्युत्वत् वैदिक और लौकिक वाणी का वर्णन। (४२) विद्युतवत जीवनाधर प्रभुशक्ति। (४३) शकमय धूम, नीहारिका तथा परमेश्वर का वर्णन। (४४) विद्युत् वायु सूर्य के कार्य और विश्व की सृष्टि, पालन और संहारकारी प्रभुशक्ति के कार्यों का वर्णन। (४५) चतुष्पदा वाणी का वर्णन। वाणी के चार रूप। (४६) परम प्रभु के इन्द्र, मित्र, वरुणादि नाना नामों की व्यवस्था। (४७) किरणोंवत् विद्वानों को प्रभुपद-प्राप्ति। (४८) महायन्त्रवत् अध्यात्म शक्तियों का वर्णन। (४९) सर्वसुखद सरस्वती नाम परमेश्वर का वर्णन। (५०) विद्वानों की यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना। (५१) वृष्टि जलवत् जीव की उच्च नीच गति का वर्णन (५२) सर्वाधार सहस्वान् मेघवत प्रभु। (पृ० १५७—१८५)

सू० [१६५]—गुरु के आश्रय छात्रों का ब्रह्मचर्यवास और गुरु सेवा। (२) गुरु की और देह में प्राणों पर आत्मा की स्थिति। (३) अद्वितीय शक्ति के विषय में प्रश्न। (४) प्रभु के वा गुरु के प्रति शान्ति-उपदेश। (५) वीरोंवत् मुमुक्षुओं का वर्णन। (६—७) विद्युत-वत् प्रबल नायक। (८) राजा के राष्ट्र में उत्तम कार्य। (९) सर्वो-परि अनुपम प्रभु। (१०) अद्वितीय शासक। (११) वीरों का नायक से सम्बन्ध। (१२) विद्वानों, वीरों का राष्ट्र में, देह में प्राणवत् कर्त्तव्य। (१३) उनका योग्य परस्पर आदर। (१४—१५) परस्पर ज्ञानदान और बल प्राप्ति। (पृ० १८५—१९१)

चतुर्थोऽध्याय

सू० [१६६]—शिष्यों का गुरु के अधीन ज्ञानों का लाभ। (२) गृहस्थों के अन्नोपभोगवत् तेजस्वी मुमुक्षुओं की ब्रह्मरति, रुद्र विद्वानों का सर्वोपकार। (४) वीरों का प्रयाण। (५) वायु के समान ही वीरों का शत्रूच्छेदन। (६) प्रजाओं का रक्षण। (७) प्रशंसनीय वीरों के लक्षण। (८) उनके कर्त्तव्य। (९) स्पर्द्धावान् सशस्त्र वीरों का

वर्णन । (१०) पक्षियोंवत् सुसज्जित वीरों का वर्णन । (११–१४) सूर्य के अधीन वायुगणवत् सेनापति के अधीन वीरों और गुरु के अधीन शिष्यों का व्रतपालन । (पृ० १९१–१९७)

सू० [१६७]—रक्षक प्रभु की शरण सहस्रों ऐश्वर्यवान् हैं । (२) विद्वानों, धनवानों की राष्ट्र में उत्तम कामना । (३) पत्नीवत् वाणी से सुशोभित विद्वानों का आदर । (४) वीर युवाओं को वायु के दृष्टान्त से नवपत्नी के ग्रहण और रक्षा का उपदेश । (५) सूर्य दीप्तिवत् पुरुष को प्राप्त होने वाली स्त्री के उत्तम लक्षण । (६) यज्ञ में वेद वाणी के गानवत् पुरुष को उत्तम गाथागान का उपदेश । (७) नव गृहस्थों को सत्य प्रतिज्ञा से गृहस्थ निर्वाह का उपदेश । (८) विद्वानों, उत्तम शासकों के कर्त्तव्य । (९, १०) बलवृद्धि का कर्त्तव्य । (पृ० १९७–२०२)

सू० [१६८]—(१–४) एक साथ काम करने का उपदेश । विद्वानों को ज्ञानोपदेश करने का कर्त्तव्य । पत्नीवत् उनकी संगिनीशक्ति का वर्णन । वीरों का शासन कार्य । (५) सशस्त्रास्त्र वीरों का वीरकर्म । (६) परमेश्वर का सर्वोपरि बल । (७) वीरों की प्रबल शक्ति के लक्षण । (९) विद्युतों का यज्ञ से सम्बन्ध । (१०) वीर नायकों के कर्त्तव्य । (पृ० २०२–२०७)

सू० [१६९]—महान् ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का वर्णन । (२) उत्तम दानशीलता । (३) प्रभु की अद्वितीय शासन-व्यवस्था । (४) यज्ञदक्षिणावत् प्रभु का समृद्धिदान । (५) मेघवत् प्रभु की उदारता । (६) सेनापति का वर्णन । (७) परिव्राजकों के वायुवत् कर्त्तव्य । (पृ० २०७–२१०)

सू० [१७०]—मन की अस्थिरता, और भविष्य का अज्ञान । (२) भविष्य के लिये स्वामी, सेनापति को बलवान् होने का कर्त्तव्य ।

(३) पोषक नायक का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (४) यज्ञ का उपदेश । (५) सबके पालक प्रभु, वसुपति आचार्य का कर्त्तव्य । (पृ० २१०–२१२)

सू० [१७१]—गुरु का शिष्यों के प्रति उपदेश । विद्वानों के कर्त्तव्य । (४) शस्त्र धारण करना आवश्यक, उसका उचित प्रयोजन । (५) विद्वानों के ज्ञानविस्तार का कर्त्तव्य । प्रजा को राजा बलवान् बनावे । (६) प्रजा का पालन करे । (पृ० २१२–२१५)

सू० [१७२]—विद्वानों वीरों के कर्त्तव्य । देह में प्राणों की स्थिति । (३) अत्याचारी राजा से रक्षा करने की प्रार्थना । पक्षान्तर में देहमय तृणस्कन्द का वर्णन । (पृ० २१५–२१६)

सू० [१७३]—प्रातः किरणों के प्रकाश के साथ वेदगान का उपदेश । (२) सिंहवत् वीर का शत्रु के प्रति आक्रमण और प्रजा का भरण पोषण । (३) सूर्यवत् भूमि का शासन । (४) वीरों का सशस्त्र होकर शत्रुनाश का कर्त्तव्य । (५) सेनापति का सूर्यवत् पराक्रम । आत्मा, सत्वा, मघवा (६) अद्वितीय होकर प्रजापालन । (७) प्रजा का सहोद्योग । (८) परस्पर प्रसन्नता । (९) स्वामी और सेवक का परस्पर व्यवहार । (१०) न्यायशील राजा के नीचे प्रजा का प्रेमसहित होकर रहना । (११) यज्ञ, परस्पर संगति राष्ट्र को समृद्ध करती है, कुटिलता सदा हानिकारक है । (१२) नायक का संकटों से बचाने का कर्त्तव्य । (१३) उत्तम आज्ञापक का कर्त्तव्य । (पृ० २१६–२२२)

सू० [१७४]—(१–८) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । सेनापति के कर्त्तव्य । दुष्टों का दमन । (९) शत्रुनाश, सेनासञ्चालन । (१०) सैन्य बल की वृद्धि । (पृ० २२२–२२५)

सू० [१७५]—पात्रस्थ ओषधि रसवत् उत्तम पालक के कर्त्तव्य । (२) वह अधिक बलशाली हो । (२) शूरवीरवत् सेनासञ्चालक

पंचमोऽध्याय

अथ द्वितीयं मण्डलम्

अष्टमोऽध्याय

में प्रभु का वर्णन। शकुनि, श्येन, शकुन्त, आदि का रहस्य। इति द्वितीयं मण्डलम्। (पृ० ४४९—४५२)

अथ तृतीयं मण्डलम्

सू० [१]—गुरु और शिष्यों के कर्त्तव्य। राष्ट्र, तेजस्वी राजा का वर्णन। (पृ० ४५३–४६२)

सू० [२]—यज्ञाग्निवत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य। (२) राष्ट्रपति का पूज्य पद। (३) विद्वान् गुरु का वरण (५) अग्निवत् नायक का स्थापन उसके कर्त्तव्य। (पृ० ४६२–४६९)

सू० [३]—अग्निवत् प्रधान पद पर स्थित विद्वान्, नायक पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० ४६९–४७४)

सू० [४]—अग्रणी नायक के कर्त्तव्य (४) राजा प्रजाजनों और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। वीरों का कर्त्तव्य (पृ० ४७४–४७९)

सू० [५]—अग्नि के दृष्टान्त से समर्थ योग्य विद्वान् अधिकारी के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। अग्रणी नायक का वर्णन। (७) जीव के पुनर्जन्म की व्यवस्था। अरणियों से अग्निवत् माता पिता से जीव सर्ग। (पृ० ४८०–४८६)

सू० [६]—प्रधान पुरुष का आदर करने का उपदेश। उससे ज्ञानग्रहण। माता पिता का कर्त्तव्य। विद्वानों का कर्त्तव्य। (पृ० ४८६–४९०)

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति द्वितीयोऽष्टकः।



❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद विषय सूची

तृतीयोऽष्टकः । तृतीये मण्डले

(सप्तमसूक्ताद् आरभ्य)

प्रथमोऽध्यायः (पृ० १–८४)

सू० [७]—(१) माता पिता गुरुजनों का कर्त्तव्य । (२) किरणों वाले सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा, प्रकाश ग्रहणवत् शिष्यों की उपासना और ज्ञान ग्रहण । (३) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । (४) चालक शक्ति और यन्त्र, किरणों और सूर्य और स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से राजा प्रजा का व्यवहार । (५) राजा प्रजावत् गुरु शिष्य । (६) सूर्य, मेघ से जलान्नवत् गुरु जनों से ज्ञानोपार्जन । (७) यज्ञ-कर्त्ताओं, सूर्य की किरणों के समान देह में प्राणों के कर्म । (८) मेघों के तुल्य आदर योग्य गुरुजन । (९) अश्व की रासों वा सूर्य की किरणों के समान शिष्यों प्रजाओं का नियन्त्रण । (१०) उषाओं के समान प्रजाओं के कर्त्तव्य ।

सू० [८]—(१–३) वृक्षवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में राजा का कर्त्तव्य । (४–५) आचार्य के गर्भ से उत्पन्न विद्वान् को उपदेश । (६–७) कुठारवत् विद्वान् का कर्त्तव्य । कृषक, वा क्षत्रियवत् विद्वान् । (८) लोकों में सूर्यवत् प्रधान विद्वान् की स्थिति । (९) हंसों के तुल्य वीर और विद्वान् जन । (१०) यज्ञ में यूपों के समान विद्वान्

वीरजन। (११) वटवत् राजा या आचार्य का शाखा-प्रशाखाओं में बढ़ना।

सू० [९]—(१) अपांनपात् आत्मा के समान विद्वान् नायक (२) जलों में विद्युत्, काष्ठों में अग्निवत् विद्वान् वीर नायक की स्थिति। (३) नौकावत् आचार्य और प्रभु। (४) प्रजाओं का सिंहवत् शूर नायक का स्वीकार। (५–६) अग्नि वायुवत् गुरु शिष्य का व्यवहार। (७–९) अन्धकार में दीपवत् विद्वान्। यज्ञाग्निवत् विद्वान् और वीर नायक।

सू० [१०]—(१–३) सम्राट्-अग्नि, परमेश्वर के कर्त्तव्य। परमेश्वर की भक्ति, उपासना। (४) परमेश्वर का स्वात्म ज्ञान दर्शन। (५–९) परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना।

सू० [११]—(१–१०) अग्नि, अग्रणी नायक के कर्त्तव्य।

सू० [१२]—(१–३) इन्द्र, अग्नि, मेघ और सूर्य वा वायु और विद्युत् के समान, प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। गुरु आचार्य के कर्त्तव्य। (४–९) वायु-सूर्यवत् विद्वानों और वीरों के कर्त्तव्य। सेनाध्यक्ष सभाध्यक्षों का कर्त्तव्य।

सू० [१३]—(१–७) अग्निवत् आचार्य और राजा के कर्त्तव्य।

सू० [१४]—(१–२) विद्वान् गुरु और परमेश्वर का वर्णन। (३) यज्ञाग्निवत् उसकी उपासना। (४) 'सहसः पुत्र' अग्नि और नायक। (५) दान-प्रतिदान, विद्वत्सेवा और ज्ञानार्जन। (६–७) आराधना, आत्म-समर्पक विद्वान् नायक के प्रति कर्त्तव्य।

सू० [१५]—(१) विद्वान् उत्तम नायक की शरण में रहने का उपदेश। (२) राजा वा गुरु का प्रजा से पिता-पुत्रवत् सम्बन्ध। (३) मेघवत् राजा के कर्त्तव्य। (४) प्रजा वर्ग की उत्तम कामना। (५–७) रथवत् नायक। विजिगीषु के कर्त्तव्य।

सू० [१६]—(१) स्वामी का वर्णन। (२) वायुवत् वीरों के

कर्त्तव्य। (३-४) अग्रणी के अनुयायियों के प्रति कर्त्तव्य। (५-६) उत्तम राजा से प्रार्थना।

सू० [१७]—(१) यज्ञाग्निवत् वीर विद्वान् के कर्त्तव्य। (२) सूर्यवत् विद्वान् का आदान, प्रतिदान। (३) तीन आयु, तीन उपाओं की व्याख्या। (४-५) उत्तम रक्षक, ज्ञानप्रद का आदर।

सू० [१८]—(१) मित्र और मातृ पितृवत् ज्ञानी और प्रभु का वर्णन। (२) दुष्ट संतापक प्रभु। (३) अपने बल वृद्धि के लिये ज्ञानी, तेजस्वी, प्रतापी का पालन करना प्रजा का कर्त्तव्य है। (४) उत्तम राजा का कर्त्तव्य। सर्वस्नेही उत्तम पुरुषों में शक्ति स्थापन करके उपद्रवों को शान्त करने का उपदेश। (५) राजा को सदा सहायतार्थं उद्यत होने का उपदेश।

सू० [१९]—(१) यज्ञ में होता के समान नायक का वर्णन। (२) गृहाश्रम के समान राज्याश्रम का निर्वाह। (३-५) प्रजा को शिक्षित करने का कर्त्तव्य।

सू० [२०]—(१) गृहस्थ के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। (२) राजा के तीन बल, तीन स्थान, तीन जिह्वा, तीन तनु। (३) विद्वान् ज्ञानाश्रय गुरु, प्रभु। (४) तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य। (५) दधिक्रा अग्नि, उषा, बृहस्पति, सविता, अश्वी, मित्र-वरुण, आदित्यों का आह्वान। इनका रहस्य। (६०-६४)

सू० [२१]—(१) यज्ञ का संस्थापक अग्नि विद्वान्। (२-४) अग्नितुल्य विद्वान्। पक्षान्तर में राजा। (५) विद्वान् का ज्ञान जल से स्नान।

सू० [२२]—(१-३) अग्नि विद्युत्, ज्ञानप्रद आचार्य गुरु का शिष्य को उपदेश और अग्नि तत्व का वर्णन। (४) पुरीष्य अग्नि में। नाना नेता। अध्यात्म में—प्राणगण।

सू० [२३]—(१-२) अरणियों से अग्निवत् विवाद द्वारा सभा-

भवन में शास्त्र का सत्य निर्णय प्राप्त करना। अग्नि, सूर्य, विद्युत के तुल्य दीर्घ जीवन की वृद्धि का उपदेश। (३-४) देह में प्राणों से गर्भवत् सेनाओं और प्रजाओं से तेजस्वी नायक की उत्पत्ति। नायक का चुनाव और प्रतिष्ठा।

सू० [२४]—(१-५) वीर नायक के कर्त्तव्य। तेजस्वी हो, उत्तमासन पर विराजे, अभिमानी शत्रुओं को पराजित करे, सत्कार लाभ करे, राष्ट्र को वीर पुरुषों और ऐश्वर्यों से बढ़ावे।

सू० [२५]—(१-५) उत्तम सेनापति। उत्तम आचार्य, उपदेशक आदि का वर्णन।

सू० [२६]—(१) वैश्वानर अग्नि और विद्वान्। (२) वैश्वानर मातरिश्वा। (३) अश्व के दृष्टान्त से विद्वान् नेता वा प्रभु का वर्णन। (४) मेघमालाओं, अश्वों, सेनाओं से युक्त वायुवत् वीर पुरुषों का वर्णन। (५-६) तेजस्वीं पुरुषों की वायुओं श्लिष्टोपमा। (७) जातवेदाः अग्नि जीवात्मा। (२) तीन पावन साधनों से पवित्र होकर ब्रह्म की साधना। (९) शतधार मेघवत् विद्वान् का रूप।

सू० [२७]—(१-१०) विद्वानों का वर्णन। गुरु की उपासना। नायक, विद्वान्, प्रधान, नेता और स्वामी के कर्त्तव्य। (११) यन्त्र-चालकाग्निवत् नियन्ता के कर्त्तव्य।

सू० [२८]—(१-३) अग्नि, शिष्य का कर्त्तव्य वर्णन। (४) माध्यन्दिन सवन का रहस्य (५) तृतीय सवन का भाव (६) ज्ञानी विद्वान्।

सू० [२९]—(१) अग्नि के समान प्रजा और आत्मा के शरीर-धारक होने और उत्पन्न होने का वर्णन। अग्नि-मन्थन, प्राण-मन्थन, और प्रजोत्पत्ति की समानता। (२-४) अरणियों से अग्नि की उत्पत्ति की व्याख्या। अग्रणी नायक की अधिस्थापना। (५-६) अग्निमन्थन का अध्यात्म प्रकार। मन्थन और अश्व चालन की तुलना। अग्निवत्

आत्मा और वीर। (७) विद्वान् अग्नि। (८) अग्नि राजा और स्वामी। (९) अग्नि आचार्य और वीर पुरुष। (१०) अग्नि के ऋत्विय योनि की व्याख्या। (११) तनूनपात् जीव। विद्युतवत् आत्मा की उत्पत्ति का रहस्य। (१२-१३) मथिताग्नि और विद्वान्। अमृत अग्नि वीर। (१४) विद्युत् जीव। (१५) यज्ञाग्निवत् विद्वान्। (१६) विद्वान् होता अग्नि।

अथद्वितीयोऽध्यायः (पृ० ८४-१५०)

सू० [३०]—(१) वीर पुरुष और परमेश्वर का वर्णन। (२) वीर, विद्वान्, (३-४) सेनापति का वर्णन। विद्युत के समान वीर का वर्णन। (५-८) राजा के कर्त्तव्य। वीर सेनापति के कर्त्तव्य, शत्रुनाश, प्रजापालन। (९) सजल मेघवत् लोक का धारण। (१०) बलवान् राजा के कर्त्तव्य। (११) सूर्यवत् महारथी राजा का कर्त्तव्य वर्णन। (१२-१४) मेघ सूर्यवत् प्रजा को अन्न देने का कर्त्तव्य। राजा के अधीन उत्तम भूमि का वर्णन। (१५) राजा का प्रजा को युद्ध शिक्षा देने का कर्त्तव्य। दानशील के कोशों का वर्णन। (१६-१८) शत्रु का महास्त्रों से नाश करने का उपदेश। (१९) ऐश्वर्यवान् दानी सर्वप्रिय, सबके वंशों को बढ़ाने वाला हो। (२०) सर्वश्रेष्ठ, वीर स्तुत्य पुरुष इन्द्र कहाने योग्य है। (२१) राजा और विद्वान्। (२२) इन्द्र पद से आह्वान।

सू० [३१]—(१) पुत्रपुत्रिका-विधान, कन्या का अपुत्र पिता कन्या में जामाता द्वारा उत्पन्न पुत्र को अपना पुत्र बनावे। (२) कन्या के पिता का वही दायभागी पुत्र हो। कन्या परगोत्र के पुरुष को दी जाती है। अग्नियों के दृष्टान्त से पुत्र-पुत्री का विचार (३) अग्निवत् पुत्र शिष्य और वीर बड़े होकर उन्नत हों। (४) सूर्य के दाहक किरणों

के तुल्य वीर को सेनाएं और प्रजाएं अपनावें। (५) देह में सातों प्राणवत् राष्ट्र में सात प्रकृतियों का वर्णन। (६) विद्युतवत् सेना का कर्त्तव्य। (७) मेघ और रत्नगर्भ पाषाणवत् विद्वान् का कर्त्तव्य। (८) वीर और विद्वान् ज्ञान संग्रह करे, दुःखदायक, प्रजाशोषक कारणों का नाश करें। प्रजा को पाप से मुक्त करे। (९) विद्वानों का नियमानुसार व्रताचरण, और आराधना। (१०) गौओं से दुग्धवत् आत्मज्ञान का उपार्जन, इसी प्रकार राजा का दुग्धवत् भूमि-दोहन। (११) शत्रुहन्ता का आदर और पोषण। (१२) उसके लिये विशाल भवन निर्माण। (१३) सर्वथा स्तुत्य प्रभु। (१४) प्रभु की सहस्रों सनातन शक्तियें। (१५) उत्तम राजा का कर्त्तव्य। (१६) विद्या वृद्धि और प्रजा को उन्नत करने का उपदेश। (१७) दिन रात्रिवत् राजा प्रजा का व्यवहार। (१८) सूर्य वा मेघवत् राजा उदार हो। (१९) वह प्रजा को शिक्षित करे। (२०) प्रजा का पालन करे। (२१) सूर्यवत् भूमि पर राजा का शासन और दुष्टदमन का वर्णन।

सू० [३२]—(१) मध्याह्न में भोजन अन्न, खाने का उत्तम उपदेश। (२) सूर्य के जलपानवत् प्रजा से कर संग्रह और उसके पालन का उपदेश। (३) मध्याह्न के सूर्यवत् तेजस्वी राजा की दशा। (४) तेजस्वी राजा के वायुवत् बलवर्धक जन। (५) सूर्य विद्युतवत् तेजस्वी को व्यवहार करने का उपदेश। (६) विद्युत के मेघ को आघात करने के समान दुष्टजन का नाश। (७) अपार शक्तिशाली इन्द्र का आदर। (८) जगद्-धारक वायुवत् राजा का कर्त्तव्य। (१०) राजा जीव और ईश्वर का वर्णन। (११) विद्युत वत् शत्रु पर आघात, (१२) यज्ञ से इन्द्र राजा की वृद्धि। (१३) यज्ञ द्वारा इन्द्र का आह्वान। (१४) रक्षक सर्वतारक प्रभु। (१५) कुशलवत् राष्ट्र को पूर्ण समृद्ध करने का उपदेश। (१६) निर्बाध इन्द्र का सामर्थ्य।

सू० [३३]—(१–२) गो-वृषभ वा नदियों के समान प्रेम से

सगत स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सेना-सेनापति का वर्णन। विपाट् शुतुद्री का रहस्य। (३) विपाट् माता का वर्णन। विपाट् माता परमेश्वर। (४) नदी जल के दृष्टान्त से प्रजोत्पत्त्यर्थं स्त्री का पाणिग्रहण (५) रक्षा की इच्छा से वरवर्णिनी का वरवरण। नदियों और कुशिकसूनु का रहस्य। (६) सूर्य, मेघ, जलधारावत् राजा का दुष्टदमन, प्रजापालन। (७) मेघ के छेदक भेदक सूर्य, वायुवत् राजा और आचार्य का शत्रु और अज्ञान का नाश। (८) उपदेष्टा और शासक को उपदेश। (९) नदियोंवत् विनीत महिलाओं को उपदेश। (१०) कन्या वा स्त्रीवत् प्रजा का राजा के प्रति विनय। (११) स्त्रियों के प्रति आदर भाव। (१२) योग्य भूमिवत् स्त्री प्राप्त कर संसार पार करने का उपदेश। (१३) ब्रह्मचारिणियों को मेखलादि मोचन और शुद्ध हो कर गृहस्थ में प्रवेश।

सू० [३४]—(१) वीर राजा के कर्त्तव्य। शत्रु नाश, स्वपक्ष-पोषण, प्रजा पालन। (२) प्रजा का राजा की शरण में जाना। (३–४) मायावियों का नाश। सूर्य अग्निवत् राजा के कर्त्तव्य। ध्वजा के नीचे प्रजा को लाना, (५) उत्तम अध्यक्षों की नियुक्ति। राजा का गुरुवत् व्यवहार। (६) पुण्यकर्मा, दुष्टदलक को कीर्ति लाभ। (७) राजा को विद्वान् का उपदेश। (८–१०) सैन्यादि का श्रेणी विभाग, चिकित्सा, छाया वाले वृक्षों और जल, सैन्यादि का प्रबन्ध।

सू० [३५]—(१) वीर राजा की युद्ध यात्रा। (२–३) युद्ध रथ। अश्व पालन (४) रथ में दो अश्वों के समान राष्ट्र में दो प्रमुखों की नियुक्ति। (५) प्रलोभन में पड़ने का उपदेश। (६) स्थायी राजा की नियुक्ति। (७–९) सूर्य वत् राष्ट्र के प्रबन्धक अधीन शासकों के कर्त्तव्य। (१०) राजा की तीक्ष्ण वाणी।

सू० [३६]—(१–२) राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य। (३) गुरु शिष्य और राजा प्रजा का पुत्र पितावत्

सम्बन्ध। (४–६) महान् का अपार सामर्थ्य। सूर्यवत् राजा का वर्णन और प्रजा का पालन और समर्थन। (७) नदियों वत् प्रजाओं का कर्त्तव्य। (८) जलाशयवत् जनों और कोषों का वर्णन। इन्द्र की सोमधाना कुक्षियों और उसके सोम-भक्षण का रहस्य। (९) वसुओं का वसुपति। उसके कर्त्तव्य। (१०) शिप्री इन्द्र का रहस्य।

सू० [३७]—(१–९) शत्रु दलन और विजयार्थ सेनापति का स्थापन। उसके प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य। सेनापति का प्रस्ताव, स्तुति और उत्साहवर्धापन। सेनापति के कर्त्तव्य, शत्रु पराजय। पञ्चजन का स्पष्टीकरण (१०) राजा की राष्ट्र के धनैश्वर्य की आशंसा। (११) शक्तिशाली का आह्वान।

सू० [३८]—(१) उत्तम शिल्पी और अश्व के समान विद्वान् के कर्त्तव्य। (२) ज्ञान प्राप्त्यर्थ विद्वानों की उपासना का उपदेश। (३) ज्ञान प्रकाश करना विद्वानों का कर्त्तव्य। संयम और परस्पर पोषण। (४) किरणों और सूर्यवत् अध्यक्ष और अधीनों का सम्बन्ध। स्वरोचि, असुर, वृषा परमेश्वर। (५) 'मेघवत्' राजा का शासन। (६) शासन कार्य में तीन सभाएं। वायुकेश गन्धर्वों का रहस्य। (७) मेघमाला वत् वाणी के अद्भुत कर्म। (८) राजा प्रजा का परस्पर वरण। (९) ईश्वरीय सनातन धर्म की साधना।

सू० [३९]—(१) पति को स्त्रीवत् ईश्वर को सर्व स्तुति की प्राप्ति। (२) उत्तम पत्नीवत् वेदवाणी का वर्णन। (३) यमसू के दृष्टान्त से, संयमी को विद्या प्राप्ति, स्त्री पुरुषों को उपदेश। राष्ट्र के यम, यमसू और प्रभु यम। (४) विद्वान् वीर योद्धा पालक पितरों का वर्णन। (५) गुरुओं का शिष्यानुगमन और सूर्य-व्रतपालन। (६) राजा की पशु-सम्पत् प्राप्ति। (७) असत्य से सत्य के और अन्धकार से प्रकाश के विवेक का उपदेश। (८) ज्ञान-प्रकाश की स्तुति।

तृतीयोऽध्यायः (पृ० १५०–२२०)

सू० [४०]—(१) राजा का राष्ट्रोपभोग। (२) प्रशस्त पुरुषों के लिये अन्न भोजन का उपदेश। (३) यज्ञ, सत्संग की वृद्धि का उपदेश। (४) गुरु गृह में शिष्योंवत् अभिषिक्त अध्यक्षों का राजा के अधीन कार्य करना। (५) पेट में अन्न को जैसे वैसे कोश में ऐश्वर्य को और विद्यागर्भ में शिष्य को रखने का उपदेश। (६–९) ऐश्वर्यों का पालक इन्द्र, प्रभु, उसकी उपासना।

सू० [४१]—(१) सूर्यवत् राजा वा प्रभु का आह्वान। (२) राजा राष्ट्र की वृद्धि करे। (३–५) विवेक से राष्ट्र का पालन और उपभोग करे। (६–८) उत्तम पुरुष को नीच कार्य में लगाने का निषेध। (९) सर्वप्रिय राजा। सोम और इन्द्र का रहस्य।

सू० [४२]—(१–४) सोम इन्द्र के सम्बन्ध और उनके नाना रहस्य। राजा प्रजा, शिष्य आचार्य के कर्त्तव्य। (५) शतक्रतु, वाजिनीवसु इन्द्र। (६) धनञ्जय और इन्द्र। (७–९) गवाशिर यवाशिर सुत का रहस्य। कुशिकों का इन्द्राह्वान।

सू० [४३]—(१–६) राजा का दो मित्र ब्रह्म, क्षत्र से मिलकर राज्य संचालन। प्रजा के साथ उत्तम व्यवहार। (७) सूर्य मेघवत् राजा के नाना कर्त्तव्य।

सू० [४४]—(१) अध्यक्ष राजा के कर्त्तव्य। (२) गृहवत् राज्य में परस्पर आदर सत्कार और प्रेम का उपदेश। (३–५) सूर्य-आकाश का सस्यश्यामला भूमि का पालन। राजा तेजस्वी हो, सूर्य वायु की शक्तिवत् इन्द्र, और अर्जुन वज्र की व्याख्या। सैन्य दलों से ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश।

सू० [४५]—(१) राजा का अश्व सैन्यों सहित प्रयाण और आगमन। (२) सूर्य विद्युत् वायुवत् राजा का शत्रु-उच्छेदन कार्य। (३) किरणों, समुद्र, गो-गोपाल आदिवत् राजा प्रजा के सम्बन्ध।

(४) पिता का पुत्रवत् राजा का प्रजा को सम्पत्ति देना। (५) स्वराट् शासक सर्वोच्च, बहुश्रुत, कीर्त्तिमान् हो।

सू० [४६]—(१–४) राजा के वीरोचित कर्त्तव्य। (५) शासकों और शास्यों का राजा के प्रति कर्त्तव्य।

सू० [४७]—(१) मरुत्वान् इन्द्र का जठर में सोम-सेचन का रहस्य। राष्ट्र में जल सेचन का उपदेश। (२) समरुत्, सूर्यवत् सगण इन्द्र को विजय का आदेश (३) ऋतुपालक, सूर्यवत् राजसभा के सभ्यों सहित राजा का वर्णन। (४–५) प्रजा के सुखकारक दुष्टों को ताड़न। उत्तम शासक राजा का मेघवत् वर्णन।

सू० [४८]—(१) वनस्पति के पालक मेघवत् राजा के कर्त्तव्य। (२–४) माता पिता, सूर्य पृथिवीवत् राजा प्रजा का व्यवहार। पुत्र मातावत् राजा भूमि का सम्बन्ध। शरीरवत् वीर की राष्ट्र वृद्धि।

सू० [४९]—(१–२) राज-परिषत् प्रजा-परिषत् के बल से बलवान् राजा। स्वराट् का दुष्ट नाश करने का कर्त्तव्य। (३) पितावत् प्रजा का शिक्षण करे। (४) सर्वप्रिय हो।

सू० [५०]—(१–२) वर्षाकारी सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। रथ में दो अश्वों के तुल्य दो विद्वानों की नियुक्ति। अधीन सैन्यों का कर्त्तव्य। (३–४) विद्वानों द्वारा सर्वोच्च पद प्राप्ति।

सू० [५१]—(१) प्रजा पालक राजा का वर्णन। प्रभु की स्तुति प्रार्थना। (२) प्रतापी राजा का वर्णन। (३–४) उत्तम राजा के गुण। (५) राजा की अज्ञानों का प्रवर्तन और उसके ऐश्वर्य का विस्तार। (६–७) राजा के कर्त्तव्य। (८) प्रजास्थ विद्वानों के कर्त्तव्य। (९) वीरों व्यापारियों के कर्त्तव्य। (१०) धनपति इन्द्र के कर्त्तव्य। (११–१२) राजा जितेन्द्रिय रहे।

सू० [५२]—(१–५) आदर योग्य पुरुष। उत्तम अन्न खाने और श्रम करने का उपदेश। आदर पूवक प्राप्त भोजन खाने का

उपदेश। (६) तीन आश्रम और तीन सवनों का वर्णन। (७–८) बल उत्पन्न करने और अन्न सम्पदा प्राप्त करने का उपदेश।

सू० [५३]—(१–२) सूर्य मेघवत् राजा सेनापति का कर्त्तव्य। राजा का राज्याभिषेक, राजा के लम्बे दामन को पकड़ कर चलने का अभिप्राय। प्रजा द्वारा राजा की वृद्धि। (३) ज्ञान-प्रसार। (४) गृहणी गृह है। उसका संग्रहण। (५) ऐश्वर्य के वृद्ध्यर्थ देश-देशान्तर में यातायात करने का उपदेश। (६) ऐश्वर्य कमा कर दुनियां के सुख, उत्तम स्त्री, जाया, रथ, भवन आदि को प्राप्त करने का उपदेश। (७) समृद्धों को दान का उपदेश। (८) सूर्य के जल पानवत् ज्ञानोपार्जन का उपदेश। (९) सर्व प्रिय होने का उपाय। (१०) परम हंस विद्वानों का कर्त्तव्य। हंस का रहस्य। (११) वीरों के कर्त्तव्य। (१२–१३) उत्तम राजा। (१४) राजा का निकृष्ट असभ्य देशों के प्रति कर्त्तव्य। 'कीकट', 'प्रमगन्द', 'नैचाशाख' के रहस्य। (१५) उषावत् वाणी और भूमि का रूप। (१६) वृद्धों की वाणी और भूमि। (१७) रथवत् राष्ट्र, गृहाश्रम और बैलोंवत् शास्त्रशासन और स्त्री पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (१८) बलप्रद स्वामी सबको पुष्ट करे। (१९) वीरोचित उपदेश। (२०–२२) रथवत् और तरुवत् स्वामी के कर्त्तव्य। उबलती हांडी के दृष्टान्त से सेना के कर्त्तव्य का उपदेश। (२३) मूर्ख और विवेकी का भेद। (२४) राज पुरुषों, सैनिकों के कर्त्तव्य।

सू० [५४]—(१–२) प्रथम नायक के कर्त्तव्य। उत्तम शासक की प्रशंसा और आदर। (३) स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (४–५) (उत्तम) ज्ञान के वक्ता दुर्लभ हैं। (६) सूर्य भूमिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। स्त्री पुरुषों के स्वभाव कैसे होने चाहियें। (८) स्त्री का अधिकार। (९) पवित्र दाम्पत्य। (१०) दम्पति के कर्त्तव्य। (११) उत्तम पिता के कर्त्तव्य। (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य। वीरों के

कार्य । (१४) उत्तम मुख्य पुरुष का स्थापन । उसके कर्त्तव्य । (१८) व्यवस्थापक न्यायाध्यक्ष के कर्त्तव्य । (२१) उत्तम अन्न जलों के उपभोग का उपदेश ।

सू० [५५]—(१–३) परब्रह्म परमेश्वर का वर्णन । महान् असुर । सूर्यवत् उसके ज्ञानमय प्रकाश । पक्षान्तर में विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (४–५) तेजस्वी पुरुष का वर्णन । माता पुत्रवत् राजा-प्रजा का व्यवहार । (६–८) राजा की दो सभाएँ । द्विमाता का रहस्य । (९) शूरवीरवत् परमेश्वर का वर्णन । सूर्य वा राजदूतवत् ईश्वर । (१०) सर्वज्ञ प्रभु । (११–१२) प्रभु के अधीन दो अन्य सत्ताएं । श्यावी, अरुपी का रहस्य, परमेश्वर का अद्वितीय बल । (१३) विद्युत् मेघ के निदर्शन से प्रभु का वर्णन । (१४) सूर्य भूमि का परस्पर सम्बन्ध । मेघ की उत्पत्ति । (१५) ईश्वर की विराट् देह । ईश्वर के दो चरण, आकाश, भूमि । (१६–२२) युवतियों, गौओं के तुल्य मेघादि लोकधारक शक्तियों का वर्णन । मेघ, सूर्य, वृषभ-राजा, आत्मा, परमात्मा का श्लिष्ट वर्णन । उनके नाना अद्भुत कार्य ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० २२०–२८६)

सू० [५६]—(१–८) स्थिर नियमों और कर्त्तव्यों का उपदेश । सूर्य, आत्मा, परमेश्वर का वर्णन ।

सू० [५७]—(१) वाणी का वर्णन । (२) इन्द्र पूषा आदि विद्वानों का वर्णन । (३) ओषधियोंवत् माता युवतियों के कर्त्तव्य । प्रजाओं का कर्त्तव्य । (४) स्त्रियों के आदर करने का उपदेश । (५) वाणी का सदुपयोग । (६) नदीवत् वाणी ।

सू० [५८]—(१–९) गौ, उषावत् वाणी । गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । अश्वी, नासत्य, सोमपान आदि पदों की व्याख्या ।

सू० [५९]—(१–९) 'मित्र' का लक्षण। मित्र राजा, मित्र परमेश्वर। मित्र आचार्य। मित्र आप्त जन। उनके कर्त्तव्य।

सू० [६०]—(१–२) ऋभु विद्वान् जन, उत्तम नेता लोग, शिल्पी लोग, उनके नाना शिल्प और कर्त्तव्य, चमसों का रहस्य, धर्म की गौ का रहस्य। (३) सौधन्वन वीर, (४–७) इन्द्र ऋभुओं का सम्बन्ध।

सू० [६१]—(१–३) उपावत् युवति वधू के कर्त्तव्य। (४–७) चर्खे की तकली के समान स्त्री के कर्त्तव्य। उपावत् स्त्री के उत्तम गुण और कर्त्तव्य।

सू० [६२]—(१–४) सूर्य मेघवत् राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का उपदेश। इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, पूषा आदि नाना विद्वानों के कर्त्तव्य। (५–७) बृहस्पति परमेश्वर। (८) वाणी का स्त्रीवत् स्वीकार। (९) सम्यग्दृष्टि वाला विद्वान् वा सर्व द्रष्टा प्रभु। (१०–१२) गुरु मन्त्र, सावित्री गायत्री। सर्वोत्पादक प्रभु सविता की उपासना, (१३–१५) सोम विद्वान् के कर्त्तव्य। (१६–१८) मित्र वरुण अर्थात् स्त्री पुरुषों को उपदेश।

॥ इति तृतीय मण्डलम् ॥

अथ चतुर्थ मण्डलम्

सू० [१]—(१–५) उत्तम मार्गदर्शी और अग्रणी पुरुष के आदर का उपदेश। आचार्य और राजा का वरण। उनके कर्त्तव्य। (६) राजा की गौवत् अघ्न्या प्रजा का पालन। (७) अग्नि, विद्युत्, सूर्यवत् राजा के तीन रूप। (८) दीपकवत् मार्गदर्शी और भवनवत् सर्वरक्षक राजा का स्वरूप। (९) लगाम से अश्ववत् उत्तम नीति से राष्ट्र का संचालन और ऐश्वर्य पद प्राप्ति। (१०) अग्नि, अग्रणी का यथार्थ

कर्त्तव्य । (११) राजा का अपात् अशीर्षा रूप । मेघवत् दयालु हो । (१२) मेघवत् आचार्य और राजा का वर्णन । उनकी ७ प्रकृति । (१३) जिज्ञासु जनों का कर्त्तव्य । मार्गदर्शी जनों का गोपालकवत् कर्त्तव्य । (१४) शिक्षकों और संचालकों के कर्त्तव्य । (१५) उनका वरण । (१६) वेद वाणी का त्रिधा मनन । उसके २७ रूप । उस द्वारा प्रभु की स्तुति । (१७) प्रकाश से तिमिरवत् ज्ञान से अज्ञान का नाश । दुष्टों का नाश और न्याय का कर्त्तव्य । (१८) ज्ञान की प्रकाश से तुलना । (१९) प्रभु, स्वामी का उत्तम रूप । (२०) नित्य परमेश्वर का वर्णन ।

सू० [२]—(१–३) अविनाशी अमृत परमेश्वर का वर्णन । जगत् के राजा के तुल्य प्रभु का वर्णन । (४) राजा के कर्त्तव्य । (५) उसके लिये उपदेश । (६) सूर्यवत् उसका पद । (७–१०) प्रभु के कृपापात्र कौन । प्रातः उपासक उसके कृपापात्र हैं । उपासकों के कर्त्तव्य । (११) दाता राजा, (१२) स्वामी के कर्त्तव्य । (१३) ज्ञानी विद्वान् से प्रार्थना । (१४) शिल्पियों के तुल्य वीरों के कर्त्तव्य । (१५–१६) किरणों के तुल्य विद्वानों का कर्त्तव्य । (१७) पुण्यकर्मा जनों का सुवर्णवत् आत्म शोधन । (१८) स्वामी का आदर्श रूप । (१९) अधीन के कर्त्तव्य । (२०) उत्तम वचनों का स्वीकार ।

सू० [३]—(१) न्यायवान् राजा की प्रथम स्थापना (२) उसके लिये उत्तम भवन । (३–८) शास्ता के कर्त्तव्य । उसको क्या २ जानना चाहिये ? (९–११) शास्य या शिष्य के कर्त्तव्य । गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य । (१२) उत्तम देवियों और गृहपतियों के कर्त्तव्य । (१३–१६) उत्तम मनुष्य के कर्त्तव्य । नायक के कर्त्तव्य और नीतियुक्त वचनों के उपदेश ।

सू० [४]—(१–५) रक्षोघ्न अग्नि । राज को बल सम्पादन का उपदेश, दुष्ट सन्तापक राजा वा सेना नायक के कर्त्तव्य । उसके

अग्निवत् तीव्र तेजस्वी रूप का वर्णन। (६–१०) उसके अनुग्रहपात्र। पक्षान्तर में प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, अर्चना। (११) स्वामी और प्रजा का उत्तम सम्बन्ध। (१२–१५) भृत्य वा अधीन शासक कैसे हों।

अथ पञ्चमोऽध्यायः (पृ० २८६–३५०)

सू० [५]—(१) वैश्वानर अग्नि। सर्वनायक की उपासना। (२–४) उसका स्वरूप। अग्रणी परमेश्वर से प्रार्थना। (५) नीचे गिरने वाले लोगों की दशा। (६) गुरु, महान् ज्ञान शिष्य को देवे। (७) शिष्य का कर्त्तव्य। (८) माता पितावत् आचार्य का स्वरूप। (९) सूर्यवत् प्रमुख पद। (१०–११) वाणी द्वारा शिष्य गुरु के ज्ञान को कैसे जाने। (१२–१३) गुरु का कर्त्तव्य और उसकी उत्तम अभिलाषा। (१४) जिज्ञासुओं के कर्त्तव्य। उनके प्रति गुरु के कर्त्तव्य। (१५) तेजस्वी राजा।

सू० [६]–(१) अध्वर का होता अग्नि, ज्ञानप्रद गुरु और राजा। (२) तेजस्वी सेनानायक के कर्त्तव्य। (३) ब्रह्मचारिणी के तेजस्वी पुत्रवत् सेना के तेजस्वी नायक का वर्णन। (४–६) अग्नि, सूर्यवत् तेजस्वी नायक। (७) सर्वोपरि आदरणीय प्रभु। (८) अग्रणी का उज्ज्वल पद। (९–११) कैसे को नायक बनावें। उसकी गुणस्तुति।

सू० [७]—(१–३) प्रभु की उपासना। वह अग्निवत् स्वप्रकाश। स्तुत्य। दीपक वा अग्निवत् उसका ग्रहण। (४) पापनाशक प्रभु। (५) परम पावन। (६) सत् चित् प्रभु। (७) आनन्द मय प्रभु, प्रकृति का स्वामी। (८–११) अग्नि, विद्वान्, दूतवत् प्रभु। अग्निवत् तेजस्वी का वर्णन।

सू० [८]—(१–५) बहुज्ञ पुरुष का आदर सत्कार। ज्ञानमय सर्वज्ञ प्रभु की उपासना। अग्निहोत्र और प्रभु की उपासना। (६) विद्युत-साधना और ऐश्वर्य प्राप्ति। गुरु प्रभु-शुश्रूषा (७–८) धन, बल की याचना।

सू० [९]–(१–८) राजा, विद्वान् अग्रणी नायक, और ज्ञानमय प्रभु की उपासना और स्तुति।

सू० [१०]–(१–८) उत्तम नायक, विद्वान् आदि की समृद्धि की आशंसा। उससे रक्षा, ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना।

सू० [११]–(१) विद्वान् नायक को तेजस्वी होने का उपदेश। (२) विद्वानों, शिष्यों के कर्त्तव्य। (३–६) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष। वह ज्ञान और ऐश्वर्य का अग्नि, विद्युत् के समान उत्पादक हो। दोषों, पापों से सबको पार करे। उत्तम बुद्धि दे।

सू० [१२]–(१) यज्ञाग्निवत् विद्वान् की सेवा सुश्रूषा। उसको श्रद्धापूर्वक दान। (२–६) प्रातः सायं अग्निहोत्र। अग्नि का स्वरूप, अग्निवत् तेजस्वी अग्र नायक। उसके कर्त्तव्य। प्रजा को अपराध रहित करना। पैर में बद्ध गौवत् पदों में बद्ध वाणी का दान। पाप मोचन।

सू० [१३]–(१) प्राभातिक सूर्यवत् विद्वान् का वर्णन। (२) महावृषभवत् बलवान् तेजस्वी को सबको कंपाने का कर्त्तव्य। (३) रक्षार्थ तेजस्वी का आश्रय। (४) अन्धकार को सूर्यवत् अज्ञान वा शत्रु का नाश (५) सूर्य की अनवलम्ब स्थिति का कारण। तद्वत् नायक की सर्वोच्च स्थिति।

सू० [१४]–(१–२) सूर्य की उषाओं की तरह तेजस्वी पुरुष को प्रजाओं की चाह। सूर्यवत् ज्ञानप्रकाशक विस्तार करना। (३–४) उषावत् विदुषी स्त्री के कर्त्तव्य। स्त्री पुरुषों का परस्पर बन्धन।

सू० [१५]–(१–५) तेजस्वी पुरुष के योग्य पद। (६–७) उसका संस्कार। (८–१०) वीरों में से दो प्रधानों का चुनाव। 'साहदेव्य कुमार' की व्याख्या।

सू० [१६]–(१) ऐश्वर्यवान् सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के गुरुवत् कर्त्तव्य। (२) विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य। मार्गावसान में अश्वों के

तुल्य शिष्यों को अवकाश प्रदान। (३) मेघ के दृष्टान्त से ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश। (४) सूर्यवत् अज्ञान नाश। (५) राजा का विनय धारण, भरण, रक्षणादि से पिता तुल्य होना। (६–९) मेघवत् शत्रु दल में भेद के प्रयोग का उपदेश। शत्रु को पराजय करने का उपदेश। (१०) भूपति सैन्यपति दोनों का स्थापना। नारीवत् सेना का वर्णन। (११) प्रयाण का उपदेश। (१२) दुष्टों का दमन और दलन। (१३) सैकड़ों सहस्रों परसैन्यों का उच्छेद। (१४) विद्युत्वान् मेघ और सिंह के तुल्य वीर का स्वरूप। (१५) प्रजाओं का राजा को, गुरु को शिष्य और पति को स्त्रीवत् वरण द्वारा प्राप्त होना। (१६–१७) 'इन्द्र' किसे कहें। उसके कर्त्तव्य। (१८–२१) सर्वोपरि राजा और प्रभु। प्रजाओं का उत्साह और कर्त्तव्य।

सू० [१७]—(१) शत्रुहन्ता इन्द्र (२) प्रतापी का प्रभाव और आतंक कैसा हो। (३) वज्रधर का शत्रु मर्दन। (४) प्रचुर बलशाली ही प्रचुर सम्पदा का स्वामी हो। (५–६) प्रजा के वास्तविक अधिकार निरूपण। (७–११) शत्रुदलन की प्रार्थना। शत्रुहन्ता का आतंक और उत्तम फल। प्रजा के पालन पोषण की प्रार्थना। (१२–१३) विजेता का अंश निर्णय। उसके उदार कर्त्तव्य। (१४–१५) राजचक्रवत् सैन्यचक्र का चालन, राष्ट्र की वृद्धि, और उसमें अभय का स्थापन। (१६) गृहस्थों का रक्षक राजा हो। (१७–२०) आचार्य इन्द्र।

सू० [१८]—(१) उन्नति का पुराण मार्ग। प्रत्येक राष्ट्र, प्रजा और पुत्रादि के पालन योग्य व्रत। (२) जन्म मरण के जीवन रूप संकट मार्ग से निकलने की जिज्ञासा। (३) मुग्ध पुरुष के समान, आत्मा की गति और विवेक की प्राप्ति। (४) आत्मा की सर्वोपरि शक्ति। (५–६) प्रकृति परमेश्वर जगत् की उत्पत्ति। जलधारावत् प्रवाह रूप से प्रकट होने वाली प्रकृति की विकृतियों से उनके विकर्त्ता के विषय में विवेकपूर्ण प्रश्न। (७) प्रभु का जगत् सर्जन। (८) स्त्रीवत्

प्रकृति का वर्णन। प्रकृति परमेश्वर का परस्पर व्याप्य व्यापकभाव। (९–१३) सर्वेश्वर कर्म फलप्रद, परमेश्वर। विवेक। राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। अध्यात्मदर्शी का कथन।

अथ षष्ठोऽध्यायः (पृ० ३५०–४१४)

सू० [१९]—(१) वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। राजा का शत्रुनाशार्थ वरण। (२) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से विद्वानों, वीरों का प्रयाण और राजा का शासन। विघ्नकारी शत्रु का विनाश। (३) शत्रु पर आक्रमण का आदेश। (४) वायु और सूर्यवत् पराक्रमी वीर शत्रु को चूर्ण करे। (५) राजा प्रजा, सैन्यादि के कर्त्तव्य। (६) भूमि माता की सेवा (७) नदियों को मेघवत् प्रजाओं को समृद्ध करने का उपदेश। (८) सूर्यवत्, मेघवत् शत्रु से घोर संग्राम। (९) शत्रुओं को करप्रद बनावे। 'उखच्छित् पर्व' का रहस्य। विस्फोटक पदार्थों का उपयोग। आग्नेयास्त्र। (१०) सनातन वेद-धर्मों का प्रवर्त्तन करे। (११) राजा विद्वानों का पालन करे।

सू० [२०]—(१–५) राजा के प्रजा पालन के धर्मों का उपदेश। (६) पति पत्नी, राजा प्रजा का प्रेम व्यवहार। पति इन्द्रपद वाच्य। इन्द्र का लक्षण। (७) सेनापति इन्द्र। (८) दण्ड नायक पालक। (९) प्रभु का महान् सामर्थ्य। (१०) उससे रक्षा, समृद्धि की याचना।

सू० [२१]—(१) अति प्रबल सैन्यबल के स्वामी राजा का रक्षार्थ आह्वान। (२) राजा कृषक वर्ग का उपकारक हो। (३) सूर्य, विद्युत्, सुवर्णवत् राजा की प्राप्ति। (४) राजा विजयी, स्तुत्य। (५) शत्रु विजयी ऐश्वर्य का स्वामी बने। (६) नायक का दीपवत् कर्त्तव्य। (७) राजा के सब प्रयत्न राष्ट्रहित हों। (८) कृषि के लिये नहरों का

आयोजन और साधनों का वर्णन। (९) बाहु कल्याण कर्म करें, दान दें। (१०) राजा कर्मानुसार वेतन दे।

सू० [२२]—(१) बलशाली राजा का कर्त्तव्य, ऐश्वर्य वृद्धि। (२) राजा की ऊणी, परुष्णी सेना। (३) बल पराक्रम का यश। (४–५) ईश्वर के जगत् सञ्चालकवत् राजा का राष्ट्र-सञ्चालन का कार्य। (६) राजा के सब कार्य न्यायानुसार होने चाहियें। प्रजाएं भी राजा की वृद्धि करें। (७–११) वह राष्ट्र का नियन्ता और उत्तम कर्मशील हो। प्रजा को ज्ञान और धन से सम्पन्न करे।

सू० [२३]-(१–४) राजा और आचार्य के सम्बन्ध में नाना ज्ञातव्य बातें। प्रजा वा शिष्य को उपदेश। (५–६) प्रश्नोत्तर से नाना उपदेश। (७) शत्रु का निःशेषकरण। (८) वेद वाणी का महत्व। राजा की आज्ञा, न्याय व्यवस्था का वर्णन। (९) सत्याचरण की महिमा। (१०) ऋत का महत्व।

सू० [२४]—(१–४) राजा की उत्तम गुण स्तुति और प्रभु की अपार कीर्ति। स्तुत्य प्रभु। सर्व शर काम्य प्राप्य, प्रभु। (५) राष्ट्र समृद्धि और आत्म समृद्धि का वर्णन। (६) प्रभु सेना और प्रभु सख्य। (७) प्रभु शक्ति और बल प्राप्ति। (८) प्रजा का सम्पन्न, बली राजा के प्रति प्रेम। (९) राजा की राष्ट्र के प्रत्येक अंग से देहांगवत् प्रीति। कर संग्रह और कर्त्तव्य-परायणता। (१०) राष्ट्र का क्रम—प्रति क्रम।

सू० [२५]—(१–२) सर्व हितकारी नायक। उसके कर्त्तव्य। उसके प्रिय सहयोगी। (३) तत्सम्बन्धी प्रश्नोत्तर। (४) सूर्यवत् राजा की स्थिति। (५) सर्वोपरि शक्ति राजा। (६) वह दुष्टों का कुछ नहीं लगता। अदाता कंजूस कदर्य को राजा प्रेम नहीं करता। (७–८) इन्द्र राजा के लिये सबकी पुकार।

सू० [२६]—(१-३) स्वतः परमेश्वर का आत्म वर्णन। पक्षान्तर में यजमान के आत्मा की उदात्तता। (४-७) श्येन, विद्वान्‌वत् आत्म-तत्व का वर्णन। धर्मात्माओं का उन्नति पथ।

सू० [२७]—(१) जीव का वर्णन। आवागमन का सिद्धान्त। (२) सर्व बन्धनमोचक, मोक्षदायक प्रभु। (३) ज्ञान दाता गुरु प्रभु ही जीव को मुक्त करता है। (४) मोक्ष मार्ग की ओर गमन। (५) राजा द्वारा ब्रह्म ज्ञान का धारण।

सू० [२८]—(१) सूर्यवत् उपकारक और देह में आत्मा के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। (२-५) राजा का प्रबल सहायक। शत्रु नाश का कर्त्तव्य। दुर्ग का प्रयोग। राष्ट्र में कृषि और खानें खोदने के कार्य को प्रवृत्त करना।

सू० [२९]—(१-२) उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (३) विद्वान् आचार्य, उपदेशक और राजा का कर्त्तव्य। (४-५) बलवान् राजा प्रजा से अभय करे। प्रजा का हितैषी हो।

सू० [३०]-(१) राजा की सर्वोत्तम स्थिति। सर्वोपरि परमेश्वर का वर्णन। (२) सेना और प्रजा दो राज्यरथ के दो पहियों के तुल्य हैं। (३) शत्रु नाशन आदि राजा के कर्त्तव्य। (४-१२) प्रजा 'दिवः दुहिता'। उषा, सेना और नववधू का समान वर्णन। शत्रुसेना का दमन। प्रजा पर आधिपत्य। धनैश्वर्य का विजय। (१३) शुष्ण के नाश का रहस्य। (१४) शम्बर हनन का रहस्य। (१५) राष्ट्र के पांच जनों की रक्षा (१६-१८) क्षत्रिय, वैश्यों की रक्षा का उपदेश। तुर्वश यदु का रहस्य। आचार्य। (१९-२०) विकलाङ्ग दीनों पर दया (२१-२३) राजा का महान् विक्रम। (२४) राजा के करसंग्रही समृद्धिकारक हों।

सू० [३१]—(१-१५) परमेश्वर और राजा से प्रार्थना और राजा के कर्त्तव्य।

सू० [३२]—(१–२१) राजा सेनापति के प्रति प्रजा की नाना प्रार्थनाएं और आकांक्षाएं और राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आचार्य के कर्त्तव्य। राजा से रक्षा, धन, ज्ञान, न्याय आदि की प्रार्थना। (२२–२४) दो आंखों के तुल्य सस्नेह रहने का राजा प्रजा वर्गों को उपदेश।

सप्तमोऽध्यायः (४१४–४८२)

सू० [३३]—(१–३) सूक्ष्म जल के परमाणुओं के तुल्य ज्ञानी पुरुषों का वर्णन, उनके कर्त्तव्य। वाज, विभ्वा, ऋभु, इनका रहस्य। (४) ऋतुओं का वर्णन (५–६) ऋभुओं के बनाये चमसों का रहस्य। चतुर्वर्ग साधना की विवेचना। (७) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य। (८–११) उत्तम शिष्यों के कर्त्तव्य।

सू० [३४]—(१–८) ऋभुओं का वर्णन। विद्वानों और शिल्पज्ञों के कर्त्तव्य (९–११) ऋभु नाम से कहाने योग्य जनों का वर्णन।

सू० [३५]—(१) ऋभुओं का वर्णन। किरणों वत् सौधन्वन, वीर। (२–३) चतुर्धा पुरुषार्थ, चतुर्धा आश्रम, चतुरंग सैन्य और चतुर्धा अन्न का निर्माण। (४) ऋभुओं के चमस का रूप। (५–६) कृत्रिम अश्वादि यन्त्र निर्माण। (७) हर्यश्व और ऋभु कौन हैं। (८) सौधन्वन, साधकों का वर्णन। (९) सौधन्वन वीरों का वर्णन।

सू० [३६]—(१–२) विना अश्व, विना लगाम के त्रिचक्र आकाश, जल, भूमि गामी रथ के दृष्टान्त से आत्मा के देहरथ का वर्णन। (३) ऋभु विद्वानों का कार्य युवकों को तैयार करना है। (४) राष्ट्र का चतुर्धा विभाग। अन्तःकरण चतुष्टय। आयु के चार भागों का वर्णन। चर्ममयी गौ जिह्वा, वाणी का वर्णन। ऋभु प्राण। (५) वेद नामक ज्ञान का वर्णन। उसके रक्षा का कर्त्तव्य। (६–८)

ऋभु, विभ्वा, बाज आदि विद्वानों, वीरों के कर्त्तव्य। उनमें वेदोपदेश के स्थिर करने का उपदेश। (९) ज्ञानपूर्वक कर्म करने का उपदेश।

सू० [३७]—(१–३) ऋभु विद्वानों के कर्त्तव्य। (४–८) उत्तम सुवर्ण रत्नादि के आभूषण धारण करने का उपदेश।

सू० [३८]—(१) द्यावा पृथिवी रूप से राजा प्रजा और उनके कर्त्तव्यों का वर्णन। (२–४) अश्ववत् रथधारक राजा का वर्णन। (५) चोरवत् दुष्ट राजा की निन्दा, उत्तम राजा की प्रशंसा। (६–७) सूर्यवत्, अश्ववत् और वरवत् वीर सेनापति का वर्णन। (८) बिजुली वत् सेनापति। (९–१०) रथवत् महारथी का वर्णन। 'दधिक्रा' सेनापति राजा का वर्णन। भयहेतु।

सू० [३९]—(१–२) 'दधिक्रा' परमेश्वर। राष्ट्र का संचालक, धारक राजा 'दधिक्रा', उसका अभिषेक। (३–५) दधिक्रा गुरु। (६) उनकी उपासना।

सू० [४०]—(१–२) दधिक्रा राजा, परमेश्वर। परस्पर स्नेही राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (३) वेगवान् बाणवत् और बाज पक्षी के तुल्य सेनापति। (४) वेग से बढ़ते अश्ववत् अभ्युदयशील पुरुष का वर्णन। (५) आत्मा का वर्णन।

सू० [४१]—(१–३) इन्द्र वरुण गुरु जन। विनीत शिष्य के कर्त्तव्य। इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुष, दिन रात्रि, प्राणपान। (४) राज्य के प्रधान दो पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) गाड़ी के तुल्य वाणी और उसके अभ्यागत गुरु शिष्य, इन्द्र वरुण। (६) मेघ विद्युत्वत् राजा अमात्य इन्द्र वरुण। (७–८) माता पितावत् उनके कर्त्तव्य। (९) अर्थपति ज्ञानपति इन्द्र वरुण।

सू० [४२]—(१) राजा के कर्त्तव्य। (२–६) राजा वरुण, उसका वैभव। (७) शत्रुनाशक राजा (८–९) त्रसदस्यु का रहस्य। (१०) इन्द्र और वरुण।

सू० [४३]—(१–७) स्त्री पुरुषों के उत्तम गुणों का वर्णन ।

सू० [४४]—(१–६) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष के कर्त्तव्य ।

सू० [४५]—(१–२) गृहस्थ रथ का वर्णन । उसमें विद्वान् की जल अन्नादि से पूर्ण पात्रवत् स्थिति । किरणों वत् विद्वानों का अभ्युदय । (३) गृहस्थ स्त्री पुरुषों का कर्त्तव्य । (४) विद्वान् नायकों का कर्त्तव्य । (५–७) अग्नियों के तुल्य विद्वान् गण । उनके कर्त्तव्य ।

सू० [४६]—(१–६) ज्ञानवान् और बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य । विद्युत् वा सूर्य और पवन वत् इन्द्र वायु ।

सू० [४७]—(१–४) राजा सेनापति, इन्द्र वायु । गुरु शिष्य । इनके कर्त्तव्य ।

सू० [४८]—(१–५) ज्ञानवान् बलवान् पुरुष वायु । उसके कर्त्तव्य । शत्रु उच्छेदक सेनापति का वर्णन ।

सू० [४९]—(१–५) बलवान् राजा और ज्ञानवान् अमात्य इन्द्र बृहस्पति । उनके कर्त्तव्य । उसी प्रकार आचार्य शिष्य । उनका सोमपान ।

सू० [५०]—(१–३) परमेश्वर विद्वान्, राजा का वर्णन । (४) बृहस्पति सप्तास्य सप्तरश्मि आत्मा । (५) राष्ट्रपालक राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (६) परमेश्वर का वर्णन । (७) प्रभु बृहस्पति । (८–९) परमेश्वर का राजवत् वर्णन । (१०) राजा और परमेश्वर का वर्णन । (११) राजा और वेद विद्यापालक के कर्त्तव्य ।

अष्टमोऽध्यायः (पृ० ४८२–५५४)

सू० [५१]—(१–११) उषावत् नव युवतियों के कर्त्तव्यों का वर्णन । उषावत् उनका वर्णन ।

सू० [५२]—उषावत् गृहपत्नी के कर्त्तव्य ।

सू० [५३]—(१–७) सूर्यवत् सविता प्रभु परमेश्वर, जगदुत्पादक का वर्णन, प्रजापति का वर्णन।

सू० [५४]—(१–३) सविता, प्रभु, राजा, आचार्य। प्रभु की उपासना स्तुति प्रार्थना, (४) प्रभु का अविनाशी सत्य सामर्थ्य, (५) सब महान् शक्तियों, पञ्च भूतों के भी सामर्थ्य उसी उत्पादक के हैं। (६) सब उसी की विभूति हैं।

सू० [५५]—(१) सर्वोपरि शासक की विवेचना। (२) सर्वप्रिय विद्वान् जन। (३) स्त्री माननीया है, वह सब सुखों की जननी है। (४) उत्तम विद्वान् और स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य, उत्तम भूमि और गृह आदि प्राप्त करें। (५) स्त्री को पापों से बचाने वाला उसका पति है। (६) स्त्रियें कैसे पुरुष को वरें। (७) अदिति माता रूप स्त्री के कर्त्तव्य। (८–९) अग्नि पुरुष, उषा स्त्री का कर्त्तव्य। (१०) सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, इन्द्र देवों के रूप में पति को सुख प्राप्ति।

सू० [५६]—(१–७) सूर्य पृथिवीवत् वर वधू, स्त्री पुरुष और गुरु शिष्य, राजा प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। दोनों का उत्पादक विश्वकर्मा प्रभु। सुज्ञानी गुरु है।

सू० [५७]—(१–८) खेतपाल के समान गृहस्थ में क्षेत्रपति पुरुष और संसार में क्षेत्रपति परमेश्वर और राष्ट्र में राजा के कर्त्तव्य। अन्न, फल, मूल आदि खाद्य सामग्री की समृद्धि की याचना। उत्तम रीति से कृषि का उपदेश।

सू० [५८]—(१) समुद्र से उत्पन्न मधुमान् ऊर्मि का वर्णन। (२) वेदमय परम ज्ञान को धारण करने का आदेश। चतुःशृङ्ग गौर का रहस्य। (३–७) मर्त्य मात्र में प्रविष्ट चतुःशृंग, त्रिपाद्, द्विशिरा, सप्तहस्त महादेव वृषभ का आलंकारिक वर्णन। (८–१०) उत्तम

स्त्रियों के समान घृतधारा और वाणियों का वर्णन। (११) जगदाश्रय परमेश्वर।

इति चतुर्थं मण्डलम्

अथ पंचमं मण्डलम्

सू० [१]—(१–३) प्रातः यज्ञ। तरु की शाखाओं के समान विद्वानों को शाखा प्रशाखाओं में फैलने का आदेश। सूर्यवत् ज्ञानी पुरुष का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। सूर्यवत् गुरु का शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य। वाणियों द्वारा ज्ञानबीजारोपण, ज्ञानयज्ञ का वर्णन। शिष्यों का भूमिवत् और अग्निवत् ज्ञानाहुतियों का ग्रहण। (४) माता पितावत् गुरुजनों से शिष्य पुत्र की उत्पत्ति। (५–६) जीवन के पूर्व भाग में वनस्थों के बीच ज्ञानग्रहण का उपदेश। उसका अग्नि वा सूर्यवत् व्यवहार (७–१२) ज्ञानी की यज्ञाग्निवत् स्थिति। ज्ञानी, गुरु, परम पावन, दान्त चित्त, पूज्य है, वही 'सहस्रशृङ्ग वृषभ' सूर्यवत् है। सहस्रशृङ्ग वृषभ का रहस्य। उसके कर्त्तव्य।

सू० [२]—(१–६) माता पुत्र के दृष्टान्त से आचार्य शिष्य और राजा और पृथिवी का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (७–१२) नायक राजा के नाना कर्त्तव्य। शुनःशेप के बन्धन मोचन का रहस्य।

सू० [३]—(१) अग्रणी नायक के ही वरुण, मित्र, इन्द्रादि नाना रूप और उनकी विशेषताएं। (२) कन्या के पितावत् राजा के कर्त्तव्य। (३–६) राजा का रुद्ररूप। (७) पापी को कठोर दण्ड देने का विधान। (८) यज्ञाग्निवत् नायक पुरुष का रूप। (९) राजा का पुत्र और पितृ भाव। राजा पिता वसु। (१०–११) राजा द्वारा विद्वान् का पालन (१२) आचार्य और शिष्य गण।

सू० [४]—(१) वसुपति अग्नि राजा आचार्य प्रभु की स्तुति।

(२) हव्यवाड् यज्ञाग्निवत् विद्वान् का वर्णन । (३) परमपावनाग्नि विश्पति । (४) जातवेदा का समिदाधान । (५) दमूना अग्नि अतिथि का वर्णन । (६–८) दुष्टों का दमन और नाश । (९) नौकावत् प्रभु । (१०) उससे अमृतत्व की प्राप्त्यर्थं यज्ञ का रहस्य । (११) ऐश्वर्य को कौन प्राप्त करता है ।

सू० [५]—(१–४) अग्निहोत्र, देवयज्ञ का वर्णन । विद्वान् अग्नि और राजा । उसके कर्त्तव्य । (५) द्वारों के समान सेनाएं और प्रजाओं का कर्त्तव्य । (६) उपासानक्त । स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (७) दैव्य होता । (८) तीन देवियां । (९–१०) शिव और वनस्पति अग्नि । (११) अग्नि आदि के लिए हवि प्रदान ।

सू० [६]—(१–१०) अग्नि वसु का विवरण । विश्पति उसके कर्त्तव्य । यज्ञाग्निवत् अग्नि, राजाग्नि का वर्णन ।

सू० [७]—(१–१०) सहस्वान् नक्षा, अग्नि सेनापति, उसके कर्त्तव्य । यज्ञ की व्याख्या ।

सू० [८]—(१–७) यज्ञाग्निवत् तेजस्वी का वरण और संस्थापन । गृहपतिवत् उसका वर्णन । प्रजाओं द्वारा राजा की चाह और प्रजाओं के प्रति उसके कर्त्तव्य ।

अथ चतुर्थोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः (पृ० ५५५–६२३)

[पञ्चमे मण्डले]

सू० [९]—(१–७) यज्ञाग्निवत् विद्वान् और तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य । वनाग्निवत् तेजस्वी नायक ।

सू० [१०]—(१–७) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुष का वर्णन । उससे प्रजा की उपयुक्त याचनाएं ।

सू० [११]—(१–२) अग्नि विद्युत् आदि के तुल्य तेजस्वी, विद्वान् अध्यक्ष के कर्त्तव्य वर्णन। वह तीनों सभा-भवनों का अध्यक्ष हो। (३) संस्कारों द्वारा उसको सुसंस्कृत करना। (४) उसका दूत आदि के पद पर वरण। (५) प्रभु के प्रति प्रार्थना। (६) मथित अग्नि के समान आत्मा और नायक की मथन द्वारा उत्पत्ति।

सू० [१२]—(१–२) वृष्ट्यर्थ यज्ञाहुति के तुल्य नायक पुरुष के प्रजा का करादि त्याग, सत्य ज्ञान और सत्याचरण का उपदेश। (३–४) विना भूमि के जैसे बीज नहीं फलता वैसे ही विना प्रजा वा पृथिवी के राष्ट्र नहीं समृद्ध होता। राजा को उसी को प्राप्त करने का उपदेश। (५) दुष्टों का स्वयं नाश। (६) नहुष-पुत्र का रहस्य।

सू० [१३]—(१–६) विद्वान् तेजस्वी पुरुष की सेवा सुश्रूषा, उसका समर्थन। अपने ऐश्वर्य के निमित्त प्रजा का राजा का आश्रय ग्रहण।

सू० [१४]—(१–६) परमेश्वर की स्तुति। विद्वान् शिष्यादि का ज्ञानवान् करने का आदेश। यज्ञाग्निवत् उसकी उपचर्या। उसके दस्युनाशक सामर्थ्य की उत्पत्ति।

सू० [१५]—(१–५) उत्तम विद्यावान् श्रेष्ठ जन का अभिषेक। उसके गुणों की स्तुति। उसके प्रति अधीनों के कर्त्तव्य। उसके मातृवत् कर्त्तव्य। विद्युत्वत् उसका उग्र सामर्थ्य। चौरवत् उसका धनान्वेषण का कर्त्तव्य।

सू० [१६]—(१–५) मित्रवत् अग्नि का स्थापन, उस अग्निवत् विद्वान् अग्रणी नायक का कर्त्तव्य। सम्पन्न जनों के नायक के प्रति कर्त्तव्य।

सू० [१७]—(१-५) यज्ञाग्निवत् उत्तम अध्यक्ष की स्तुति। उसके कर्त्तव्य।

सू० [१८]—(१-,५) प्रातः स्मरणीय प्रभु की उपासना। उत्तम विद्वान् अधिनायक वृन्द का आदर सत्कार। नायक जन कैसे बनें।

सू० [१९]—(१) जीव बालकवत् अग्नि की उत्पत्ति। (२) जीवों का पुरियों में प्रवेश। (३) जीवों को अन्न द्वारा पोषण। (४-५) न्याय से शासन कर्त्ता की स्वस्थ शरीरवत् वृद्धि। वायु से धौंके हुए अग्नि के तुल्य नायक की बलवान् सहयोगी से वृद्धि।

सू० [२०]—(१-४) विद्वान् का उपदेश करने का कर्त्तव्य। उसका आदर सत्कार करने का उपदेश।

सू० [२१]—(१-४) मनुष्यवत् अग्नि, विद्युत् आदि का स्थापन। विद्वान् सन्देशहर अग्नि। उसका आदर सत्कार।

सू० [२२]—(१-४) अग्रणी पुरुष का आदर सत्कार।

सू० [२३]—(१-४) अग्रणी नायक के कर्त्तव्य।

सू० [२४]—(१-४) अग्रणी प्रमुख अध्यक्ष के प्रति प्रजा के निवेदन।

सू० [२५]—(१-३) प्रभु परमेश्वर और राजा वा नायक से प्रजाओं की प्रार्थना। (४) यन्त्रचालक। अग्निवत् अध्यक्ष के कर्त्तव्य। (५-६) आचार्य के कर्त्तव्य। (७) जिम्मेदारी का 'अग्नि' पद। (८-९) विद्युत् के तुल्य उसके कर्त्तव्य।

सू० [२६]—(१-९) ज्ञानवान् गुरु के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्युत् का वर्णन। उत्तम पुरुष का उच्च पद पर स्थापन।

सू० [२७]—(१-३) इन्द्र पद। उस पद के अधिकारी का

कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्वान् के कर्त्तव्य। त्रसदस्यु की व्याख्या। (४–६) शिष्य गुरु के कर्त्तव्य। अश्वमेध की व्याख्या।

सू० [२८]—(१) प्रातःकालिक सूर्य, यज्ञाग्निवत् राजा के कर्त्तव्य। उषा के दृष्टान्त से विदुषी के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२–३) सूर्यवत् वृष्टि हेतु होकर प्रजा की समृद्धि का कारण हो। (४) यज्ञाग्निवत् राजा की दीप्ति, तेज। (५) उसको अधीनों को भृति देने का उपदेश। (६) उसका आदर करने का उपदेश।

सू० [२९]—(१) तीन प्रधान बल। तीन सभाओं द्वारा राजा का स्थापन। (२) उसका राजदण्ड ग्रहण। दुष्टों के दमन का कर्त्तव्य। (३) राष्ट्रैश्वर्य पालन, शत्रु नाशक। (४) सेनाओं का प्रबन्ध और सिंहवत् पराक्रम। (५) राष्ट्र से करादान, नवभूमि विजय और उस पर अध्यक्ष स्थापन। (६) शिल्पी के तुल्य बलवान् राजा के कर्त्तव्य। (७) ३०० बड़े अध्यक्षों का स्थापन। सभाओं वा त्रिविध सैन्यों का स्थापन। (८–११) युद्धार्थ प्रयाण। शत्रु नाश। (१२) विद्वान् आचार्य की गोरस से पूर्ण पात्र से तुलना। उसी प्रकार सम्पन्न राजा का वर्णन। (१३–१५) ईश्वर, विद्वान् राजा की स्तुति और अर्चा।

सू० [३०]—(१–४) विद्युत्, बीज निधाता प्रभु का वर्णन। विद्यादाता गुरु का वर्णन। (५) विद्युत् के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। (६) प्रजा समृद्ध्यर्थ दुष्टों का दमन। (७) गोदुग्धवत् कर संग्रह का उपदेश। अवश्य दण्डनीय का शिरच्छेद। पुरस्कार योग्य कामना। (८–९) शत्रु नाशार्थ सैन्य सञ्चालन। (१०–११) शत्रु की छानबीन, स्वशक्ति वर्धन। (१२) भूमियों का अध्यक्षों में विभाग और प्रबन्ध। (१३) अधीनजनों का राजा से पुत्र पिता का सा सम्बन्ध। (१४–१५) सूर्यवत् राजा का राष्ट्र भोग।

सू० [३१]—(१) सूर्यवत् सेनापति राजा का वर्णन। (२) राजा अधर्म में पैर न रखे, समवाय बनावे और राष्ट्र में अविवाहितों

को विवाहित करके राष्ट्र की प्रजा-वृद्धि का प्रबन्ध करें। (३) राजा शत्रु से भूमि की रक्षा करे। (४) प्रजा राजा की शक्ति बढ़ावे। (५) शत्रु पर आक्रमण का उपाय। (६) नये २ साहस कार्यों का उपदेश। (७) राजा वा प्रधान का कर्त्तव्य। राष्ट्रवृद्धि, वा शत्रुनाश, शक्तिसंचय। (८) ज्ञान, पालन का प्रबन्ध। सैन्य का धारण। (९) सेनापति और सैन्य के कर्त्तव्य। (१०–११) नाना योग्य पुरुषों की नियुक्ति, यन्त्र के मुख्य चक्रवत् सैन्य चक्र का संचालन। (१२–१३) राष्ट्र का प्रेम से भरण पोषण।

सू० [३२]—(१) सूर्यवत् वीर राजा के नाना कर्त्तव्य। (२) कृषक के समान राजा के कर्त्तव्य। (३) सिंहवत् राजा के कर्त्तव्य। (४) वर्षते मेघ वा विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य। (५) शत्रु को बन्दी कर लेने का उपदेश। (६–९) शत्रु को नाश करने का उपदेश। (१०) स्त्रीवत् भूमि का पालन। (११) पञ्चजनों का स्वामिवरण। (१२) दानशील राजा और त्यागी विद्वान्। इति प्रथमोऽध्यायः।

अथ द्वितीयोऽध्यायः (पृ० ६२३–६८५)

सू० [३३]—(१–३) उत्तम नायक के अधीन निर्बलों का प्रबल संघ। अध्यक्ष के कार्य। (४–५) उर्वरा भूमियों का विजय। राजा के शासन की विशेषता। (६) राज पुरुष की विशेषता वसुपति राजा। (७) सेना और प्रजा के लिये अन्न-जल का प्रबन्ध करना राज्य का कर्त्तव्य। (८) विद्वानों वीरों के सहयोग से उत्तम प्रबन्ध। (९) राष्ट्र शरीर को सुशोभित करने का प्रकार। (१०) मुद्रांकित राज-शासनों का प्रचार।

सू० [३४]—(१) प्रजा का पत्नीवत् राजा को वरण, राजा का अजातशत्रु रूप। तदनुरूप पदों के कर्त्तव्य। (२) अन्न-भोजन वत् राष्ट्रैश्वर्य भोग। (३) आरोग्य-सम्पादन। (४) वैरी का पूर्ण दमन।

(५) मित्रता के अयोग्य और योग्य का विवेक। (६) राजचक्र में सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (७) राजा योग्य अयोग्य को परितोषिक और दण्ड दे। पात्रानुरूप धन का विभाग करे (८–९) समृद्धों और बलवानों में भी व्यवस्था करे। उनको लड़ने न दे। राजा प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य।

सू० [३५]—(१–४) राजा वा आचार्य प्रजार्थ ही शक्तियां, ज्ञानों और सभादि को धारण करे और उनको सम्पन्न करे। उसके अन्यान्य कर्त्तव्य (५–६) प्रयाण का आदेश। (७–८) प्रयाण और युद्धकालिक कर्त्तव्य।

सू० [३६]—(१) समृद्धिकाम राजा की करसंग्रह की नीति। (२) राष्ट्रपालन में स्थान स्थान पर सैन्य-संस्थापन। मुख के जबड़ों के समान सेनाओं की स्थिति। (३) अशक्त प्रजा की स्थिति और उसका कर्त्तव्य। (४) ब्रह्म क्षत्र वर्ग का राजा के साथ सम्बन्ध (५) बलशाली, समृद्ध उत्तम राजा का कर्त्तव्य। (६) अधीन दो प्रमुख और प्रजा द्वारा उसका आदर।

सू० [३७]—(१-२) विद्युत्वत् विजयशील बलवान् नेता का कर्त्तव्य। (३) प्रजारक्षार्थ शासन। (४) पत्नीवत् पालक प्रभु का वरण। (५) समृद्ध सम्पन्न राजा।

सू० [३८]—(१-५) उत्तम राजा के कर्त्तव्य।

सू० [३९]—(१–५) राजा के प्रजा को समृद्ध करने के कर्त्तव्य। दानशील को उपदेश। सर्वदाता प्रभु। उसकी स्तुति।

सू० [४०]—(१) सोमपति इन्द्र राजा के कर्त्तव्य। (२) उसका बल और बल का उपयोग। (३–४) तेजस्वी होने का उपदेश। (५–७) चक्र द्वारा उत्पन्न सूर्यग्रहण के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन। (८) शत्रुनाश के उपाय। (९) राजा की पुनः स्थापना।

सू० [४१]—(१–२) मित्र और वरुण। उनके कर्त्तव्य। (३) अश्वी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (४) कार्यकर्त्ताओं की अविलम्बकारी होने का उपदेश। (५) सामान्य विद्वान् जनों के कर्त्तव्य। (६) वायु तीव्रगामी साधन का रथ में उपयोग। प्रजाओं के कर्त्तव्य। (७) उपासानक्ता दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (८) पोष्य वर्ग का आदर। (९) पालन-कर्त्ताओं के कर्त्तव्य। (१०) वैद्युतिक अग्नि, तद्वत् तेजस्वी नायक के कर्त्तव्य। (११) वृद्ध गुरु जनों के कर्त्तव्य। (१२–१३) प्रजा और शासक के परस्पर के कर्त्तव्य। (१४) उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य। सेना के कर्त्तव्य। विद्वानों के कर्त्तव्य। (१५–२०) सेना और वाणी का साथ वर्णन।

सू० [४२]—(१) वाणी का वर्णन। पक्षान्तर में पञ्चजन की वाणी का आदर (२) अखण्ड शासक परिषत् अदिति। उसके मातृवत् कर्त्तव्य, (३–६) विद्वानों में उत्तम का अभिषेक। राजा विद्वान् के कर्त्तव्य, (७–१०) प्रधान पद योग्य जन। दुष्टों और कदर्यों को दण्ड। (११–१२) वीर पुरुष का आदर। रुद्र का रहस्य। वैद्यवत् वीर जन स्त्रियोंवत् उत्तम नदियों नहरों का उपयोग। (१३) गृहस्थवत् राज्य-व्यवहार। (१४) मेघवत् गुरु का कर्त्तव्य। (१५–१८) सैन्य बल का कर्त्तव्य। राजाज्ञा की व्यापकता और मान्यता हो। शासन में अपीड़ित प्रजा का रहना। स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य।

सू० [४३]—(१) नदीवत् वाणी का वर्णन। (२) माता पिता के प्रति कर्त्तव्य। (३–५) किरणों वत् विद्वानों का कर्त्तव्य। उत्तम अन्न जल से सत्कार करने का उपदेश। वायुवत् और सूर्यवत् क्षत्रियों का कर्त्तव्य। (६) अन्नवत् ज्ञानोपार्जन। (७) किरणोंवत् और गुरुओं का शिष्यों को तप करने का उपदेश। (८) उत्तम शान्तिदायक वाणी का प्रयोग हो। स्त्री पुरुष समान रूप से उन्नति पथ पर बढ़ें (९) ज्ञानवान् बलवानों का आदर (१०) शिष्यों, वीरों के कर्त्तव्य, वायु

मरुत् शिष्य, प्रजा वैश्य जन हैं। (११) नदीवत् वाणी और स्त्री का वर्णन। अधिकार, न्यायशासन योग्य पुरुष। (१२–१३) शस्त्र-सज्जित राजा के कर्त्तव्य। (१४) जलवत् राजा का अभिषेक संस्कार। (१५–१७) मातवत् राजा वा गुरु का कर्त्तव्य। प्रजा पीड़ारहित राज्य में रहे। सुखदायक नीति से रहे।

सू० [४४]—(१) राजा को राष्ट्र-दोहन का उपदेश। (२) राष्ट्र की रक्षा और समृद्धि का उपाय। (३) राजा की उन्नति का मार्ग। (४) कारादान की विधि। (५) प्रजा को बढ़ाने का उपदेश। (६) वृक्षों के तुल्य शासक जनों को दयालु होने का उपदेश। (७–८) उत्तम राजा प्रजा के कर्त्तव्य। (९) उत्तम वाणी, उत्तम गति उन्नति का मूल है। (१०) नायक होने योग्य पुरुष। (११) उत्तम सेना-नायक। (१२) उदार राजा। (१३) पितावत् राजा। (१४–१५) सावधान का महत्व, उसकी मैत्री।

सू० [४५]—(१) सूर्यवत् विद्वान् का ज्ञान प्रकाश करने का कर्त्तव्य। (२) नाना दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य। (३) गर्भवत् बालक के समान शिष्य वा राजा का कार्य। (४–७) ज्ञानवृद्धयर्थं विद्वानों के कर्त्तव्य। (८) वेद वाणियों का परम स्थान प्रभु। (९–११) तेजस्वी के कर्त्तव्य।

सू० [४६]—(१–६) गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश। विद्वानों के कर्त्तव्य। (७–८) स्त्रियों के कर्त्तव्य।

॥ इति चतुर्थेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

———



॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

चतुर्थेऽष्टके । पञ्चमे मण्डले

(सप्तचत्वारिंशत्सूक्तावारभ्य)

अथ तृतीयोऽध्यायः (पृ० १–७१)

सू० [४७]—विश्वेदेवाः । माता के कर्त्तव्य । माता का नवयुवति कन्या को उपदेश । (२) पुत्र पुत्रियों को माता का उपदेश । (४) जीव की उत्पत्ति का रहस्य । (५) शरीर की उत्पत्ति का रहस्य । (६) सन्तान बनाने में माता के उत्तम संकल्पों की आवश्यकता । (७) वर वधू माता पिताओं को उपदेश । (पृ० १-४)

सू० [४८]—विश्वेदेवाः । राजसभा और सेना का योग्य नायक वरने का कर्त्तव्य । (२-५) नायक के कर्त्तव्य । (पृ० ४-७)

सू० [४९]—विश्वेदेवाः । (१-३) पितावत् शासकों के कर्त्तव्य । (४-५) अहिंसक दयाशील राजा के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । (पृ० ७-९)

सू० [५०]—विश्वेदेवाः । उत्तम मित्र और धनैश्वर्य प्राप्ति का उपदेश । (२) समवाय बनाने का उपदेश । (३) अतिथियों, स्त्रियों और शिष्टों का आदर करने का उपदेश । (४-५) रथाध्यक्ष, सेनाध्यक्षों से शान्ति सुख की आशा । (पृ० ९-११)

सू० [५१]—विश्वेदेवाः । राजा वा शासक का पुत्रवत् प्रजा के पालन का कर्त्तव्य । (२-३) धर्मात्माओं को प्रजापालन में योग देने

सू० [५७]—मरुतः । वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य । श्रेष्ठ रथों का उपयोग । (२) उत्तम वीरों को उपदेश । 'पृश्निमातरों' का रहस्य । (३-८) मेघमालाओं और वायुओं के दृष्टान्त से उनका वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ४४-४८)

सू० [५८]—मरुतः । (१-४) वीरों, विद्वानों का वर्णन, उनके कर्त्तव्य । (५) अरों के दृष्टान्त से उनको उपदेश । (६) वर्षते मेघों की तुल्यता से वर्णन । (७) वायुवत् कर्त्तव्य । (पृ० ४८-५२)

सू० [५९]—मरुतः । (१-७) वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । शोभा और ऐश्वर्य के निमित्त बल धारण का उपदेश । वीरों को सुव्यवस्थित होकर युद्ध करने का उपदेश । (८) राजा, सेनाओं और स्त्रियों के कर्त्तव्य । (पृ० ५२-५७)

सू० [६०]—मरुतः । अग्निः । (१-३) वीरों, विद्वानों का वर्णन । प्रजा की उत्तम अभिलाषा । (४) विवाहित वरों के तुल्य सुदृढ़, सुन्दर होने का उपदेश । (५) भ्रातृवत् समान रूप से उनको रहने का उपदेश । (६) सन्तोष का उपदेश । (७) ऐश्वर्य दान का उपदेश । (८) राजा को विद्वान् होने का उपदेश । (पृ० ५७-६०)

सू० [६१]—मरुतः । (१-४) परस्पर कुशलप्रश्न व्यवहार का उपदेश । अध्यात्म में—प्राणों का वर्णन । (५-८) शशीयसी महिषी-स्त्री को वीर, जितेन्द्रिय पुरुष के वरण का उपदेश । (९-१०) दाम्पत्य के लिये प्रेमपूर्वक वरण का उपदेश । (११-१६) मरुतः । विद्वान् यशस्वी सफल गृहस्थ । (१७-१८) दाल्भ्यः । दूत का कार्य । विद्युत् यन्त्रों से दूर देश में व्यापारियों को पहुँचाने और यानों द्वारा मेल-सर्विस का उपदेश । (पृ० ६०-६६)

सू० [६२]—मित्र और वरुण । (१-३) सूर्यवत् राजा-प्रजा वर्गों को सत्य व्यवहार का उपदेश । (४-५) श्रेष्ठ पुरुषों का न्यायासन पर

रथवत् आरोहण । (६-८) राजा अमात्य, स्त्री पुरुषों को भवन और स्तम्भवत् रहने का उपदेश । (पृ० ६६-७१)

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ७१-१४३)

सू० [६३]—मित्र वरुण । (१-७) देह में प्राण उदानवत्, गृह में पतिपत्नीवत्, रथी सारथिवत् राजा प्रजा के कर्त्तव्य । 'पर्जन्य' का रहस्य । (" ७१-७५)

सू० [६४]—मित्र वरुण । (१-७) राजा, ब्राह्मण, क्षात्रवर्ग के कर्त्तव्य, ऐश्वर्यवानों के कर्त्तव्य । (पृ० ७५-७७)

सू० [६५]—मित्र वरुण । (१-३) गुरु शिष्य के कर्त्तव्य । (४-६) मित्र का लक्ष्य । (पृ० ७७-७९)

सू० [६६]—मित्र वरुण । (१-५) ज्ञानप्रद गुरु और आचार शिक्षक आचार्य का वर्णन । स्त्री पुरुषों को ज्ञानोपार्जन का उपदेश । (६) बहुपाल्य स्वराज्य के लिये यत्न का उपदेश । (पृ० ७९-८१)

सू० [६७]—मित्र वरुण । दो प्रजापालकों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य विद्युद्वत् उनके कर्त्तव्य । (३-५) सब अन्य अधिकारियों का वर्णन । (पृ० ८१-८२)

सू० [६८]—मित्र वरुण । न्याय और शासन के दो अध्यक्षों का वर्णन । (२) वैद्युत और भौम अग्निवत् सभा-सेना के अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (पृ० ८३-८४)

सू० [६९]—मित्र वरुण । न्याय और शासन कर्त्ताओं को तीनों वेदों के ज्ञान का आदेश । (२) सभा-सेनाध्यक्षों की शक्तियों, प्रजाओं के कर्त्तव्य और तीन सभाओं का वर्णन । ब्रह्मचर्य काल में वेद वाणी के अभ्यास का उपदेश । (पृ० ८४-८६)

सू० [७०]—मित्र वरुण । (१-३) सभा सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य । उनके गुण । (४) स्वोपार्जित धन के भोग का उपदेश । (पृ० ८६-८७)

सू० [७१]—मित्र वरुण । ज्ञानी और सर्वप्रिय जनों का ज्ञान और लोकोपयोगी कर्मों के बढ़ाने का उपदेश। (पृ० ८७-८८)

सू० [७२]—मित्र वरुण। उक्त अध्यक्षों को माता पितावत् प्रजा पालन का उपदेश। (पृ० ८८-८९)

सू० [७३]—अश्विनौ। रथी सारथिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) उनके आदर का उपदेश। (३) उनको परस्पर बंधने और गृहस्थ चलाने का उपदेश। गृहस्थ का उच्च आदर्श। (५-७) उत्तम काम का उपदेश। (८) दोनों को व्यापार, यात्रादि का उपदेश। (९-१०) स्त्री पुरुष को उपदेश। (पृ० ८९-९३)

सू० [७४]—अश्विनौ। (१-३) गृहस्थ स्त्री पुरुषों को उपदेश। (४) राष्ट्र में उनकी उत्तम पदों पर नियुक्ति। (५) बूढ़ों को पृथक् कर समर्थ युवकों की नियुक्ति। (६-८) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (९-१०) सभा सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० ९३-९६)

सू० [७५]—अश्विनौ। विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ९६-१००)

सू० [७६]—अश्विनौ। रथी सारथिवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के परस्पर के कर्त्तव्य। (पृ० १००-१०२)

सू० [७७]—अश्विनौ। प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। (१०२-१०४)

सू० [७८]—अश्विनौ। (१-४) सत्याचरण का उपदेश। दो हंसों और हरिणों के दृष्टान्त से उनके कर्त्तव्यों का वर्णन। (५) वनस्पति, आचार्य के कर्त्तव्य। (७-९) गर्भस्रावणी उपनिषत्॥ गर्भविज्ञान, उत्तम प्रसवविज्ञान॥ (पृ० १०४-१०७)

सू० [७९]—उषा। प्रभात वेला के दृष्टान्त से स्त्री के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२) 'दिवः दुहिता' का रहस्य। (२) पति पत्नी दोनों के पक्षों में समान योजना। (८) उत्तम माता के कर्त्तव्य। दान का उपदेश। (पृ० १०८-११२)

सू० [८०]—उषा। उत्तम विदुषी गुणवती स्त्री का वर्णन। (२) जीवन मार्ग को सुखी बनाने वाली सहायक स्त्री। (३) उत्तम गृहिणी। (४) पतिव्रता का कर्त्तव्य। (५) वरवर्णिनी का आदर। (६) उसके कर्त्तव्य। (पृ० ११२-११५)

सू० [८१]—सविता। परमात्मा का वर्णन। (१) सर्वोपरि स्तुत्य। (२) जगद्-उत्पादक, जगत्पालक, सर्वसम्राट्, पापनाशक। (३) जगन्निर्माता, सर्वाग्रणी, सर्वनेता। (४) सबका आश्रय। सर्व-मित्र। (५) एक अद्वितीय, सर्वपोषक, विराट्। (पृ० ११५-११७)

सू० [८२]—सविता। परमेश्वर का वर्णन। (२) अविनाशी सामर्थ्यवान् प्रभु। (३) उससे ऐश्वर्य की याचना। (४) दुःस्वप्ननाशन की प्रार्थना। (५) भद्र-कल्याण की प्रार्थना। (६) निष्पाप होकर ऐश्वर्यधारण की प्रार्थना। (७) सर्वपाल सविता प्रभु का वरण। (८) सर्वोपास्य सर्वसाक्षी प्रभु। (९) सर्वगुरु प्रभु। (११७-१२०)

सू० [८३]—पर्जन्य। (१-३) मेघवत् राष्ट्रपालक का वर्णन। (४) बरसते मेघ के साथ युद्ध का विशिष्ट वर्णन। (५) सर्वपोषक राजा और मेघ। (६) धारावान् मेघ और सेनाध्यक्ष। (७) उत्तम न्याय व्यवस्था का आदर्श। (८) मेघवत् कोष वृद्धि और सद् व्यय का उपदेश। (९) मेघवत् उदार सर्वप्रिय राजा। (१०) मेघवत् पर-विजयी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १२०-१२६)

सू० [८४]—पृथिवी। माता का वर्णन। (२) उसका पति के प्रति कर्त्तव्य। (३) उसका भूमिवत् राजशक्ति के तुल्य वर्णन। (पृ० १२६-१२७)

सू० [८५]—वरुण। सर्वश्रेष्ठ प्रभु। (२) राजा के राष्ट्रोपयोगी कर्त्तव्य। (३) प्रजा का कष्टवारक सम्राट्, वरुण। (४) राजा के भूमि सेवन के कर्त्तव्य। (५-६) महान् असुर की माया का वर्णन। (७-८) पापमोचन की प्रार्थना। (पृ० १२७-१३०)

सू० [८६]—इन्द्र अग्नि। (१-२) विद्युत् अग्निवत् नायक, अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (३-४) उनका स्वरूप राजा और विद्वान्। (५) दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। (पृ० १३१-१३३)

सू० [८७]—मरुद् गण। (१-४) मरुत्वान् प्रभु का वर्णन। उत्तमों का आदर, सत्संग और गुरु जनों से ज्ञान प्राप्ति का उपदेश। (५-९) अग्निवत्, वायुवत् वीर पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० १३३-१३७)

इति पञ्चमं मण्डलम्

अथ षष्ठं मण्डलम्

सू० [१]—अग्निः। (१-५) अग्निवत् तेजस्वी वीर विद्वान् के कर्त्तव्य। (६) उपासना का प्रकार। (७) नायक के कर्त्तव्य, प्रजा का चित्तरञ्जन। (८) 'विश्पति' राजा और ईश्वर। उसकी उपासना। (९) ईश्वर भक्त को सत्फल। (१०) अग्निहोत्र की सत्कार से तुलना। (११-१३) ईश्वर से ज्ञानों, ऐश्वर्यों की याचना। इति चतुर्थोऽध्यायः॥ (पृ० १३८-१४३)

अथ पञ्चमोऽध्यायः (पृ० १४३–२०७)

सू० [२]—अग्निः। (१-४) तेजस्वी पुरुष और पक्षान्तर में ईश्वर का वर्णन। (५-११) यज्ञ और उपासना। अग्नि और ईश्वर का औपम्य। (१२) संसार से तरने के लिये ज्ञान की याचना। (पृ० १४३-१४७)

सू० [३]—अग्निः। विद्वान्, राजा, प्रभु इनका समान रूप से वर्णन। (२) अग्निहोत्र वा यज्ञ का सत्फल। (३) सूर्यवत् ज्ञानवान् प्रभु। (४) विद्वान् राजा का परशु, आज्य, नियारिया और अग्निवत् कर्त्तव्य। (५) उसको असंग होकर धनुर्धर वा श्येन पक्षीवत् कर्त्तव्य—

पालक होने का उपदेश । (६-७) सूर्यवत् सैन्यपति राजा का कर्त्तव्य । (पृ० १४८-१५१)

सू० [४]—अग्निः । (१-७) परमेश्वर सर्वस्तुत्य, सब तेजों का धारक, पावन, सर्व बन्धन शिथिल करता है। (८) परमात्मा से निर्विघ्न मार्ग से ले जाने की प्रार्थना । (पृ० १५१-१५५)

सू० [५]—उत्तम राजा का वर्णन। उसके कर्त्तव्य । (पृ० १५५-१५७)

सू० [६]—अग्निः । (१-५) दिग्विजयी वीरों का विजय। उनको अग्नि से उपमा । (६-७) सूर्य चन्द्र के प्रकाश प्रसारवत् राजा का राज्यप्रसार । (पृ० १५७-१६०)

सू० [७]—वैश्वानरः । तेजस्वी व अग्नि, सूर्यवत् नायक का स्थापन । उसके कर्त्तव्य । (पृ० १६०-१६३)

सू० [८]—वैश्वानरः । (१-२) आचार्य और व्रतपाल ब्रह्मचारी के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) आचार्य का स्त्री पुरुषों को दो चर्मखण्डों के तुल्य संयोजन । (४) जलों और मेघों से बिजुली के तुल्य प्रजाओं में से तेजस्वी राजा का उपसंग्रहण । (५) परशु से वृक्षवत् दुष्टों के नाश का उपदेश । (६) विजयी की प्रार्थना । (७) तीनों सभाओं के सभापति से रक्षा की प्रार्थना । (पृ० १६३-१६६)

सू० [९]—वैश्वानरः । कृष्ण-अर्जुन, रात्रि-दिनवत् राजा प्रजा वा वर वधू के कर्त्तव्य । (२-३) 'तन्तु' और 'ओत', ताना-बाना की उपमा से सृष्टि रचना और ब्रह्मवाद के पक्षों का स्पष्टीकरण । (४) जीव 'अमृत ज्योति' है । (५-६) देह में मन की स्थिति । इन्द्रिय मन अति वेगवान हैं और स्थिर नहीं रहते । (७) इन्द्रियों का आश्रय आत्मा । (पृ० १६६-१७०)

सू० [१०]—अग्निः । विद्वान् नायक का साक्षिवत् स्थापन । (२) तेजस्वी के मातृवत् कर्त्तव्य । (३) गोपालवत् प्रजापाल । (४-६)

तमोनिवारक सूर्यवत् राजा तथा गुरु का कार्य। (७) 'शत हिमाः' सौ बरस जीने की प्रार्थना। (पृ० १७०-१७३)

सू० [११]—अग्निः। प्रमुख नायक के कर्त्तव्य। (२) देह की गृहस्थ से तुलना। (३) स्वयंवरण का प्रचार। (४) अग्नि तुल्य वर का रूप। (५-६) गृहस्थ यज्ञ। (पृ० १७३-१७६)

सू० [१२]—अग्निः। राजा और विद्वान् गृहपति का वर्णन। (२) उसको यज्ञ का उपदेश। (३) घोड़ों पर चाबुक के समान राजा या नायक की स्थिति। (४) नायक के अग्नि, अश्व, पिता के समान कर्त्तव्य। उसे वनस्पति भोजी 'द्रवन्न' होने का उपदेश। (५) द्रवत् विद्युत् का वर्णन, उसके सदृश प्रजानुरंजक राजा के कर्त्तव्य। (६) 'शत हिमाः' सौ बरस जीने की प्रार्थना। (पृ० १७६-१७९)

सू० [१३]—अग्निः। (१२) वृक्ष से शाखावत् सूर्य से वृष्टियों के समान राजा से राज-सभाओं का विकास। (२) अग्नि से प्रकाश और जाठराग्नि से प्राणों के तुल्य राजा से न्याय की उत्पत्ति। (३-६) सूर्य से जल, मेघ, अन्नवत् राजा से राज्यों की वृद्धि। १७९-१८२)

सू० [१४]—अग्निः। (१-३) विद्वान् अग्नि का स्वरूप। वह यथार्थ ज्ञान प्रकाश करने से 'अग्नि' है। (४) क्षत्राग्नि तेजस्वी नायक का शत्रुभयकारी बल है। (५) ज्ञानबल से निन्दकों पर विजय लाभ। (६) प्रभु से पापों और शत्रुओं को पार करने की याचना। (पृ० १८३-१८५)

सू० [१५]—अग्निः। 'उषबुर्ध' प्रातः जागने का रहस्य। जीवन के प्रथम भाग में ब्रह्मचर्य पालन का उपदेश। (२) 'वनस्पति' रूप आचार्याग्नि के कर्त्तव्य। (३) 'वीतहव्य' का रहस्य। (४-७) अग्निपरिचार्यवत् प्रभु परिचर्या का वर्णन। (८) अमृत, विश्वपति विभु की उपासना। (९) तिमंजिले भवन के समान त्रिविध तापवारक प्रभु। (१०-१२) ज्ञानी प्रभु की गुरुवद् उपासना। (१३) 'जातवेदा' अग्नि

का लक्षण, उसके 'होता', 'गृहपति' आदि अन्वर्थ नाम। (१४) परमेश्वर, राजा का यज्ञकर्त्ता और अग्नि के तुल्य वर्णन। (१५-१६) विद्वान् और राजा के कर्त्तव्यों का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव। (१७-२०) मथ कर उत्पादित विद्युत् या अग्नि के तुल्य परस्पर विवादसंघर्ष द्वारा विद्वान् नायक की उत्पत्ति। (पृ० १८५-१९३)

सू० [१६]—अग्निः। (१-३) ज्ञानमय जगदीश्वर की स्तुति। विद्वान् की जनता में स्थिति। (४) उसको 'द्विता', सगुण निर्गुण, उपासना के प्रकार। (५) पात्रप्रद विवेकी प्रभु। (६) 'दूत' प्रभु। (७) 'स्वाध्य', स्तुत्य, अनुकरणीय प्रभु। (९) मनु, वह्नि, अग्नि, सर्वाश्रय, ज्ञानी प्रभु। (१०) ज्ञान की पुकार। (११) ज्ञानाग्नि का यज्ञाग्निवत् प्रज्वालन। (१२) प्रकाशवत् ज्ञानवितरण। (१३) 'पुष्कर' मेघस्थ अग्निवत् शिरोमणि विद्वान् की स्थिति। (१४) अथर्वा 'दध्यङ्' ऋषि के अग्नि मथन का रहस्योद्भेद। (१५) 'पाथ्य' 'वृषा', मेघवत्, प्राण का वर्णन। (१६) उपदेष्टा की चन्द्रवत् वृद्धि। (१७) उत्तम ब्रह्म प्राप्ति का उपदेश। (१८) समर्थ राजा का लक्षण। (१९) 'दिवोदास' का रहस्य। (२०) 'अवास' धनवृक्ष अग्नि राजा। (२१) राजा को राज्य विस्तार का उपदेश। (२२) अग्रणी के गुण स्तवन, उपदेश। (२३) विद्युत्वत् विद्वान् अध्यक्ष, उसकी दीर्घायु। (२४) राजा का कर्त्तव्य गृहस्थों का बसाना। (२५) राजा विद्वान् और प्रभु का सम्यग् दर्शन सर्वलोक-हितार्थ है। उसका कर्त्तव्य पापों से प्रजा की रक्षा। (२६) आत्मसमर्पक को ब्रह्म प्राप्ति। (२७) प्रभु, स्वामी के सच्चे सैनिक। (२८) प्रजाभक्षकों का नाश, राजा का कर्त्तव्य। (२९) 'रक्ष' दुष्टों का उत्पीडन। (३०) पापों और पापियों से प्रजा का पालन। (३१) दुष्टों का मूलोच्छेदन। (३२) हमारे विरोधी दुष्ट पुरुष को वधन द्वारा दण्डित करना या वा छेदन करने का दण्ड। (३३ ३४) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (३५) माता के गर्भ में बालकवत् राज्य

गर्भ में राजा की स्थिति। (३६) धन, ज्ञानप्रद जातवेदा का स्वरूप। (३७) सम्यग् दृष्टि वाले ज्ञानी के पास से ज्ञानोपार्जन। (३८) धूप में वृक्ष की छायावत् प्रभु शरण प्राप्ति। (३९) बलवान् राजा का शत्रु पुर भेदन। (४०) प्रजा का राजा के प्रति मातृतुल्य स्नेह। (४१-४६) योग्य की योग्य पद आदर प्राप्ति। (४७) राजा के अधीन जनों के गुण। (४८) अग्रासन योग्य जन के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति, दुष्ट नाश। (पृ० १९३-२०७) इति पञ्चमोऽध्यायः॥

अथ षष्ठोऽध्यायः (पृ० २०७—२६२)

सू० [१७]— इन्द्रः। 'वज्रहस्त'। राजा को शत्रु दमन के साथ राष्ट्र में कृषि की वृद्धि का उपदेश। (२-३) 'गोत्रभिद्'। राजा के सद्-गुण व उसके कर्त्तव्य। (४) उसका अभिषेक। (५) उषावत् सूर्य के तुल्य राजा प्रजा का अभ्युदय। (६-८) प्रजा की वृद्धि के नाना द्वार खोलने का उपदेश। (९) राजा के दो भय, उनसे विनीत प्रजा। (१०) राजा के बल के ५ गुण, भयकारी, सर्वनाश में समर्थ, तीक्ष्ण, सुखद, सर्वाश्रय योग्य। (११ १२) सूर्यवत् राजा के दो कार्य १. अग्नि-वत् शत्रुघातक, २. मेघवत् सरोवरपूरक। (१३) ऐसे राजा का वरण। ज्ञान। (१४-१५) ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना। (पृ० २०७-२१३)

सू० [१८]—इन्द्रः। (१-५) एक ईश्वर की स्तुति। उसका वेदोपदेश। (६) राजा के अनेक उत्तम कर्त्तव्य। (७) सर्वोपरि राजा के गुण। (८) प्रजा के सुखार्थ प्रजा के भक्षकों का दमन। (९) महा-रथी होने का उपदेश। उसको कर्त्तव्य का उपदेश। (१०) बिजली-वत् शत्रुओं का नाश। (११) दुष्टों को धनापहार का दण्ड। (१२) अद्वितीय बलशाली प्रभु और राजा का वर्णन। (१३-१५) राजा को उपदेश। शासन, दान, उद्यम, शक्तिवर्धन। (पृ० २१३-२१९)

सू० [१९]—इन्द्रः। (१-३) शरीर में प्राणवत् राजा की स्थिति। उसके कर्त्तव्य। (४) सदाचारी प्रजा होने के उद्देश्य से राजा की

सू० [२४]—इन्द्रः । राजा के कर्त्तव्य । (२) उसकी शक्तियों की शाखावत् वृद्धि । (३-४) गौओं और बछड़ों के तुल्य और प्रभु राजा की शक्तियों, सेनाओं और प्रजाओं की स्थिति । (५) राजा का सर्वप्रिय रूप । (६) नदीवत् प्रजाओं के स्वभाव । (७) उस प्रभु की महती शक्ति । (८) मेघवत् शस्त्रवर्षी बल । (९) पितावत् राजा के कर्त्तव्य । (पृ० २४३-२४७)

सू० [२५]—इन्द्रः । 'वृत्रहत्या'; रक्षक स्वामी के कर्त्तव्य । (२) प्रजा की संकटों में रक्षा । (३) पीड़ाकारियों का नाश । (४) उत्तम न्यायकारी का पद इन्द्र । (५) इन्द्र के समान कोई शूर या योद्धा नहीं । (६) न्यायानुसार विभाजक इन्द्र पद । (७) त्राता दुष्ट-संहारक । (पृ० २४७-२५१)

सू० [२६]—इन्द्रः । (१-८) प्रजा सेवकादिभक्त राजा । उसका दुष्टदमन का कर्त्तव्य । (पृ० २५१-२५४)

सू० [२७]—इन्द्रः । राज्यैश्वर्य की रक्षा और दुष्ट दमन के उपायों का उपदेश । (२) न्याय का उपदेश । (३) इन्द्र का अज्ञेय ऐश्वर्य । (४) उसका सर्वभयकारी बल । (५) राजा का भयानक शासन । 'हरियूपीया' का रहस्य । (६) राजा की ३००० सेना और सैन्यों के कर्त्तव्य । (७) राजा की शत्रु-उच्छेदक नीति । (८) 'दक्षिणा' नाम की राजसभा के २० सदस्यों का विधान । (पृ० २५४-२५८)

सू० [२८]—गावः । (१-८) 'गोसूक्त' । गौओं के दृष्टान्त से वेदवाणियों का वर्णन । (२) राजा का प्रजाजन को खजाने के समान रक्षा करने का कर्त्तव्य । (३) अचौर्य धन । (४) ज्ञानी इन्द्र की अहिंसक गौएं, वाणियें हैं । (५) इन्द्र, राजा, गृहपति, विद्वान् से भूमि, गौ, वाणी दान करने की याचना । (६-८) गौओं और वाणियों के उत्तम गुणों की तुलना । (पृ० २५८-२६१) इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः (पृ० २६२–३२९)

सू० [२९]—इन्द्रः । महत्वाकांक्षियों को इन्द्र, गुरु आदि की शरण । (२) प्रधान पुरुष की योग्यता । (३) उसकी सूर्यवत् स्थिति । (४) राजा के उत्तम गुण, 'सोम', 'ग्रावा', 'पक्ति', 'ब्रह्मकार' आदि का स्पष्टीकरण । (५) सर्वरक्षक महाप्रभु । (६) अनुपम बलशाली इन्द्र । (पृ० २६२-२६४)

सू० [३०]—इन्द्रः । सूर्य पृथिवीवत् राजा भूमि का प्रकाश्य-प्रकाशक भाव । (२-५) इन्द्र का महान्, अविनाशी, दर्शनीय सामर्थ्य । शत्रु विजय, सेना-उत्पादन का उपदेश । (पृ० २६४-२६७)

सू० [३१]—इन्द्रः । 'रयिपति' इन्द्र । उसका प्रस्ताव अनुमोदन, वादविवाद द्वारा निर्वाचन । (२) उसके सद्गुण । विद्युत्वद् भयकारी बल । (३) इन्द्र कृषक का वर्णन । (४) राजचक्र प्रवर्त्तन । दुष्टनाश 'शम्बर' का वध, 'दिवोदास', 'भरद्वाज' आदि का स्पष्टीकरण । (५) इन्द्र से रक्षा की प्रार्थना । (पृ० २६७-२६९)

सू० [३२]—इन्द्रः । महान् इन्द्र का उपस्तवन । (२) उसके सूर्यवत् कर्त्तव्य । (३) वीरों को सभ्यता, शिष्टाचार का उपदेश । उनको एक साथ काम करने की शिक्षा । (४) पंक्तिबद्ध युद्धवीर सेनाओं का उपदेश । (५) सेनापति और अध्यक्ष के सेनाओं को नदी-सागर दृष्टान्त से प्राप्त होने का उपदेश । (पृ० २६९-२७१)

सू० [३३]—इन्द्रः । (१-३) उत्तम, उदार, बलवान् राजा का कर्त्तव्य । (४-५) उसको प्रजा का रक्षार्थ आह्वान । उसका प्रजा के अति उचित भाव । (पृ० २७१-२७३)

सू० [३४]—इन्द्रः । समस्त वाणियों, स्तुतियों, प्रवचनों का एक मात्र प्रभु 'इन्द्र' । (२) वह रथवत् सर्वाश्रय, उपास्य है । (३) सर्वस्तुत्य शान्तिदायक प्रभु । (४) अमावस्या में सूर्य चन्द्रवत्

२

सू० [४४]—इन्द्रः। अभिषेक योग्य सोम स्वधापति। उसके कर्त्तव्य। (४-९) इन्द्र पद के योग्य पुरुष के लक्षण और आवश्यक गुण। उसके कर्त्तव्य। (१०-१३) सर्वोपरि बन्धु प्रभु। (१४-१६) सूर्य मेघवत् राजा का शत्रु नाश और प्रजापालन का कार्य। (१७-२०) शत्रु दमन का उपदेश। (२१) संगठनकारी राजा। (२२) शस्त्रबल का स्तम्भन धारण। (२३) उत्तम सेनाओं का बनाना। (२४) सूर्यवत् उभय लोक का शासन। (पृ० २९३-३०३)

सू० [४५]—इन्द्रः। (१-९) सखा ईश्वर स्वामी। उत्तम राजा की स्तुति, उसके कर्त्तव्य। (१०-१६) 'वाजपति' गुरु का राजावत् वर्णन। उसके कर्त्तव्य। प्रजा के वचन श्रवण, शत्रु के बल का विजय, राष्ट्र की उन्नति करे। (१७) शिवः सखा। (२०) एक, अद्वितीय। (२१-२४) तीनों वर्णों के राजा के प्रति कर्त्तव्य। (२५-२८) प्रजाओं को वत्सों के प्रति गोवत्, राजा के प्रति वात्सल्य भाव। (२९-३०) संशयच्छेता विद्वान् का आदर। (३१-३३) बृबुः तक्षा। उच्च तटवत् ज्ञानी व शिल्पी की स्थिति। (पृ० ३०३-३१२)

सू० [४६]—इन्द्रः। (१-१२) प्रभु 'सत्पति' का आह्वान। उसके कर्त्तव्य, प्रजा रक्षण। (१३) श्येनों के समान वीरों का पलायन। (पृ० ३१२-३१७)

सू० [४७]—सोमः। (१-५) स्वादु, मधुमान्, रसवान् 'सोम'। उसका अप्रतिम बल। (२) शत्रु के ९९ प्रकार के बलों के नाशक। (३) सोम से उत्तम वाणी तथा मति की प्राप्ति। (४-५) अद्भुत सोम-तत्व। (६-३१) इन्द्र। इन्द्र का सोमपान। (७-१०) दीर्घ जीवन, बुद्धि, वाणी की प्रार्थना। (११) 'त्रातारमिन्द्रम्०', इन्द्र के लक्षण। (१२-१४) सर्वस्तुत्य प्रभु। (१५-१६) राजा का उन्नति पद की ओर बढ़ने का प्रकार। (१८) 'रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव' राजा और जीवात्मा का वर्णन। (१९) इन्द्र का उद्वासन। (२०) मार्ग रहित क्षेत्र में मार्ग

के ज्ञान की प्रार्थना। (२१) राजा का सूर्यवत् शासन। (२२-२५) राजा का विभूतिदान। (२६-२७) रथ। राजा का 'वनस्पति' रूप। (२८) इन्द्र का वज्र। उसका उपभोग। (२९-३१) इन्द्र की दुन्दुभि। राजा का दुन्दुभि रूप, उसका उपयोग। (पृ० ३१७-३२९)

अथ अष्टमोऽध्यायः (पृ० ३३०–३८९)

सू० [४८]—अग्निः। (१-४) 'जातवेदाः' प्रभु की स्तुति। राजा के कर्त्तव्य। (५) मथित अग्नि के समान राजा का प्रकट होना। (६-७) सधूम अग्निवत् राजा का स्वरूप। (८) अग्निवद् 'गृहपति'। (९) 'वसु', आचार्य, गृहपति अग्नि। (१३) विश्वदोहस्, विश्व ओजस्, वेदवाणी का गोवत् दोहन। (१४-१५) इन्द्र का वरुण, अर्यमा, विष्णु, मारुत तथा पूषन् रूप। (१७) उसकी 'वनस्पति' वत् स्थिति। (१८) राजा का अच्छिद्र पात्रवत् सख्य। उससे प्रार्थनाएं। मरुतः। (२०-२१) तेजस्वी का लक्षण। (२२) पृश्निः। सूर्य भूमिवत् राजा प्रजा। (पृ० ३३०-३३८)

सू० [४९]—विश्वेदेवाः। (१-२) ब्रह्म, क्षत्र के कर्त्तव्य। (३) रात्रि दिनवत् शिष्य शिष्याओं के कर्त्तव्य। (४-५) विदुषी स्त्री और विद्वान् को उपदेश। (६-७) मेघ वायुवत् स्त्री पुरुषों को उपदेश। (८-१३) व्यापक प्रभु की स्तुति प्रार्थना। (पृ० ३३९-३४४)

सू० [५०]—विश्वेदेवाः। देवी अदिति। (२) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् राजा के कर्त्तव्य। (३-१०) विद्वानों के कर्त्तव्य। (११) दानशील पुरुषों के कर्त्तव्य। (१२-१५) रुद्र, सरस्वती, विष्णु रूप से प्रभु की स्तुति। (पृ० ३४५-३५१)

सू० [५१]—विश्वेदेवाः। (१-३) मित्र रूप आंख का सूर्यवत् वर्णन। (४-७) उत्तम नायकों का वर्णन। (८) पूज्यों का आदर। वीर बलवानों के कर्त्तव्य। (११) उत्तम रक्षक। (१२) ज्ञानी, गुरु

और रश्मियों के गुण। (१३) 'सत्पति', उसके कर्त्तव्य। (१४-१५) राजाधीन वीरों के कर्त्तव्य। (१६) परम पन्था प्रभु। (पृ० ३५१-३५७)

सू० [५२]—विश्वेदेवाः। उत्तम यज्ञशील का अभ्युदय। (२-६) दुष्ट पुरुषों के प्रति राजा का कर्त्तव्य। (७-१७) विद्वानों की अर्चना। उनसे निवेदन। (पृ० ३५७-३६३)

सू० [५३]—पथस्पति पूषा। (१-६) विद्वान् राजा। उसके कर्त्तव्य। दुष्टों का दमन। (७-८) व्यवहार पत्र लेखनादि का उपदेश। (९-१०) चाबुकवत् वाणी का प्रयोग। (पृ० ३६३-३६६)

सू० [५४]—पूषा। (१-७) विद्वान् आचार्य। पूषा राजा के कर्त्तव्य। (८-९) उससे न्याय की याचना। (१०) खोया धन भी प्राप्त हो। (पृ० ३६६-३६८)

सू० [५५]—पूषा। (१-३) ऐश्वर्यवान्, मित्र आदेष्टा। (४-५) सूर्यवत् प्रकाशक। 'स्वसुर्जार', 'मातुर्दिधिषु' का रहस्य। (६) रथ के अश्वों के समान अमात्यों के कर्त्तव्य। (पृ० ३६९-३७०)

सू० [५६]—पूषा। अयाचित दाता प्रभु। (२) सत्पति इन्द्र। आत्मा। (३) रथीतम। उसके नाना कर्त्तव्य। (४-६) प्रजा के निवेदन। (पृ० ३७०-३७२)

सू० [५७]—इन्द्र पूषा। (१-२) इन्द्र कृषक जन, पृथिवीपति पूषा। व्यापारी वर्ग इन्द्र और कृषक वर्ग पूषा। (३-४) इन्द्र राजवर्ग, प्रजा पूषा। (६) दोनों की भिन्न व्यवस्था। (पृ० ३७२-३७४)

सू० [५८]—पूषा। रात्रि-दिनवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२-३) गृहपति पूषा। (४) 'कुलस्पति' पूषा। (पृ० ३७४-३७६)

सू० [५९]—इन्द्र अग्नि। (१-४) सूर्य अग्निवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) उसका विद्युत् अग्निवत् वर्णन। (६) उत्तम स्त्री।

पक्षान्तर में विद्युत् का वर्णन। (७-१०) तेजस्वी स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ३७६-३७९)

सू० [६०]—इन्द्र अग्नि। (१-१५) उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में अग्नि-विद्युत्-विज्ञान। (पृ० ३८०-३८४)

सू० [६१]—सरस्वती। नदी से यन्त्र संचालक वेग और बल प्राप्ति के समान प्रभु और वेदवाणी से ऐश्वर्य, ज्ञान और शक्ति का लाभ। (२) नदीवत् वाणी का वर्णन। (३-११) सरस्वती विदुषी का वर्णन। उत्तम विद्या का वर्णन। (१२) 'त्रिषधस्था', 'सप्तधातुः', 'पञ्चजाता' का स्पष्टीकरण। (१३-१४) पूज्य वेदवाणी। (पृ० ३८५-३८९) इत्यष्टमोध्यायः॥

इति चतुर्थोऽष्टकः

पञ्चमोऽष्टकः

सू० [६२]—अश्विनौ। (१-३) सूर्य उषावत् विवेचक स्त्री पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (४-५). वायु-विद्युत्, उनके कर्त्तव्य। (६-७) विद्युत्-पवन विज्ञान। वायुयान-निर्माण। (८-११) तेजस्वी प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (पृ० ३९०-३९४)

सू० [६३]—अश्विनौ। (१-४) स्त्री पुरुषों के सत् कर्त्तव्य। (५) उषावत् कन्या का वर्णन। (६-११) बुद्धि तथा उत्तम वाणी के लिये प्रार्थना। (पृ० ३९४-३९९)

सू० [६४]—उषा। (१-६) उषा के दृष्टान्त से वरवर्णिनी वधू और विदुषी स्त्री के कर्त्तव्य। (पृ० ३९९-४०२)

सू० [६५]—उषा। (१-४) दृष्टान्त से स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (५-६) कन्या के प्रति विद्वानों के उपदेश और वर प्राप्ति। (पृ० ४०२-४०५)

सू० [६६]—मरुतः। (१-२) विद्वानों मरुतों के कर्त्तव्य। (३) उत्तम सन्तानोत्पादक का उपदेश। (५-६) बलवान् पुरुषों के कर्त्तव्य रक्षा आदि। (७) वायुओं द्वारा बिना अश्वादि के रथ के समान जीवन का निष्पाप मार्ग। (८) वीरों से रक्षित नायक का अनुपम बल। (९-११) वीरों विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ० ४०५-४१०)

सू० [६७]—मित्र वरुण। स्नेही दुःखवारक प्रधान पुरुषों के कर्त्तव्य। (२-११) मित्र-वरुण वरवधू के कर्त्तव्य। उनको गृहस्थ जीवन सम्बन्धी अनेक उपदेश। (पृ० ४१०-४१४)

सू० [६८]—इन्द्र वरुण। (१-४) युगल प्रमुख पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) इन्द्र वरुण की व्याख्या। (६-११) इन्द्र वरुण, स्त्री पुरुषों का वर्णन। (पृ० ४१४-४१९)

सू० [६९]—इन्द्र विष्णु। (१-६) सूर्य विद्युत्वत् राजा प्रजा वर्गों के परस्पर कर्त्तव्य। (७) ऐश्वर्य की वृद्धि और उत्पत्ति का उपदेश। उक्त सबको अन्न ऐश्वर्य से पेट भरने का उपदेश। (८) अपरिमित ज्ञान, बल ऐश्वर्य प्रकट करने की प्रेरणा। (पृ० ४१९-४२२)

सू० [७०]—द्यावा पृथिवी। भूमि सूर्य के दृष्टान्त से राजा प्रजा, माता पिता, वर वधू या स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वे सूर्य भूमि वा जल-अन्न सम्पन्न, शुद्धाचार, दानी, उत्तम सन्तति के माता पिता हों। (३) दोनों में आदर्श पुरुष का वर्णन। (४-६) दोनों का आदर्श पारस्परिक कर्त्तव्य। (पृ० ४२२-४२५)

सू० [७१]—सविता। 'हिरण्यबाहू', उत्तम निपुण राजा के कर्त्तव्य। (२) वह प्रजा के प्राणों की रक्षा करे। (३) 'हिरण्यजिह्वः', मधुरभाषी तथा (४) 'हिरण्यपाणिः', धन को वश में रखने वाला। (५) सुप्रसन्न रहे। (६) प्रजा को ऐश्वर्य प्रदान करे। (पृ० ४२५-४२७)

सू० [७२]—इन्द्र सोम। सूर्य चन्द्रवत् स्त्री पुरुषों, गुरु शिष्यों के कर्त्तव्य। (२) युवा-युवति को बसावें। माता भूमि का आदर करें। (३) आचार्य-शिष्य और विद्युत्-पवनवत् परस्पर सहायक। (४) परिपक्व वीर्य से सन्तान उत्पन्न करें। (५) धनादि उपार्जन करें। (पृ० ४२८-४३०)

सू० [७३]—बृहस्पति। परमेश्वर पिता और राष्ट्रपालक राजा। (२) वीर राजा। (३) बड़े राष्ट्र का स्वामी। (पृ०४३०-४३१)

सू० [७४]—सोम रुद्र। (१-२) चन्द्र और वैद्य वा औषधि और वैद्यवत् शत्रु-रोगनाशक राजा सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) जल और अग्नि के तुल्य वैद्यों को आरोग्यरक्षार्थ औषध संग्रह का उपदेश। (४) वरुण के 'पाश' अर्थात् प्रबल रोग से हमें छुड़ावे। (पृ० ४३१-४३२)

सू० [७५]–'संग्राम सूक्त'। युद्धोपकरण, कवच, धनुष, धनुष की डोरी, धनुष कोटि, तरकस, सारथी, रासें, अश्व, रथ, रक्षक, बाण, कशा, हाथ का रक्षक चर्म आदि २ पदार्थों के वर्णन तथा उनके महत्त्व। (१) 'वर्म', कवच की महिमा—शरीर पर घाव न लगे। (२) 'धनुष' के बल से समस्त दिशाओं को विजय करें। (३) प्रिय स्त्रीवत् 'ज्या' धनुष डोरी का वर्णन। संग्राम पार करने की सहायक डोरी। (४) माता पिता के समान 'आर्त्नी', धनुष कोटियों और पार्श्ववर्ती सेनाओं का वर्णन। (५) बहुपुत्र पितावत् 'इषुधिः' तरकस का वर्णन। संग्राम विजय में उसके साथ पीठ पीछे लगे वीर की तुलना। (६) 'रश्मयः' रासों का महत्त्व, अध्यात्म में आत्मा रथी का वर्णन। (७) 'अश्व' घोड़े और घुड़सवार वीरों का वर्णन। (८) युद्ध 'रथ'। (९) सेनाध्यक्ष 'पितरों' या रक्षकों का वर्णन। (१०) विद्वान् ब्राह्मण पितरों का वर्णन। बाणों का वर्णन। पक्षान्तर में भूमि और भूमिपालों का महत्त्वपूर्ण वर्णन। (११-१२) बाणवत् सरल पुरुष का वर्णन।

(१३) अश्व चालक 'कशा' का वर्णन। (१४) 'हस्तघ्न' हस्तत्राण और वीर पुरुष का वर्णन। (१५) विष से बुझे बाण तथा सुन्दर स्त्री का वर्णन। (१६) छोड़े हुए बाणवत् सेना का वर्णन। (१७-१९) युद्ध में आशीर्वाद। (पृ० ४३३-४४०)

इति षष्ठं मण्डलम्

अथ सप्तमं मण्डलम्

सू० [१]—अग्निः। अरणी मथन द्वारा प्रकट होने वाले अग्निवत् परस्पर विचार विवाद द्वारा प्रधान नायक का निर्णय। (२) ऐसे दूरदर्शी पुरुष को चुनने के प्रयोजनों का कर्त्तव्य। (३-१४) नायक के गुण। उसके कर्त्तव्य, वह परपक्षपाती को दण्ड दे। सेना, दण्ड को तीक्ष्ण करे। (१५) उत्तम रक्षक अग्नि, नायक। (१६) उसकी यज्ञाग्नि से तुलना। (१७-१८) उससे अग्निहोत्रवत् व्यवहार। (१९-२७) नायक से प्रार्थना व प्रजा के आवश्यक निवेदन। (पृ० ४४१-४५०)

अथ द्वितीयोऽध्यायः (पृ० ४५०—५१०)

सू० [२]—आप्रम्। (१-३) यज्ञाग्निवत् शासक नायक का वर्णन। (४) अग्निहोत्र का वर्णन। (५-७) विद्वानों के वीरों के तुल्य कर्त्तव्य। (८) तीन देवी—भारती, इडा, सरस्वती। (९) 'देवकामः' प्रजा काम गृहस्थी को उपदेश। (१०-११) सूर्य वनस्पतिवत् राजा के कर्त्तव्य। पाचकवत् नायक के कर्त्तव्य। शमिता अग्नि का स्वरूप। (पृ० ४५०-४५५)

सू० [३]—अग्निः। 'घृतान्न पावक' अग्निवत् प्रमुख पुरुष के कर्त्तव्य। (२) प्रयाणशील राजा की 'अश्व' या अग्नि और सैन्य की प्रबल वात से तुलना। (३) अग्नि की लपटों के तुल्य राजा के अन्य वीरों का वर्णन। (४) जठराग्निवद् राजा का राष्ट्र शासन का कर्त्तव्य।

(५-९) अग्निवत् अश्ववत् सेनानायक का वर्णन। (१०) 'स्वस्ति' कल्याण के लिये प्रजा से विनय। (पृ० ४५५-४५९)

सू० [४]—अग्निवत् राजा शासक की परिचर्या और उसके कर्त्तव्य। (२-४) 'तरुण अग्नि' माता से उत्पन्न बालकवत् उसका स्वरूप। (५) 'देवकृत योनि' का रहस्य। (६) ज्ञानी को मोक्ष प्राप्ति। (७-८) पराये धन और पुत्र का निषेध। (९-१०) राजा से उत्तम आशंसा। (पृ० ४५९-४६३)

सू० [५]—वैश्वानरः। (१-९) यज्ञाग्निवत् शासक की परिचर्या। वैश्वानर प्रभु का वर्णन। उससे प्रार्थनाएं। (पृ० ४६३-४६७)

सू० [६]—वैश्वानरः। (१-२) बलवान् पुरुष की सूर्य-विद्युत्वत् प्रशंसा। (३) अयज्ञशीलों को तिरस्कार करने का उपदेश। (४-७) नायक के अन्य कर्त्तव्य। (पृ० ४६७-४६९)

सू० [७]—अग्निः। (१-३) विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य। (४) गार्हपत्य अग्निवत् उसकी स्थापना। (५) वृतवर अग्नि। (६) ज्ञानी के सत्य ज्ञान का सद् उपयोग। (७) उत्तम वसु वसिष्ठ जन। (पृ० ४७०-४७३)

सू० [८]—अग्निः। (१-७) उदयशील सूर्यवत् आहवनीय अग्नि। अग्निवत् राजा का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ४७३-४७५)

सू० [९]—अग्निः। उदयशील सूर्यवत् नानाप्रद गुरु अग्नि। 'जारः' का स्पष्टीकरण। (२) उसका 'पणीनां' व्यापारियों को पवित्र करने का कर्त्तव्य। (३) 'विवस्वान्' सूर्यवत् सभापति का कर्त्तव्य। (४) किरणों से सूर्यवत् वेदवाणियों से पावन प्रभु का ज्ञान। (५) विद्वान् का दूतप्रद। (६) विद्वान् का विद्योपदेश कर्त्तव्य। (पृ० ४७५-४७८)

सू० [१०]—अग्निः। (१-४) सूर्यवत् विद्वान् के कर्त्तव्य। ईश्वर का ज्ञान प्रसार। (५) 'क्षपावान्' चन्द्रवत् राजा का सर्व प्रिय होना। (पृ० ४७८-४८०)

सू० [११]—अग्निः । जीवों का सुखप्रद स्वामी राजा । (२-३) शत्रुनाशक दूतवत् शासक । (३) 'हव्यवाड्' अग्नि । (पृ० ४८०-४८२)

सू० [१२]—अग्निः । विद्युत् अग्नि का वर्णन । (२) उसके तुल्य प्रभु स्वामी के कर्त्तव्य । (३) वही वरुण, मित्र है । (पृ० ४८२-४८३)

सू० [१३]—वैश्वानरः । सर्वहितैषी वैश्वानर प्रभु की स्तुति । (२) उससे मुक्ति की याचना । (३) ज्ञान की याचना । (पृ० ४८३-४८५)

सू० [१४]—अग्निः । ज्ञानी की अर्चना । (पृ० ४८५-४८६)

सू० [१५]—अग्निः । (१-५) यज्ञवत् विद्वान् की परिचर्या । उससे उत्तम २ प्रार्थनाएं । (पृ० ४८६-४९०)

सू० [१६]—अग्निः । तेजस्वी बलवान् का आदर सत्कार का उपदेश । (२) सुब्रह्मा, वेदज्ञ का आदर । (३-४) उसका तेजस्वी सूर्य और अग्निवत् स्वरूप । (५) 'गृहपति' 'होता' 'पोता' अग्नि । (६-१०) उससे नाना प्रार्थनाएं । (११) 'द्रविणोदा' ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (१२) दानशील को बल वीर्य देता है । (पृ० ४९०-४९४)

सू० [१७]—अग्निः । विद्वान् शासक के कर्त्तव्य । (पृ० ४९४-४९६)

सू० [१८]—इन्द्रः । (१-३) राजा और विद्वान् का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (४) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । राजा 'गोपति' (५) निन्दित लोगों को दण्ड दे । (६) श्रमिक द्रव्य की व्यवस्था का उत्तम फल । श्रमिकों की मत्स्यों से उपमा । (७) 'आर्य' उत्तम राजपुरुषों का आकार प्रकार । (८) दुर्बुद्धि और कुकर्मी के लक्षण । (९) वशी राजा के सरक्षक । (१०) गोपाल और गौओं के तुल्य प्रभु और जीव-गण । (११) राज समिति के २१ सदस्य । (१२-१३) शत्रु साधन । (१४) ६०६६ की सेना । (१५-१९) इन्द्र पदस्थ राजा के कर्त्तव्य । (२०) शम्बर का वध । (२१) पराशर 'वसिष्ठ' राजा ।

दान स्तुति। (२२-२५) सुदास पंजवन की दान स्तुति। 'सुदास', 'दिवोदास' आदि का रहस्य। (पृ० ४९६-५०६)

सू० [१९]—इन्द्रः। 'तिग्मशृंग' तीक्ष्णशृंग वृषभ के समान इन्द्रपदस्थ उत्तम शासक का वर्णन। (२-४) राजा के अन्यान्य कर्त्तव्य। कुत्स, शुष्ण, कुयव, वीतहव्य, सुदास, पौरुकुत्सि, वृत्र, चुमुरि, धुनि आदि का स्पष्टीकरण। (५) इन्द्र का ९९ पुरी भेदन और नमुचिवध का रहस्य। (६-११) इन्द्र से प्रार्थना। (पृ० ५०६-५१०)

इति द्वितीयोऽध्यायः॥

अथ तृतीयोऽध्यायः (पृ० ५११-५६८)

सू० [२०]—इन्द्रः। (१-४) उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य। (५) 'सेनानी' इन्द्र। (६) इन्द्र से प्रार्थना का फल। (७) बड़ों का छोटों को शिक्षा देने का उपदेश। (८-१०) करप्रद प्रजा की रक्षा का कर्त्तव्य। (पृ० ५११-५१४)

सू० [२१]—इन्द्रः। भूमि से अन्न उत्पन्न करने का उपदेश करने का राजा का कर्त्तव्य। (२-८) वह शत्रु और दुष्टों के कार्यों को गुप्त रूप से पता लगाकर दण्डित करे। दुष्ट जन यज्ञादि में विघ्न न करें। (९) रक्षक उत्तम सखा। (१०) प्रजा को अभय प्राप्त हो। (पृ० ५१५-५१८)

सू० [२२]—इन्द्रः। इन्द्र का सोमपान, राष्ट्रपालन। (२) वृत्र-हनन, शत्रुनाश। (३) अन्नोत्पत्ति, ब्रह्मज्ञान, धन प्राप्ति। (४) मेघ के जलपानवत् ज्ञानार्जन। (५) राजा की वाणियों की अवहेलना न कर उसकी कीर्ति कहना। (६-८) स्तुत्य राजा। (९) पूर्व और नूतन 'ऋषि', विद्वान् जन, वेदार्थ का प्रकाश करें। (पृ० ५१८-५२१)

सू० [२३]—इन्द्रः। (१-६) 'वसिष्ठ', विद्वान् और राजा का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (पृ० ५२१-५२३)

सू० [२४]—इन्द्रः । (१-४) उत्तम गृहपतिवद् राष्ट्रपति का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । (५) अभिषेक का प्रयोजन । सूर्यवत् शासक पद । (६) उसका कर्त्तव्य प्रजा को समृद्ध करना । (पृ० ५२४-५२६)

सू० [२५]—इन्द्रः । दशरक्षार्थं सेनाओं का युद्ध, शस्त्रसञ्चालन और शस्त्र का उद्यम । (२) दुर्ग में बैठकर शत्रुओं का नाश करने का उपदेश । (३) हिंसक दुष्ट का नाश और विजेता को प्रशंसा प्राप्त हो । (४) राजा का प्रजा को आश्रय । (५) राजा का समवाय बनाना । (६) सब शस्त्रादि बल शासन की वृद्धि के लिये हों । (५२६-५२८)

सू० [२६]—इन्द्रः । (१-२) 'असुत सोम इन्द्र को हर्ष नहीं देता', उसकी व्याख्या । सोम प्रजाजन, ऐश्वर्य, ओषधि रस आदि; इन्द्र राजा, आत्मा, गुरु आदि । (३) अभिषिक्त शास्ता के कर्त्तव्य । (४) इन्द्र का सर्वोपरि पद । उसके न्यायशासन कर्त्तव्य । (५) कृषि-वृद्ध्यर्थं मेघवत् प्रजावृद्ध्यर्थं राजा की स्तुति । (पृ० ५२८-५३०)

सू० [२७]—इन्द्रः । राजा की आवश्यकता । प्रभु का स्मरण और प्रार्थना । (२) वह हमारे लिये धन और ज्ञान के द्वार खोले । (३) राजा के अधिकार । (४) राजा का धन, बल दोनों पर नियन्त्रण ही प्रजा को सुख दे सकता है । (५) प्रजा का सेवक राजा । (पृ० ५३०-५३२)

सू० [२८]—इन्द्रः । उत्तम विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य । वे प्रजा की बात सुनें । (२) राजा का घोर वज्र और वह स्वयं अखण्ड हो । (३) शासकों का शासन करे, कर न देने वालों को दण्ड दे । (४) न्याय का उत्तम दाता हो । (५) वही उत्तम रक्षक 'इन्द्र' पद योग्य है । (पृ० ५३२-५३४)

सू० [२९]—इन्द्रः । उत्तम ऐश्वर्य का दाता राजा । (२) चतुर्वेदज्ञ शासक पद के योग्य है । (३) विद्या का अलंकार, विद्वान्

से विनय । (४) गुरुस्वीकरण । (५) वही गुरु 'इन्द्र' पद योग्य है । (पृ० ५३४-५३६)

सू० [३०]—'इन्द्रः' । ऐश्वर्य का स्वामी और बलशाली । (२) सेनापति होने योग्य पुरुष । (१-५) ज्ञान, बल आदि के लिये प्रार्थना । (पृ० ५३६-५३८)

सू० [३१]—इन्द्रः । (१-३) ब्रह्मचारी, मुमुक्षु, ऐश्वर्यपालक राजा सब 'सोमपालन' हैं उनका गुण वर्णन करो । (४) 'वसु', इन्द्र से विनय । (५) वह दुष्ट के निमित्त प्रजा को पीड़ित न करे । (६) प्रजा के कवचवत् राजा । (७) सूर्याधीन आकाश पृथिवीवत् स्त्री पुरुषों को सम्बद्ध रखने वाला राजा । 'स्वधावरी रोदसी' की व्याख्या । (८-११) राजा सदा सबका आदरणीय हो । (१२) सेनाओं और वाणियों के कर्त्तव्य । (पृ० ५३८-५४१)

सू० [३२]—इन्द्रः । राजा विषयविलास में रत न होकर प्रजा के सुखों में सुखी रहे । (२) विद्वानों का मधुमक्खी के समान मधुव्रत । (३) पुत्रवत् पिता तुल्य प्रभु का स्मरण । (४) राष्ट्र धारणार्थ शासक को राजा नियुक्त करे । (५) वह राजा की प्रजा के कष्टों को सुने । (६) राजा के गम्भीर शासनों के पालक की वृद्धि । (७) राजा के विविध धन का भोग प्रजा को प्राप्त हो । (८) इन्द्रार्थ सोमसवन अर्थात् राष्ट्रपति पद पर वीर्यवान् पुरुष का अभिषेक । उसका समारम्भ । (९-१२) वीर्यवान् पुरुषों को उपदेश । (१३-१६) उत्तम मन्त्र, रक्षा का उपदेश । प्रभुभक्त को ही धर्मबन्धन तराते हैं । (१७-२१) धन का स्वामी विद्वानों का पालन करे । (२२-२४) ईश्वर के प्रति वात्सल्य प्रेम । (२५) शत्रुओं को दूर करने की प्रार्थना । (२६) पालक गुरु से ज्ञानप्रकाश की याचना । (२७) कर्म बन्धनों को नदियों के समान पार करे । (पृ० ५४१-५५०)

सू० [३३]—वसिष्ठ व वसिष्ठ पुत्रों का संवाद । (१-९) मार्गदर्शी विद्वानों से उत्तम २ प्रार्थनाएं । उनका संप्रेरक दण्डवत् कर्त्तव्य ।

(१०) जीवों के पुनर्जन्म का रहस्य। विद्युत् की ज्योति के समान जीव का प्रकाशमय रूप। (११) 'मैत्रावरुण', 'वसिष्ठ' और 'उर्वशी' का रहस्य। उर्वशी प्रकृति, वसिष्ठ जीव, मित्र-वरुण प्राण-अपान। (१२) माता आचार्य से उत्पन्न बालक और शिष्य की तुलना। (१३) लड़का लड़की दोनों का गुरुगृहवास और व्रत-स्नान। (१४) उत्तम आचार्य वसिष्ठ। उसका शिक्षण। (पृ० ५५०-५५६)

सू० [३४]—विश्वेदेवाः। (१) विदुषी स्त्री। (२) आप्त स्त्रियों के कर्त्तव्य। (३) आप्त प्रजाजनों का कृषि आदि कार्य। (४) नायक का कर्त्तव्य। (५) सन्मार्ग पर बढ़ने का उपदेश। (६) ध्वजावत् वीर का स्थापन। (७) पृथिवीवत् स्त्री के कर्त्तव्य। (८-९) विद्वानों से प्रार्थना। (१०-१५) सूर्यवत् शासक का कर्म। (१६) अहिः। सूर्य। उनकी स्तुति। (१७) अहिर्बुध्न्यः, मेघवत् सर्वाधार पुरुष। (१८-२१) शत्रुतापन। (२२-२५) सूर्य भूमिवत् सैन्य और सेनापति आदि के कर्त्तव्य। (पृ० ५५६-५६२)

सू० [३५]—विश्वेदेवाः। 'शान्तिसूक्त'। (१-१५) समस्त भौतिक तत्वों से शान्ति प्राप्त करने की प्रार्थना। (पृ० ५६२-५६८)

अथ चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ५६८-६२८)

सू० [३६]—विश्वेदेवाः। गुरुगृह में ज्ञानोपार्जन। (२-५) मित्र वरुण, प्राण उदान, माता पितावत् सभा-सेनाध्यक्ष और प्रभु और जीव। (६) 'सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता' वाणी का वर्णन। (७-९) विद्वानों की प्रतिष्ठा। प्रभु से प्रार्थना। (पृ० ५६८-५७२)

सू० [३७]—विश्वेदेवाः। (१-४) तेजस्वी पुरुष अन्न ज्ञान से सबको पूर्ण करें। (५) इन्द्र से नाना प्रश्न। हमें धन कब प्रदान करेगा? (६) हमारे वचनों को कब सुनेगा? (७) चतुराश्रमी का दीर्घजीवन। 'अश्व-वेद' राजा और परिव्राजक। (८) ऐश्वर्यादि की याचना। (पृ० ५७२-५७५)

सू० [३८]—सविता। (१-६) उत्तम वसु, सेव्य और स्तुत्य प्रभु। परमेश्वर से नाना रक्षा की प्रार्थना। वाजिनः। (७-८) विद्वानों, रक्षकों से प्रार्थनाएं। (पृ० ५७५-५७८)

सू० [३९-४०]—विश्वेदेवाः। (१-७) उत्तम मार्गगामी तेजस्वी की अग्नि से तुलना। उसके कर्त्तव्य। (पृ० ५७८-५८३)

सू० [४१]—विश्वेदेवाः। 'प्रातः सूक्त'। (१-७) प्रातः प्रभु की प्रार्थना, स्तुति। (६) 'दधिक्रावा' की व्याख्या। (पृ० ५८३-५८६)

सू० [४२]—विश्वेदेवाः। (१-३) उत्तम विद्वानों के कर्त्तव्य। (४) अतिथि यज्ञ। (५) कल्याण की प्रार्थना। (पृ० ५८६-५८८)

सू० [४३]—विश्वेदेवाः। वृक्ष की शाखावत् वेदज्ञ विद्वानों के ज्ञान प्रसार के कार्य। (२) अग्निहोत्र की ज्वालाओं के समान सहयोग का उपदेश। (३) माता को प्राप्त पुत्रोंवत् शासकों की उन्नत पद प्राप्ति। (४) उनकी सत्य वाक् प्रतिज्ञाएं। (५) उनका वेतनबद्ध धनकोश सा होना। (पृ० ५८९-५९०)

सू० [४४]—विश्वेदेवाः। (१-३) विद्वानों के कर्त्तव्य। उनके गुण वर्णन। (४) दधिक्रावा का स्वरूप। रथी सारथी। (५) सन्मार्ग नेता उसका अश्ववत् वर्णन। (पृ० ५९०-५९३)

सू० [४५]—सविता। (१-४) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष। उससे भोग्य और रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ५९३-५९४)

सू० [४६]—रुद्रः। (१-४) सेनापति का वर्णन। उसके 'इषुः' और 'धनुः'। उसका बलवत् पराक्रम और प्रजा के प्रति दयाभाव। (पृ० ५९४-५९६)

सू० [४७]—आपः। (१-२) आप्त विद्वान् जनों के कर्त्तव्य। (३-४) 'देव पाथ' की व्याख्या। (पृ० ५९६-५९८)

सू० [४८]—ऋभवः। (१-४) ऋभु, विभु और वाजस्। यान, रथ, युद्धशस्त्र यन्त्र आदि निर्माण। (पृ० ५९८-५९९)

सू० [४९]—आपः । दिव्य, खनित्रिम, स्वयञ्ज तथा समुद्रार्थं । (१-२) आपः द्वारा सैनापत्य अभिषेक । (३) सत्यानृत विवेकी वरुण का आश्रय । (४) वरुण, सोम, वैश्वानर अग्नि को धारण करने वाले जल मेरी रक्षा करें । (पृ० ५९९-६०१)

सू० [५०]—मित्र वरुण । (१-३) विष चिकित्सा । नाना विषों की गुप्त प्रकृति और उनका प्रतिकार । नद्यः । (४) प्रवत, निवत, उद्वत, उदन्वती, अनुदक नदियें । (पृ० ६०१-६०३)

सू० [५१-५२]—आदित्याः । अदिति । ईश्वर के उपासकों के ज्ञान का सत्संग । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ६०३-६०५)

सू० [५३]—द्यावापृथिवी । भूमि सूर्यवत् विद्वान् माता पिताओं का कर्त्तव्य । (पृ० ६०५-६०६)

सू० [५४-५५]—वास्तोष्पतिः । राष्ट्रपति, गृहपति, परमेश्वर । उनके कर्त्तव्य । उसका तारकवत् वर्णन, उससे प्रार्थना । (पृ० ६०६-६१०)

सू० [५६-५८]—मरुतः । (१-२५) रुद्र सेनापति के वीरजन । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ६१०-६२३)

सू० [५९]—मरुतः । (१-११) वीरों के कर्त्तव्य । (२-५) उनसे प्रार्थना । (६-८) मधुवत् करसंग्रह, भिक्षासंग्रह, न्यायोपार्जित धन ग्रहण का उपदेश । (९-१०) 'सान्तपन अग्नि' विद्वान् ब्राह्मण का वर्णन । रुद्रः । (१२) 'मृत्युंजय मंत्र' । त्र्यम्बक का रहस्य । (पृ० ६२३-६२७)

सू० [६०]—सूर्य । (१) न्याय शास्ता के प्रति प्रार्थना । मित्र वरुण । (२-१२) सर्वश्रेष्ठ मित्र वरुण आदि का वर्णन । (पृ० ६२७-६३२)

इति पञ्चमेऽष्टके चतुर्थोऽध्यायः



॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद विषय-सूची

पञ्चमाष्टके पञ्चमोध्यायः

सप्तमो मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः

(एकषष्टितमसूक्तादारभ्य)

सू० [६१]—मित्र और वरुण। परस्पर वरण करने वाली स्त्री-पुरुषों को उपदेश। उनके प्रति सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (२) उत्तम जीवन व्यतीत करने का उपदेश। (३) राज्य में प्रजा-पालक, दुष्टवारक मित्र, वरुण दोनों वर्गों के कर्त्तव्य। (४) मित्र, वरुण का महान् सामर्थ्य। (५) दोनों विद्वानों के वचन, उत्तम ज्ञान से पूर्ण हों। (पृ० १-४)

सू० [६२]—(१-३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। सबका भार अपने पर ले, समान रूप से देखे, उत्तम कर्म करे। किरणोंवत् सज्जनों सहित उदय को प्राप्त हो। (३) विद्वान्, स्नेही, शासक जन, प्रजाओं को नाना सुखजनक सम्पदाओं से पूर्ण करें। (४) आकाश-भूमिवत् माता पिता का कर्त्तव्य। प्रजा का हित। (५) बाहुओंवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (६) विद्वान् शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ४-६)

सू० [६३]—(१-५) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। (२) यन्त्रचक्र में लगे अश्व या एंजिनवत् वा राशिचक्र के बीच स्थित सूर्यवत् विद्वान् का सर्वसञ्चालन। (४) सर्वप्रेरक सूर्यवत् ज्ञानी से प्रेरित

जनों की सदर्थ-प्राप्ति। (५) सूर्यवत् सन्मार्ग में गति, मित्र और वरुण का आदर। (पृ० ९-१०)

सू० [६४]—सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (२) राजा रानी, राजा सेनापति के कर्त्तव्य। (३) वायु मेघवत् राजाओं के प्रजापतिवत् कर्त्तव्य। (५) वायुवत् श्रेष्ठ जन का कर्त्तव्य। (पृ० १०—१२)

सू० [६५]—मित्र और वरुण, राजा-प्रजा वर्ग के कर्त्तव्य। (२) उनके गृहपति-गृहपत्नीवत् कर्त्तव्य। (पृ० १२—१४)

सू० [६६] (१-३)—मित्र, वरुण, स्त्री-पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य। (४ १३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य। (१२-१३) उनसे ज्ञानैश्वर्य की याचना। (१४) सूर्यवत् तेजस्वी शासक का वर्णन, उसके कर्त्तव्य। (१७-१९) उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० १४—२०)

सू० [६७]—दो अश्वी, राजा-रानीवत् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) सूर्य-उषा दृष्टान्त से गुरु-शिष्य के कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा और बुद्धि का वर्णन। (३) जितेन्द्रिय नर-नारियों के कर्त्तव्य। (४) उनका आचार्य के अधीन वास, भैक्ष्य, मधुकरी वृत्ति। (५) अश्वी, जितेन्द्रिय शिष्य-शिष्या जनों का गुरु से ज्ञान-याचना का कर्त्तव्य। उनके उद्देश्य और कर्त्तव्य। विद्याध्ययनशील जनों का उपदेश। (पृ० २०—२४)

सू० [६८]—अश्वी, रथी-सारथीवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। शिष्य-शिष्याओं के कर्त्तव्य। (७) दुर्मित्रों से त्यक्त, निःसहायों का सहाय करना कर्त्तव्य है। अश्वियों का भुज्यु को समुद्र से पार करने का रहस्य। (८) स्त्रियों, कन्याओं की रक्षा का कर्त्तव्य। (९) विद्वान् का कर्त्तव्य उपदेश करना, ज्ञान बढ़ाना। (पृ० २४—२८)

सू० [६९]—दो अश्वी, (१) राजा और विद्वान्, गृहस्थ के कर्त्तव्य। रथवत् गृहस्थाश्रम। (२) रथि-सारथिवत् पति-पत्नी के कर्त्तव्य। (३) राजा-प्रजा आदि सहयोगी जनों को उपदेश। मधुमान् निधि


भारती पुस्तकालय

सौभाग्यवान् पुरुषों का लक्षण। (५) सत्पुरुष विदुषी स्त्री को उपदेश। (७) उसके कर्त्तव्य। (पृ० ४७–५१)

सू० [७७]—सूर्य, उषा के विज्ञान के साथ २ परमेश्वर का वर्णन और गृहपत्नी युवति के कर्त्तव्य। (२) दिनों की नायिका उषावत् परमेश्वरी शक्ति और उत्तम युवति, नायिका के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) सौभाग्यवती का लक्षण। (४) स्त्री और राजशक्ति का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (६) गृहपत्नी के कर्त्तव्य। (पृ० ५१–५४)

सू० [७८]—उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी के कर्त्तव्य। (२) अग्नि-उषा व विद्वान्-विदुषी के कर्त्तव्य। स्त्रियों का सत्-आचार। (४) सौभाग्यवती का वर्णन। (५) उनका स्नेहयुक्त होने का कर्त्तव्य। (पृ० ५४–५६)

सू० [७९]—उषावत् गुणप्रकाशक वधू के कर्त्तव्य। (२) नववधुओं के उज्ज्वल दीपकों और सूर्यकिरणों के तुल्य कर्त्तव्य। पति-पत्नी का शरीर में दो बाहुओं के तुल्य कर्त्तव्य। (३) पत्नी घर की रानी। (४) मेघ-विद्युत् वत् पुरुष-स्त्री को स्थिति। (५) स्त्री को उत्तम ज्ञान और वचन वाली होने का उपदेश। (पृ० ५६–५८)

सू० [८०]—उषावत् वधू के कर्त्तव्य। गर्भिणी के गर्भ पर उत्तम संस्कार डालने का उपदेश। साथ ही मृत्युन्मुख प्रकृति का वर्णन। (२) पत्नी के गृहोचित शिष्टाचारों का वर्णन। पाक्षान्तर में उषा, सेना का वर्णन। (पृ० ५९–६०)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८१]—उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी विदुषी के कर्त्तव्य। (२) उषावत् तेजस्विनी स्त्री का रानी-स्वरूप। (४) विदुषी स्त्री का मातृपद। माता के कर्त्तव्य। (पृ० ६०–६३)

सू० [८२]—इन्द्र-वरुण, शत्रुहन्ता, श्रेष्ठ पुरुष का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (२) इन्द्र-वरुण का स्वरूप एक वसुपति दूसरा प्रजापति। सम्राट् और साम्राज्य। (३) उनके कर्त्तव्य। नाना मार्ग निर्माण और प्रजा की समृद्धि-वृद्धि। (५) आधिदैविक दृष्टान्त से इन्द्र-वरुण का रहस्य। सूर्य-मेघवत् कोश और दण्ड के अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (६) इन्द्र, वरुण, दण्डकर्त्ता और दण्डपति। (७) पाप, दुराचार, पीड़ा, संताप से रहित उनका शासन। (८) दोनों प्रजा के बन्धु हों। (९) दोनों अग्रयोद्धा। (१०) और प्रजा को उत्तम बलदाता हों। (पृ० ६३–६८)

सू० [८३]—इन्द्र, वरुण, वायु, विद्युत्वत् शत्रुहन्ता और शत्रु-वारक अध्यक्षों के कर्त्तव्य। कृपकोंवत् सैन्यों के कर्त्तव्य। (२) संग्राम के दो नायक इन्द्र, वरुण। (३) युद्ध आदि संकट के विकट अवसरों में उनके कर्त्तव्य। (४) भेदनीति और सदुपाव का उपदेश। (५) प्रजा की त्राण की प्रार्थना। उन दोनों का महान् सामर्थ्य। दश राजा, सुदास, तृत्सु उनका रहस्य, सभा-सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० ६८–७२)

सू० [८४]—स्त्री पुरुषवत् प्रजा और राजा का परस्पर सम्बन्ध। (२) सम्पन्न राष्ट्र में प्रजा का कर्त्तव्य। उत्तम शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ७२–७४)

सू० [८५]—इन्द्र, वरुण–उत्तम शासक तथा वायु जल और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन। इन्द्र, वरुण राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ७४–७६)

सू० [८६]—वरुण, परमेश्वर का वर्णन। परमेश्वर की भक्ति-पूर्वक प्रार्थनोपासना। (३) बन्धन की जिज्ञासा। मोक्ष की प्रार्थना। (४) पाप मोचन की प्रार्थना। (५) बन्धन-मोचन की प्रार्थना। (६) दुःख मार्ग में जाने के कारणों की विवेचना। (७) सन्मार्ग पर नायक प्रभु। (पृ० ७६–७९)

सू० [८७]—वरुण परमेश्वर के महान् दर्शनीय कार्य । प्रभु परमेश्वर का व्यवस्थित शासन । (४) प्रभु की व्यवस्था में विद्वान् का कर्त्तव्य । (५) जगत्स्रष्टा की अद्भुत सृष्टि । (६) परमेश्वर का वर्णन । (७) दयालु प्रभु । (पृ० ८०–८३)

सू० [८८]—वरुण परमेश्वर का वर्णन । निष्पक्षपात प्रभु । (२) श्लेष से अन्नवत् प्रभु का वर्णन । (३) शिष्य-गुरु, भक्त-उपास्य के स्नेह की पति-पत्नी के स्नेह से समता । (४) वाणी रूप प्रभु का निष्ठ भक्त को तारना । शिष्य के लिये तीर्थ गुरु किस प्रकार है । (५) भक्त-उपास्य का सखाभाव । (६) हम पापी होकर ईश्वर के दिये धन का भोग न करें । (७) कर्म-बन्धन को काटने हारा प्रभु । कर्म-बन्धन के छेदन का प्रकार । (पृ० ८३–८६)

सू० [८९]—देह-बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना । (२) दुःखी जीव की विनीत प्रार्थना । (४) भवतृष्णा से मोचन की प्रार्थना । (पृ० ८६–८८)

सू० [९०]—बलवान् सेनापति के कर्त्तव्य । (३) सभापति के कर्त्तव्य । प्रजाजन स्त्री-पुरुषों के अन्य कर्त्तव्य । (४) विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) स्वामियों, शासकों के कर्त्तव्य । (६) ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्य । (पृ० ८८–९१)

सू० [९१]—बलवान् का स्थापन । बलवानों के कर्त्तव्य । (४–६) विद्युत्-वायुवत् दो नायकों के कर्त्तव्य । (पृ० ९१–९४)

सू० [९२]—वायुवत्, विवेकी विद्वान्-निर्णायक के कर्त्तव्य । (२) उत्तम शासक के कर्त्तव्य । (३) विवेकी वीर जनों के कर्त्तव्य । (पृ० ९४–९६)

सू० [९३]—इन्द्र अग्नि माता-पितृवत् ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी जनों के कर्त्तव्य । (३) विद्युत् और अग्नि के तुल्य अध्यापक, आचार्य और

सभापति, सेनापति के पद। अग्रणी नायकों, वीरों के कर्त्तव्य। (७) शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ९६-९९)

सू० [९४]—इन्द्र-अग्नि, विद्वान्, गुरु, शिष्यों के कर्त्तव्य। (३) नायक नायिका जनों के कर्त्तव्य। (१२) दुष्टाचारी को उचित दण्ड। (पृ० ९९-१०२)

सू० [९५]—सरस्वती। नदीवत् पत्नी या स्त्री के कर्त्तव्य। श्लेषमय वेद का अपूर्व चमत्कार। (३) सरस्वान् नरश्रेष्ठ का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (४-६) स्त्री को उपदेश। (पृ० १०२-१०५)

सू० [९६]—(१-३) वेदवाणी सरस्वती का वर्णन। (४-६) ज्ञानवान् प्रभु सरस्वान् से प्रार्थना। (पृ० १०५-१०७)

सू० [९७]—प्रभु की उपासना। प्रार्थना स्तुति। बृहस्पति प्रभु। (पृ० १०७-१११)

सू० [९८]—मनुष्यों को यज्ञ का उपदेश। (२) उत्तम राजा के कर्त्तव्य। (३) विजीगीषु राजा के कर्त्तव्य। (४) वीर जनों के कर्त्तव्य। (५) राजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रभु की उपासना। (पृ० ११२-११४)

सू० [९९]—सर्वव्यापी प्रभु की महिमा का वर्णन। (४) इन्द्र, विष्णु, विद्युत् पवनवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) राजा-सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ११४-११७)

सू० [१००]—विष्णु, व्यापक प्रभु की स्तुति-उपासना। (पृ० ११७-१२०)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१०१]—पर्जन्य। मेघवत्-विद्वान् के कर्त्तव्य। उसका शिष्य को वत्सवत् ज्ञान रस से वर्धन। (२) मेघ सूर्यवत् जगत् के स्वामी से वेदमय ज्ञान और सुखद देह की प्रार्थना। त्रिवत्तु ज्योति

और त्रिधातु शरण का रहस्य। (३) मेघ के अप्रसूता और प्रसूता गौ के तुल्य रूप। उसके साथ सम्बद्ध भूमि सूर्यवत् प्रभु के दो रूप और प्रकृति पुरुष के विज्ञान का स्पष्टीकरण। (४) मेघविज्ञान। प्रकृति-परमाणुओं की तीन प्रकार की गति। तीन कोशों का वर्णन, अध्यात्म तत्त्व। (६) गौ वृषभ के दृष्टान्त से जगत्-स्रष्टा के आधार पर समस्त जगत्। (पृ० १२०-१२३)

सू० [१०२ [—पर्जन्य। मेघवत् सर्वोत्पादक प्रभु के गुणों का वर्णन। अग्निहोत्र-यज्ञ से प्रभु की प्रार्थना और मेघोत्पत्ति। (पृ० १२३-१२४)

सू० [१०३]—मण्डूकों के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञानी, तपस्वी और नाना विद्याओं के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० १२४-१२९)

सू० [१०४]—दुष्टों का दमन। राजा और पुरोहित के कर्त्तव्य। दण्डविधान का आदेश। (४) दुष्टों के दमन के नाना साधनों का उपदेश। (५) दण्ड योग्य अपराधियों का निर्देश। (१२) सत्यासत्य का विवेक करने का उपदेश। (१३-१४) सत्यवादी को दण्ड न देकर पापी को दण्ड देने का उपदेश। (१५) पीडादायियों को दण्ड। असत्यारोपी को दण्ड। (१७) दुष्ट स्त्रियों को दण्ड। (१८-१९) दुष्टों को कठोर दण्ड। दण्ड के लिये आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग। (२१-२४) कुटिलाचारी जनों पर दण्डपात। (२५) इन्द्र, सोम, राजा और न्यायपति के कर्त्तव्य। (पृ० १२९-१३९)

अष्टमं मण्डलम्

सू०] १]—एक मात्र उपास्य प्रभु का वर्णन। उसके अनेक गुण। (५) उपास्य को धन के लिये न त्यागें। (६) ईश्वर का मातृसम पद। (८) पुरन्दर ईश्वर बन्धनमोचक। वीर सेनापति से तुलना। (१०) प्रभु की दुधार गौ से तुलना। (११) सेनापतिवत् प्रभु की

स्तुति । (१२) अद्भुत कारीगर प्रभु । (१३-१६) प्रभु से उत्तम २ प्रार्थनाएं । (१७) उत्तम कर्त्तव्योपदेश । (१८-२४) प्रभु से प्रार्थनाएं । (२५) सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन । (२६) प्रभु से प्रार्थनाएं । सत्पुरुषों के कर्त्तव्य । (३२-३४) आसङ्ग प्रायोगि का रहस्य । (पृ० १४०-१५२)

सू० [२] – प्रजापति, राजा और गृहपति के कर्त्तव्य । (२) राजा के प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य । (४) अद्वितीय स्वामी इन्द्र । (६) उस की उपासना । (७) प्रभु की राजा से समानता । (९) अभिषेक का अभिप्राय । (१०) आश्रय-याचना । (११-१७) राजा के कर्त्तव्य । प्रजा की प्रार्थना । प्रभु के प्रति भक्त की याचनाएं और कर्त्तव्य । (१८-३६) प्रभु परमेश्वर से बल ऐश्वर्य की याचना । (३७) स्तुत्य प्रभु । उससे प्रार्थनाएं (पृ० १५२-१६५)

सू० [३]—प्रभु से प्रार्थना और उसकी स्तुति । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य । (पृ० १६५-१७३)

सू० [४]—इन्द्र, प्रभु परमेश्वर का वर्णन । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) आत्मा का वर्णन । (८) राजा प्रजा का गृहस्थवत् व्यवहार । राजा के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० १७४-१८२)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [५] – उषा और अश्वियुगल । गृहलक्ष्मी उषा देवी । जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को गृहस्थोचित उपदेश । वीर विद्वान् एवं राजा और अमात्य-राजावत् युगल जनों के कर्त्तव्य । (३७, ३८, ३९) वैद्य प्रभु के दान और उसकी अध्यात्म व्याख्या । (पृ० १८२-१९४)

सू० [६]—पर्जन्यवत् ज्ञानप्रद प्रभु की उपासना । (२) विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) वीर पुरुषवत् ईश्वर का अद्भुत कर्म । (६) सूर्य, वायु, विद्युत्वत् राजा के कर्त्तव्य । (७-९) विद्वानों के गुण और

कर्त्तव्य । (१०) प्रभु से प्रार्थनाएं । (१२-१३) गुरुवत् प्रभु । (१४) पापनिवारणार्थं दण्ड-प्रयोग का उपदेश । (१५) अपरिमेय सबसे बड़ा प्रभु । (१६) प्रसुप्त प्रकृति का ईश्वर से सम्बन्ध । (१७) तम दूर करने की सूर्यवत् प्रभु से प्रार्थना । (१९) गौओं के तुल्य ऋषियों का प्रभु के प्रति भाव । (२०) सर्व-शक्तिप्रद प्रभु । (२१) पिता प्रभु । प्रभु और राजा से अनेक स्तुति-प्रार्थनाएं । (४६) सर्वोत्तम सुख प्रभु का है । 'तिरिन्दिर' का रहस्य । (४७) समदर्शी को बड़ा लाभ । (पृ० १९४-२०९)

सू० [७]—मरुद्गण । वायुओं के तुल्य बलवान् वीरों और विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश । (३-७) मेघ और वृष्टि लाने वाले वायुगण का वर्णन । उनकी तुलना से सज्जनों, वीरों के कर्त्तव्य । (पृ० २०९-२२२)

सू० [८]—अश्वी अर्थात् जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । राष्ट्र में राजा और सचिव जनों के कर्त्तव्य । (६-१५) ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी जनों के कर्त्तव्य । (पृ० २२२-२३०)

सू० [९]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में (१०) राजा और सेनापति के कर्त्तव्य । (१६-१८) उत्तम देवी विदुषी के गुण और कर्त्तव्यों का वर्णन । शिक्षा, आतिथ्य और ज्ञानप्राप्ति सम्बन्धी अनेक उपदेश । (पृ० २३१-२३८)

सू० [१०]—जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । वेग से जाने वाले साधनों से सम्पन्न पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० २३८-२४१)

सू० [११]—व्रतपा अग्नि । राजा, विद्वान् व अग्रणी नायक आचार्य के कर्त्तव्य । सर्वशासक तेजोमय प्रभु का वर्णन । (पृ० २४१-२४३)

षष्ठोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

सू० [१२]—विश्वस्रष्टा की स्तुति । (२) राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (पृ० २४४-२५४)

सू० [१३]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों का निदर्शन । (पृ० २५४-२६४)

सू० [१४]—ईश्वर से ऐश्वर्यादि की प्रार्थनाएं । (२) गोपति होने की प्रार्थना । (३) सर्व सम्पदा के दाता प्रभु । यज्ञमय प्रभु की महिमा । (७) उदारचेता प्रभु । (८) गुरुवत् प्रभु । (९) प्रभु के स्थायी कार्य । (१०) आनन्द-सागर प्रभु । (११) मङ्गलकारी प्रभु । (१३) 'अपां-फेन' से नमुचि के नाश का रहस्य । (१३-१५) दुष्टों के नाश का उपदेश । (पृ० २६५-२६९)

सू० [१५]—सर्वशक्तिमान् ईश्वर की उपासना । (२) सर्व-धारक प्रभु । (३) जगत् का एक अद्वितीय शासक । (४) सर्वशक्ति-मान् जगत-कर्त्ता । (५) प्रकाशों का दाता । (७) बुद्धिमय प्रभु का बल, ऐश्वर्य और ज्ञान । (८) उसका महान् ऐश्वर्य । (१०) उत्पादक, पालक प्रभु । (११) सर्वविघ्नहारी प्रभु । (१४) सर्वोपरि सर्वोपास्य । (पृ० २६९-२७२)

सू० [१६]—परमेश्वर का स्तवन । (३) ज्येष्ठराज प्रभु । (५) सर्वाध्यक्ष का वर्णन । (६) सर्वैश्वर्य स्वामी का वर्णन । स्तुतियोग्य प्रभु के गुणों का वर्णन । (पृ० २७३-२७६)

सू० [१७]—प्रभु की स्तुति । उसका हृदय में आह्वान और धारण । (९) गुरु का शिष्य को दीक्षित करना । उसको वेदोपदेश ।

आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य । वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन । विघ्नविनाशक परमेश्वर । (९) जगत् का स्वामी । (१०-१५) उपास्य उपासक में गुरु शिष्य का सा भाव । (१२) शक्तिशाली प्रभुवत् राजा । (१४) वास्तोष्पति शासक इन्द्र । (पृ० २७६-२८१)

सू० [१८]—विद्वानों से उत्तम ज्ञान की याचना । आदित्य विद्वानों का वर्णन । (४-७) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (८) चिकित्सकों के कर्त्तव्य । (८-९) रोगनाशक पदार्थ अग्नि वायु और सूर्य । (१०) विद्वानों से अज्ञान और पापनाश की प्रार्थना । (२०-२२) विद्वानों से नाना कल्याण-प्रार्थनाएं । (पृ० २८१-२८७)

सू० [१९]—प्रभु-स्तुति का उपदेश । (२) अग्निवत् ज्ञान प्रकाशक की स्तुति और आदर करो । अग्नि के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन । (५-६) उपासक यज्ञकर्त्ता को सत्फल की प्राप्ति । (७) सेनापति के कर्त्तव्य । प्रकारान्तर से स्वामी, राजा और प्रभु का वर्णन । (१०) अग्रणी वीर नायक के कर्त्तव्य । (११) विद्वान् का वर्णन । उसके संस्कार का विधान । (१४) नेता के कर्त्तव्य । (१८) यज्ञ आदि द्वारा उपासकों को उत्तम फल । (१९) दान आदि का फल । (२०) नायक वा प्रभु से प्रार्थना । (२१) प्रभु की स्तुति । (२२) आहुत अग्निवत् विद्वान् का रूप । (२३) अग्नि विद्युत् वा सूर्य के तुल्य नायक, विद्वान् प्रभु का रूप और उसके कर्त्तव्य । उत्तम यज्ञकर्त्ता का सदाचारमय लक्षण । (२५) उपास्य-उपासक की अनन्यता की भावना । (२६) पाप के निमित्त भगवान् का परित्याग न हो, स्तोता वा शास्ता मूर्ख और पापी न हो । (२७) पितावत् प्रभु । भगवान् की भक्ति । (३०) सखा प्रभु । (३१) प्रभु के अग्निरूप की व्याख्या । (३२) सम्राट् प्रभु । (३३) परम अग्नि प्रभु । (३४) आदित्य विद्वानों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (३६-३७) पौरुकुत्स्य का दान । पुरुकुत्स सेनापति । उसका वर्णन । अध्यात्म रहस्य । (पृ० २८७-३०१)

सू० [२०]—मरुतों अर्थात् वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । वायु और जल लाने वाले वायु-प्रवाहों के वर्णन । (२२) उत्तम अध्यक्ष मरुद्-गण । (२५) देह में मरुद्गण प्राणगण । (पृ० ३०१-३१२)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२१]—स्वामी के अद्भुत गुणों का वर्णन । आत्मा, प्रभु और विद्वान् का वर्णन । (४) बन्धुमान् प्रभु की शरण । (५) आश्रय वृक्षवत् प्रभु का आश्रय । (६) ईश-विनय के प्रयोजन । सर्वप्रद प्रभु । (१०) प्रभु का परमैश्वर्य । (११) सदा सहयोगी और सहायक प्रभु । (१२) प्रभु या राजा की सहायता से दुष्टों का दण्डित करने का संकल्प । (१४) व्यसनी, धनाभिमानी का प्रभु मित्र नहीं । भक्तों का पिता प्रभु । (१५) भक्तों की चरम इच्छा । (१६) न्यायप्रद प्रभु । (१७) प्रभु का सरस्वती-रूप । (१८) मेघवत् दाता, महाराज प्रभु । (पृ० ३१२-३१८)

सू० [२२]—सेनापति और वैद्यवत् स्त्री-पुरुषों का वर्णन । (२) गृहस्थ रथ का वर्णन । (४) गृहस्थ-रथ के दो चक्र । (५) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (६) कूपकवत् उत्तम गृहपति और गृहपत्नी के कर्त्तव्य । कृपि का उपदेश । (६) उत्तम नायक की स्थापना । (९) वेगवान् यान आदि साधन सम्पन्नों के कर्त्तव्य । (१०) रोगी की सेवा का उपदेश । (११-१२) अन्यान्य नाना कर्त्तव्य । (पृ० ३१८-३२५)

सू० [२३]—अग्नि उपासना के साथ २ अध्यात्म उपासना । प्रभु परमेश्वर की अग्निवत् स्तुति । पक्षान्तर में अग्निवत् राजा और विद्वानों का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । उसके प्रति प्रजाजनों का कर्त्तव्य । अग्नि तुल्य गुणों वाले प्रभु से प्रार्थनाएं । (पृ० ३२५-३३५)

सू० [२४]—सर्वशक्तिमान् प्रभु के गुणों का वर्णन । (२)

दुष्टहन्ता प्रभु । (४) ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (६) परम शरण प्रभु । (७) शास्ता प्रभु । (९) सर्वसंचालक प्रभु । (१०) उसकी नाना प्रकार से उपासनाएं वा भक्ति-प्रदर्शन और स्तुति । (२४) सर्वज्ञ प्रभु की स्तुतियां । (२५-२७) दुष्टों के नाश की प्रार्थना । (२८) सत्पात्रों में दान देने वाले को प्रभु भी देता है । (२९) सत्पात्र में दान का उपदेश । सबसे परे अगम्य प्रभु । (पृ० ३३५-३४४)

सू० [२५]—उत्तम, आदरणीय, स्त्री-पुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । उत्तम माता पिता से रक्षा की प्रार्थना । (१२-१५) उत्तम पुरुषों के कर्त्तव्य । विश्वपति राजा के प्रभु और सूर्यवत् कर्त्तव्य । (१७-१८) महान् सम्राट् । विश्वपति वरुण, प्रकाशस्वरूप ईश्वर । (२१-२२) प्रभु की स्तुति । (२२-२५) सत्पुरुषों से प्रार्थना । (पृ० ३४४-३५१)

सू० [२६]—उत्तम नायक, राजा प्रजा, वा पति-पत्नी जनों के गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन । राजा-सचिव । (४) माता-पिता, गुरु जनों के कर्त्तव्य । (५) सैन्य-सैन्यपति के कर्त्तव्य ऐश्वर्ययुक्त सत्य-वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य । (१३) दिन-रात्रिवत् । पति-पत्नी जनों के कर्त्तव्य । (२१-२२) भावी जामाता के प्रति आदर । (२२-२७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना । (पृ० ३५१-३६०)

सू० [२७]—ज्ञानी पुरुष का पुरोहित पद पर स्थापन । विद्वान् से ज्ञान की याचना । नाना प्रकार के उत्तम वीर विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (११) राजा के कर्त्तव्य । (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य । (१८) राष्ट्र के प्रति उनके कर्त्तव्य । (पृ० ३६०-३६७)

सू० [२८]—३३ देवगण । राष्ट्र के ३३ प्रमुख शासक । (२) वरुण, मित्र, अर्यमा । तीन प्रधान पद । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ३६८-३६९)

सू० [२९]—विश्व के एक अद्वितीय अध्यक्ष का वर्णन। उसके महान् अद्भुत कर्म। (८-९) जीव और प्रभु का प्रकृति के साथ वर्णन। (पृ० ३६९-३७२)

सू० [३०]—राष्ट्र में प्रजा जनों के सदृश जीवों का वर्णन। (२-४) राष्ट्र-शासक रूप ३३ देवों का वर्णन। उनसे रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ३७२-३७३)

सू० [३१]—यज्ञ और यजमान की प्रशंसा। उसके कर्त्तव्य। (२-७) पक्षान्तर में राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) प्रजावती स्त्री की अग्नि से तुलना। (५) पति-पत्नी के कर्त्तव्य। (१०-११) पूषा परमेश्वर से प्रार्थना। (१२-१४) विद्वानों से प्रार्थना। (१५-१८) उत्तम प्रभु भक्त का प्रभाव। यज्ञशील का वैभव, बल और सामर्थ्य। (पृ० ३७३-३७९)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [३२]—विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य का उपदेश। (२) शासक के गुण। (३) विद्युत्वत् सेनापति वा राजा के कर्त्तव्य। शत्रु-विजय का आदेश। (६) व्यापार का उपदेश। राजा प्रजा को समृद्ध करे। पक्षान्तर में आचार्य और आत्मा का वर्णन। (१२) माता के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। बड़े भारी पालक प्रभु की स्तुति। (१३-१५) नियन्ता सर्वविजयी सखा। बड़ा दानी है। (१६) उऋण जन। (१७) उपास्य का स्तवन। (१८) स्तुति योग्य के लक्षण। बन्धन-मोचक प्रभु। (१९-२०) जीव को कर्मफल भोग का उपदेश। (२१) राजा को वा उत्साही को आदेश उपदेश। (२६-२९) बलवान् इन्द्र के लक्षण। (२७-३०) विद्वानों को उपदेश। (पृ० ३७९-३८८)

सू० [३३]—उत्तम प्रजाओं के जलधारावत् कर्त्तव्य। (२) प्रभु ईश्वर की उपासना। (३) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों का

सू० [३९]—अग्नि, ज्ञानी और अग्रणी नेता पुरुष के कर्त्तव्य। उसके ज्ञान-प्रकाश द्वारा क्रम से विघ्नों और दुष्टों का नाश। (९-१०) देहाग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य। (पृ० ४१७—४२३)

सू० [४०]—इन्द्र, अग्नि, वायु, आग के समान विद्वानों के ज्ञान और तेजस्वी नायक के तेज, पराक्रम से दुष्टों का नाश। (३) इन्द्र और अग्नि दो अध्यक्षों का वर्णन। उनके आदर का उपदेश। (५) विद्युत् और अग्नितत्त्वों को वश करने का उपदेश। (६) दुष्ट के धना-दान और वश करने की आज्ञा। (७) दुष्टों के नाश का उपदेश। (८) सूर्य, अग्निवत व्रतपालकों के कर्त्तव्य। (१०-१२) सूर्यादि के तेज से रोगों के तुल्य दुष्टों का नाश। (पृ० ४२३—४२८)

सू० [४१]—श्रेष्ठ पुरुषों के आदर का उपदेश। राजा के कर्त्तव्य। (२) राजा के नाशार्थ उद्योग, पालक पुरुषों का नियोजन। (३) राजा का सैन्य-रक्षण। राष्ट्रस्थापन। (४) देह में प्राणों वा राजा का प्रजाओं को पालन करने का कर्त्तव्य। (५) सूर्यवत् लोकधारण के तुल्य राष्ट्रधारण। (६) चक्र में नाभि के तुल्य प्रभु वा विद्वान् के कर्त्तव्य। गोशाला में पशुओं के तुल्य इन्द्रियों का संयम। (७) सर्वोपरि वरुण। (८) समुद्रवत् राजा। (९) त्रिलोकाधिपति वरुण परमेश्वर। राजा के सात अश्वोंवत् प्रभु का सब स्थावर जंगमों पर शासन। (१०) सर्वशासक की अद्भुत शक्तियां (पृ० ४२८—४३३)

सू० [४२]—वरुण परमेश्वर का वर्णन। सर्वोपास्य प्रभु। नौकावत् वेदवाणी का आश्रय लेने का उपदेश। (४-६) स्त्री पुरुषों को उपदेश। (पृ० ४३३-४३५)

सू० [४३]—प्रभु की वेदवाणियों द्वारा स्तुति। (३) सर्व पाप-नाशन प्रभु, अग्नि। (४) अग्निवत् प्रभु की विभूतियां। इसी प्रकार स्वतन्त्र जीवगण की सत्ता का वर्णन। (५) नाना स्वतन्त्र जीवों का

अग्नियों के तुल्य निरूपण। (६) साधक जीव के मार्ग की बाधाएं (७) अग्नि से जीवनधारी आत्मा की तुलना। (८) पुनः उत्पन्न होने वाले जीव की अग्नि से तुलना। (९) अग्निवत् जीव का जन्म। (१०) अग्नि-ज्वाला के तुल्य गर्भ में स्थिर जीव की वृद्धि। (११) जीव और परम-आत्मा का स्वरूप। (१२) प्रकाशमय, दुःखनाशन, पापनिवारक प्रभु की उपासना। (१४) उसके प्रकाशित होने का प्रकार। (१५) सहस्र-ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (१६) भ्रातृवत् शुद्धहृदय प्रभु। (१७) मातृवत् प्रभु का वरण। (१८) मुख्य प्राणवत् प्रभु। (१९) सर्वाध्यक्ष प्रभु। (२०-२१) समदर्शी प्रभु। (२२) प्रकाशस्वरूप प्रभु। (२३) द्वेषनाशक प्रभु। (२४) साक्षी, अध्यक्ष प्रभु। (२५) सबको भयप्रद सर्वसञ्चालक प्रभु। (२६) दण्ड दाता प्रभु। (२७) अग्निवत् प्रभु। (२८) आत्मा के तीन रूप। (३२) बलवान् दुष्टनाशक प्रभु। (३३) अविनाशी ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु। (पृ० ४३५-४४५)

सू० [४४]—अग्नि-परिचर्या के तुल्य गुरु और प्रभु की उपासना। (४) अग्नि और सूर्यवत् ऊर्ध्व रेता तेजस्वी का वर्णन। अग्नि की प्रभु से श्लिष्ट समताएं। (६-७) स्तुत्य अग्नि, विद्वान् और प्रभु। (८) यज्ञ का नेता अग्नि। (११) विजिगीषु तेजस्वी नायक अग्नि। (१२) विद्वान् अग्नि। (१३-१४) नायक अग्नि। (१५-१६) ब्रह्मचारी विद्वान् अग्नि। (१७-२१) ज्ञानी, स्तुतियोग्य प्रभु। (२३) भक्त की अनन्यता उपास्यमयता। (२४) सर्वपालक प्रभु। (२५-२७) स्तुत्य प्रभु। (२८) उपास्य में लय। (२९) ब्रह्माण्डदीपक प्रभु। (३०) मोक्ष की प्रार्थना। (पृ० ४४५-४५२)

सू० [४५]—इन्द्र अग्नि। प्रभु के उपासकों का महान् ऐश्वर्य। (४) राजा का भूमि-माता के प्रति कर्त्तव्य। (५) बलवान् यशस्वी नेता अग्नि। (६-७) महारथी अग्नि, उसके कर्त्तव्य। (९-११) उत्तम

सेनापति अग्नि । इसके कर्त्तव्य । (१२) दानशील । गृहपतिवत् अग्नि प्रभु । (१४) ऐश्वर्यवान् प्रभु । उससे नाना प्रार्थनाएं, शरण-याचना । (२३) उत्तम नेताओं के कर्त्तव्य । (३०-४२) श्रेष्ठ राजा, उससे प्रजा की न्यायानुकूल नाना अभिलाषाएं । (पृ० ४५३-४६४)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [४६]—उत्तम शासक, नेता, स्वामी शासक के कर्त्तव्य । प्रभु का वर्णन । उससे अनेक प्रार्थनाएं । (२८) स्वराष्ट्र-शासक । उसका वैभव । (पृ० ४६५-४७५)

सू० [४७]—आदित्यां, मासों के तुल्य विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य । (२-३) चूज़ों पर पक्षीवत् उनकी प्रजा पर पक्षच्छाया । (७) उनकी उत्तम रक्षा का आदर्श । (८) कवचवत् रक्षकों का स्वरूप । (९) रक्षा शान्तिप्रद हो । (१०) देह से गृह और राष्ट्र की तुलना । (११-१८) उनके निष्पाप सुखदायी रक्षा-कार्यों का विवरण । (पृ० ४७५-४८१)

सू० [४८]—सोम । उत्तम अन्न, ओषधि-सेवनवत् परमानन्दमय प्रभु का सेवन । (२) सोम शिष्य, उपासक के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में विद्वान् और देह में वीर्य का वर्णन । (३-५) सोम, ओषधि-रस के पान के समान ऐश्वर्य, वीर्य, पुत्र, शिष्यादि का पालन । (६) विद्वान् सोम से ज्ञान की प्रार्थना । सोम तेजस्वी प्रभु से दीर्घ जीवन की याचना । (९) सोम का व्रत पालन । (१०) सोम, राजा से प्रार्थना । (११) सोम अभिषिक्त राजा । (१२) सोम, व्यापक प्रभु की परिचर्या । (१४) विद्वानों से प्रार्थना । (पृ० ४८१-४८७)

बालखिल्यम्

सू० [४९]—ज्ञानप्रद, सर्वदाता, सर्वरक्षक प्रभु की स्तुति । (२) मेघ वा पर्वत से झरते जलों के तुल्य प्रभु के ऐश्वर्य । (३)

जलाशय के जलों के तुल्य उसके पूरक ऐश्वर्य। (४) मधुवत् उसके मधुर सुख। (५) गोरसों के तुल्य सुखद उसके दान। ऐसे प्रभु की उपासना का उपदेश। (७) राजा से प्रजा की प्रार्थनाएं। (पृ० ४८७-४९०)

सू० [५०]—इन्द्र परमेश्वर की स्तुति का उपदेश। प्रभु का अपार ऐश्वर्य। (३) प्रभु और उपासक जन। (पृ० ४९१-४९४)

सू० [५१]—उत्तम राजा का वर्णन। (३-४) ज्ञानमय प्रभु एवं उपदेश से ज्ञान की याचना। (४) इन्द्र-प्रभु विषयक उपदेश। सस-शीर्षा अश्व। (५) प्रभु का ज्ञान। इस एक जन्म में करने की प्रार्थना। (६-८) दाता प्रभु से याचना। सर्वस्वामी और स्तुत्य प्रभु। (पृ० ४९४-४९८)

सू० [५२] शक्तिशाली, राजा, विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन। (३) इन्द्र का स्वरूप। महान् शासक परमेश्वर इन्द्र। उसकी स्तुति प्रार्थनाएं। (पृ० ४९८-५०२)

सू० [५३]—राजा, परमेश्वर। (२) अतिथिग्व, विद्वान। (३) मधुरस-आसेचन। (४) द्वेप नाशन। (५) ईश्वर का सामीप्य। (६) अधिकार योग्य व्यक्ति। (७) उत्तम याचना। (पृ० ५०२-५०४)

सू० [५४]—परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनाएं। (पृ० ५०४-५०७)

सू० [५५]—प्रस्कण्व की दानस्तुति। परमेश्वर के जीव जनों पर अपार दान। (पृ० ५०७-५०९)

सू० [५६]—तेजस्वी परम पुरुष का विशाल बल और ऐश्वर्य। (२) वेदज्ञान का दाता प्रभु। विद्वानों को अनेकविध दान। (पृ० ५०९-५१०)

सू० [५७]—सदाचारी स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। जीवन का तृतीय सवन। (पृ० ५११-५१२)

सू० [५८]—यजमान और ऋत्विजों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य, अग्नि, उषावत् सर्वप्रकाशक प्रभु । (३) विराट् रथ का वर्णन । (पृ० ५१२-५१४)

सू० [५९]—विद्युत्, जल, मित्र, वरुण । उनके समान सेनापति और राजा के कर्त्तव्य । (४) गुरु और आचार्य के कर्त्तव्य । (पृ० ५१४-५१७) इति बालखिल्यम् ।

सू० [६०]—प्रकाशस्वरूप, उत्तम अग्नि तुल्य, नायक प्रभु की प्रार्थना । अग्निवत् परमेश्वर के गुणों का वर्णन । (९) ज्ञानी व गुरु का वर्णन । (१०) रक्षोघ्न राजा के कर्त्तव्य । (११) पावन प्रभु का वर्णन । (१३-१४) राजा का पराक्रम । (१५) अरणियों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी की प्रजाओं में स्थिति । (१६) यज्ञाग्निवत् सात प्रकृति वाले राजा का स्वरूप । उसके कर्त्तव्य । (पृ० ५१७-५२४)

सू० [६१]—सत्य-निर्णायक न्यायाधिकारी के कर्त्तव्य । (२) धिषणा नाम दो सभाओं को अपना रक्षक चुनने का अधिकार । (३) राजा के कर्त्तव्य । (४) राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य । (५) ऐश्वर्य-वान् प्रभु का पद; उसका कर्म । परमेश्वर के ध्यान ज्ञान से कर्म करने वाला पवित्र हृदय होता है । (१२) उत्तम रथीवत् प्रभु की उपासना । (१३-१८) प्रभु से अभय की याचना । (पृ० ५२५-५३१)

सू० [६२]—ईश्वर की स्तुति । प्रभु के मङ्गलकारी दान । (२) एक अद्वितीय, अविनाशी । (३) सर्वजीवन प्रद है । प्रभु के दिये अनेक सुखकारी दान । (७) विश्व का पालक प्रभु । (८) प्रभु का आदर्श बल । (९) युगल का घटक प्रभु । (१०-१२) उपास्य के प्रति भक्तिपूर्ण भाव । (पृ० ५३१-५३५)

सू० [६३]—शासक, विद्वान्, ज्ञानी के माता पितावत् कर्त्तव्य । प्रभु वा शासक का सर्वोपरि पद । (३) सर्वोपरि ज्ञानप्रद गुरु,

परमेश्वर । (६) सर्वाश्रय परमेश्वर । (७) सर्वपूज्य स्वामी ईश्वर । (८) जगत् का प्रवर्त्तक ईश्वर । (९) सुखार्थी जीव का प्रभु के आनन्द की ओर झुकाव । (१२) त्यागी जनों से प्रार्थना । (पृ० ५३५-५३९)

सू० [६४]— परमेश्वर की स्तुति । (२) महान् प्रभु । (३) सर्व-प्रभु राजा । (४) सर्वोपरि ईश्वर । (५) विद्वान् के कर्त्तव्य । (७) सर्वोपास्य, अज्ञेय प्रभु । (८-१०) प्रभु के विरल भक्त । (११-१२) राजा का अभिषेक-रहस्य । (पृ० ५३९-५४२)

सू० [६५]—सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति और उपासना । (पृ० ५४२-५४५)

सू० [६६]—परमेश्वर की स्तुति । (२) सर्वोपरि बलशाली प्रभु । (३) गोरूप वाणियों के आवरण को दूर करने वाला इन्द्र प्रभु । (४) सन्मार्ग-प्रवर्त्तक जगन्निर्माता प्रभु । (६) सर्वोत्तम दाता प्रभु । (७) नित्य । (८) सिंहवत् वा चन्द्रवत् प्रभु और राजा का वर्णन । (९) प्रकृति से जगत् का स्रष्टा सर्वोपरि श्रवणीय है । (१०) अपार बली प्रभु । (११) भोजनवत् नियमानुसार भक्ति का विधान । (१२) सर्वोपरि दयालु प्रभु । (१३-१४) मोक्ष की याचना । (१५) अभय- आश्वासन । (पृ० ५४५-५५१)

सू० [६७]—आदित्य सदृश तेजस्वी, धनवान् बलशाली लोगों के कर्त्तव्य । (२) वे प्रजा को पाप से मुक्त करें और प्रजा का पालन करें । (७) उत्तम शासक स्वयं अपराध से रहित हों । (९) प्रजा को नाश होने से बचावें । (१०-११) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (१२) उग्रपुत्रा माता भूमि । (१३) उरुव्रजा, उरूची वैश्य सभा । (१३-२१) तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ५५१-५५६)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [६८]—ईश्वराधना, उसकी स्तुति और प्रार्थना । सृष्टिकर्त्ता का पुनः पुनः मनन । (२) विश्व का विस्तारक परमेश्वर । (३)

बलशाली । (४-५) राजा का वर्णन । (६) सर्वलोक-पति प्रभु । (७) प्रजाओं का स्वामी प्रभु । (८) अपार शक्तिशाली प्रभु । (९-१३) उसकी स्तुति और प्रार्थनाएं । (१४) आत्मा के ६ नर, ६ इन्द्रिय गण । (१५) अश्वमेध-राष्ट्र-शासनवत् देहव्यवस्था । (१६) राष्ट्र में उत्तम वीरों की नियुक्ति । ६ सेनापतियों की नियुक्ति । वधूमान् अश्वों का रहस्य । अध्यात्म व्याख्या । देह में वाणीवत् राष्ट्र में राजसभा का रूप । (१९) नियुक्त जनों को उपदेश कि कोई भी निन्दनीय कर्म न करें । (पृ० ५५७–५६२)

सू० [६९]—राष्ट्र के प्रजाजनों के कर्त्तव्य । (३-४) प्रजाओं द्वारा उत्तम शासन की स्थापना । (६) वेदवाणियों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर मधुर रसवत् रूप । प्राप्त पद सखावत् प्रभु का मोक्ष सुख का पद । सखा प्रभु । (८) प्रभु की अर्चना का उपदेश । (९) विद्वान् का प्रजाजनों को उपदेश । (१०) गौओंवत् प्रजाओं का रूप । राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । वरण योग्य राजा वरण । (१२) वरुण आचार्यवत् । उत्तम नायकवत् भवबन्धन मोचक प्रभु । (१४) पक्व ओदन के तुल्य शिष्य का गुरु से ज्ञान ग्रहण । राजकुमार के रथारोहणवत् । राष्ट्रशासन पद का आरोहण और जीव का ब्रह्मपद-आरोहण । (१६) गृहपति का गृहस्थ रथ पर आरोहण । राजा-राष्ट्र का 'दम्पति भाव' । (१७) राजतन्त्रवत् अध्यात्मस्वराट् की उपासना । खेती करने के तुल्य देह से कर्मफल प्राप्ति । (पृ० ५६२-५६९)

सू० [७०]—सर्वोपरि नायक शासक का वर्णन । प्रभु परमेश्वर की गुण-स्तुति । (५) पक्षान्तर में वीर पराक्रमी शासक का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । (१०) पितावत् प्रभु । दुष्टदमनकारी वा राजा । (१२) (१२) राजा के कर्त्तव्य और बन्धनमोचक प्रभु । (१५) सेनावशकारी राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ५६९–५७५)

सू० [७१]—तेजस्वी अग्रणी नायक के कर्त्तव्य। उसके आव-श्यक गुणों का वर्णन। (११) नायक के दो प्रकार के रूप। (१२-१५) देहवत् पूज्य अग्नि परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ५७५–५७९)

सू० [७२]—यज्ञ प्रतिपादन। ब्रह्मयज्ञ। अध्ययन-अध्यापन का प्रकार। (२) गुरु का सप्रेम शासन। (३) विद्युत्वत् जिह्वा का स्वरूप। (४-५) विद्युत् का रथयान में प्रयोग। तद्वत् देह में आत्माग्नि का संयोग। (७) देह का अद्भुत यन्त्र। (८) अन्तरिक्ष रचनावत् देह-रचना का चमत्कार। (९) त्रिगुणात्मक देह की रचना। उसमें यज्ञ। (१०) क्षेत्रसेचक कूप-टंकी यन्त्र से देह की रचना का आश्चर्यकारी वर्णन। इसी प्रकार राजतन्त्र का वर्णन। मेघ के तुल्य राजतन्त्र के कर्त्तव्य। (१२) प्रजा का योग्य पालक का आश्रय ग्रहण। (१३) अभिषेक योग्य व्यक्ति के लक्षण। (१४) प्रजाओं के परस्पर योग्य व्यवहार। (१५) देह के तुल्य राष्ट्र की स्थिति। देह में वीर्यवत् राजा की स्थिति। वायुवत् स्वामी का कर्त्तव्य। (१८) अग्निवत् नायक विद्वान् का कर्त्तव्य। (पृ० ५७९–५८४)

सू० [७३]—विद्वान् जितेन्द्रिय सत्पुरुषों के कर्त्तव्य। स्त्री-पुरुषों को उत्तम उपदेश। (पृ० ५८४–५८९)

सू० [७४]—विद्वान् का आदर करने का उपदेश। उत्तम विद्वान् के लक्षण, उसकी उपासना। पक्षान्तर में परमेश्वर की उपासना का उपदेश। परमेश्वर का स्वरूप, उससे नाना प्रार्थनाएं। (१३-१५) उत्तम राजा की दान स्तुति। राजा का कर्त्तव्य। ज्ञानसेवियों का पालन। राजा की बलवती सेना 'परुष्णी' का वर्णन। (पृ० ५८९-५९३)

सू० [७५]—रथ में अश्व के तुल्य उत्तम विद्वान् कर्मकर्त्ताओं की नियुक्ति। प्रधान शासक के कर्त्तव्य। ज्ञान बल और धन का त्रिविध पति अग्नि। (५) चक्र धारा के तुल्य राष्ट्रचक्र-नीति को वश करने का उपदेश। (६) प्रभु की स्तुति के लिये नित्य वाणी का प्रयोग।

(७-८) नायक के प्रति अधीन प्रजाओं का कर्त्तव्य। (९) बुरे लोगों का पापसंग हमें पीड़ित न करे। (१०) राजा को शत्रुपीड़न का उपदेश। (११) उससे धन-सम्पदा की प्रार्थना। (१२) संकट में भी राजा प्रजा का साथ न छोड़े। (१३) सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ५९३-५९७)

सू० [७६]—उत्तम सेना नायक के कर्त्तव्य। उसकी सूर्य से तुलना। (४) विजयी स्तुत्य सेनापति। पक्षान्तर में परमेश्वर का निर्देश। महान् शासक के गुण। (६) प्रभु की प्रार्थना। (७) नाना वीरों के नायक का राष्ट्र-पालन का कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा मरुत्वान् का वर्णन। (८) विद्वानों, बलवानों का आदर। पराक्रमी के कर्त्तव्य। (१०) तृप्त राजा। (११) शास्य-शासक दोनों बलवान् होते हैं। (१२) अष्टापदी वाणी का वर्णन। (पृ०५९८-६०१)

सू० [७७]—राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) चन्द्र सूर्य-वत् राजा के व्यवहार का वर्णन (५) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (६) मेघ-छेदन-भेदन वत् शत्रु पर भेद नीति का कार्य। (७) राजा का सहायक शस्त्रबल। (८) प्रजा के सुख के प्रति राजा का ध्यानाकर्षण। वायु-मेघ के व्यवहारों के समान राजा और राजपुरुषों के कर्त्तव्य। (११) शस्त्रबल। (९) राजा वा प्रभु के अनेक बल, उनकी श्लिष्ट तुलना कैसे हो। (पृ० ६०१-६०६)

सू० [७८]—ऐश्वर्यवान् प्रभु और स्वामी के कर्त्तव्य। उनसे भोजन, वस्त्र, आभूषणादि की प्रार्थना। राजा, विद्वान् तत्वदर्शी का वर्णन। इन्द्र-पद। (६) उसका अविनाशी पद। (७) सर्वैश्वर्य स्वामी प्रभु। (९) प्रभु और राजा के लिये प्रजा के प्रति नाना कर्म। (पृ० ६०६-६०९)

सू० [७९]—जगत्कर्त्ता और सञ्चालक प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में शासक राजा के कर्त्तव्य। उनके अद्भुत कर्म। (३) विशाल

गृह के तुल्य राजा की स्थिरता । उत्तम सञ्चालक । (५) दानार्थियों का एक मात्र शरण । विद्यार्थियों का शरण गुरु । (६) विद्यादान पुनर्जीवन है । (७) दयाशील शासक का रूप । (८) राजा वा शासक सत् प्रजा को भय का कारण न हो । प्रजा को उद्विग्न न करे और हृदय को पीड़ित न करे । (९) दुष्टों को दूर करे । (पृ० ६०९-६१२)

सू० [८०]—राजावत्दयालु प्रभु का वर्णन । उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य । (५-६) राजावत् प्रभु से प्रार्थनाएं । (७) राजा वा प्रभु की दुर्ग से तुलना । (९) प्रभु का तुरीय पद । सर्वानन्दप्रद उपास्य प्रभु । (पृ० ६१२-६१४)

सू० [८१]—प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं । प्रभु । (२) सर्वैश्वर्यवान् । (३) बेरोक दानशील उद्यमार्थ प्रेरक प्रभु । (७) स्नेही प्रभु । सर्व मनोरथ-पूरक प्रभु । (पृ० ६१४-६१६)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८२]—धनसम्पन्न व्यापारी वर्ग के कर्त्तव्य । (२) राजा की राष्ट्र-पालनार्थ शासकों की नियुक्ति । (३) अन्न सर्वोत्तम भोजन । (४) अशत्रु राजा । (५-९) अन्नादिवत् ऐश्वर्यादिक । ऐश्वर्य आदि का पात्र राजा । उसके अधिकार और कर्त्तव्य । (पृ० ६१७-६१९)

सू० [८३]—विद्वान् तेजस्वी, व्यवहारकुशल विद्वान् जनों के कर्त्तव्य । (पृ० ६१९-६२२)

सू० [८४]—अग्रगी नायक के गुण और कर्त्तव्य । (२) नायक की दीपक वा अग्निवत् दो प्रकार की स्थिति । (६) नायक वा प्रभु के प्रति अधीनों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२२-६२४)

सू० [८५]—विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२४-६२६)

सू० [८६]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२६-६२८)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [९९]—राजा प्रजा के व्यवहारों के साथ परमेश्वर के गुणों का वर्णन। (पृ० ६८३–६८६)

सू० [१००]—जीवों के कर्मफल-भोगार्थ परमेश्वर की शरणं प्राप्ति। (४) परमेश्वर का साक्षात् स्वरूप वर्णन। (६) परमेश्वर का ज्ञानी जनों के प्रति अनुग्रह। भक्तों के प्रति उपदेश। (७) जीवों को प्रभु ने स्वतन्त्र क्यों किया। (८) ज्ञानी को आयसी नगरीवत् देह-बन्धनों से मुक्ति। (९-१०) प्रभु वाणी का वर्णन। (पृ० ६८६-६९१)

सू० [१०१]—(१) शमसाधना। (२) दो नायकोंवत् मेघ और वायु। राष्ट्र के न्याय और सैन्य-विभाग के अध्यक्षों का वर्णन। प्रजा की राजा से विशेष याचनाएं। (६) शासकों के कर्त्तव्य। (७) विद्याभिलाषी जनों के कर्त्तव्य। (११-१४) महान् प्रभु का वर्णन। (१४-१६) गौ, वाणी और भूमि की महिमा का वर्णन। (पृ० ६९१-६९७)

सू० [१०२]—गृहस्वामी के कर्त्तव्य। अग्नि आचार्य का वर्णन। अग्नि परमेश्वर का वर्णन। उसकी स्तुति, सर्वरक्षक, सर्वकर्त्ता शिल्पी के तुल्य प्रभु। सर्वप्रकाशक, परम सुखदायक प्रभु की स्तुति, भक्ति और उपासना। (पृ० ६९७-७०४)

सू० [१०३]—परम गुरु की उपासना। सूर्य, पृथ्वी और परमेश्वर-प्रकृति के कार्यों का वर्णन। (३) कृषि-फलवत् प्राप्ति। (४) भक्तों पर प्रभु की कृपा। (११) सर्वशासक प्रभु का वर्णन। वही सर्वोपास्य। (पृ० ७०४-७०८)

इत्यष्टमं मण्डलम्

तृतीय संस्करण :—चैत्र

२०३७ वैक्रमाब्दे

॥ ओ३म् ॥

ऋग्वेद-विषय-सूची

षष्ठेऽष्टके सप्तमेऽध्याये षोडशो वर्गः ।

नवमे मण्डले प्रथमसूक्तादारभ्य

सू० [१]—यहां से पावमान सौम्य नवम मण्डल प्रारम्भ होता है। सोम पवमान का वर्णन। बालक के समान विद्या के गर्भ से विद्या-निष्णात उत्पन्न शिष्य का वर्णन। सोम और इन्द्र के अनेक सम्बन्ध। सोम—जीव, नव ब्रह्मचारी, वर, उत्तम सुख, राजा, आदि का वर्णन। (२) सभापति सोम। पक्षान्तर में सोम ओषधि के गुण। सोम के कर्त्तव्य। उसके अनेक रूप। (६) सोम—विद्यार्थी, सूर्यदुहिता विद्या। (७) सोम सेनापति, स्वसा सेना। अध्यात्म में, दश योषा दश इन्द्रियें। (८) ऐश्वर्य-भाजन सोम गो-वत्सवत् गुरु शिष्य का वर्णन और। राजा प्रजाओं के कर्त्तव्य। शूर इन्द्र के कर्त्तव्य॥ (पृ० १—५)

सू० [२]—सोम पवमान। गुरु-शुश्रूषु ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में राजा वा अध्यक्ष शासकों के कर्त्तव्यों का वर्णन। ओषधिवत् मधुर, प्रिय होने का उपदेश। (४) नदी और समुद्रों के तुल्य विद्या-वाणियों से शासक वा विद्वान् की शोभा। (५) समुद्रवत् अध्यक्ष का वर्णन। (६) न्याय शासक के कर्त्तव्य। (८-१०) ऐश्वर्यवान् प्रभु से प्रार्थनाएं, स्तुतिएं। (पृ०५—८)

सू० [३]—साम पवमान। विजिगीषु राजा सोम। उसके कर्त्तव्य। उसका अभिषेक। (५) उसका कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य। (६) अभिषेक होने का अन्य अभिप्राय। सोम-सवन विधि से राज्याभिषेक के कर्त्तव्यों की सूचना। (७) राजा का प्रयाण, विजय और अभिषेक प्राप्ति। (१०) शासन का पवित्र कार्य। दण्डधारा और खड्गधारा दोनों का समान सदुपयोग। पक्षान्तर में राजहंसवत् पक्षी के तुल्य आत्मगति का वर्णन। इस पक्ष में सुपर्ण-आत्मा, द्रोण जलकुण्ड, उसकी विद्या से शुद्धि, उसका संन्यास-मार्ग। और आत्मा का लिङ्गशरीर में विचरण और मुक्तिमार्ग का अनुधावन। (पृ० ८–१२)

सू० [४]—पवमान सोम। राजा से जैसे वैसे प्रभु से प्रजा की प्रार्थना। (२) राजा वा शासक के कर्त्तव्य, प्रजा के बल की वृद्धि, ज्ञानवृद्धि और दुष्ट दमन। (४) ईश्वरप्राप्ति, राज्यपद, प्राप्ति के लिये अभिषेक, (६) उससे उत्तम प्रार्थनाएं। दीर्घजीवन, ज्योति-दर्शन की प्रार्थना। (७) राजा को ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश। (९) प्रजाओं का राजा को बढ़ाने का उपदेश। (पृ० १२–१५)

सू०[५]—पवमानसोम। प्रजा प्रिय उत्तम राजा के कर्त्तव्य। विद्वान् राजा और परमेश्वर वा प्रभुपरक योजना। बलीवर्द और अग्नि के दृष्टान्त से राजा के अनेक कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) प्रजानुरंजक राजा। (४) कुशाओं के तुल्य शत्रु के उच्छेदन का कार्य। (४) द्वारों के तुल्य सेनाओं के कर्त्तव्य। (६) रात्रिदिनवत् स्त्री पुरुषों के प्रति सूर्यवत् अभिषिक्त राजा के कर्त्तव्य। (७) राजा का वैश्य वर्ग को अपनाना (८) भारती, सरस्वती, इडा इन तीन देवियों का वर्णन। ये प्रजा के तीन वर्ग हैं। (९) सूर्य के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। इन्दु, इन्द्र, हरि, पवमान, प्रजापति आदि इन नामों का स्पष्टीकरण। परमेश्वर के प्रति इन विशेषणों की योजना। (१०) हरे वृक्ष के

राजा के कर्त्तव्य। (४) समुद्रवत् राजा के कर्त्तव्य। (५) राजा को आवश्यक नियुक्ति, उसका महान् कार्य। (६) सात प्राणों में आत्मा के तुल्य प्रकृतियों में राजा की स्थिति। (७) युद्धादि में राजा का प्रजा-रक्षण का कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा का वर्णन। (८) राजा का प्रजाशिक्षण का कर्त्तव्य। (९) राजा दानशील हो। (पृ० २८—३१)

सू० [१०] पवमान सोम। स्नातकों और नवाभिषिक्त शासकों को उपदेश। (२) शिल्पियों के हाथों में रथों के समान श्रमियों के आश्रय शासकों की स्थिति। (३) नवाभिषिक्तों के कर्त्तव्य। (४) विद्वान् उपदेशकों का सर्वत्र विचरण। (५) सूर्यवत् राजा की स्थिति, किरणों के तुल्य उसके अधीन शासक प्रजा रक्षक आदि। राजा की विभूति। (६) विद्वानों का कर्त्तव्य। प्रभु वाणी के ज्ञान का प्रसार। (७) विद्वत्-संघ बनाने का उपदेश। (८) नयनों के आश्रय रूप सूर्य के तुल्य अध्यक्ष की स्थिति। (९) ज्ञानी की दीर्घदर्शिता। (पृ० ३१—३४)

सू० [११]—पवमान सोम। तेजस्वी पुरुष की गुण स्तुति। (२) विद्वानों का राजशक्ति से सहयोग। उसका उत्तम फल। (३) राजा वा प्रभु से सर्वपदार्थों से शक्ति प्राप्ति की कामना। (४) विद्वान की वाणी का आदर। (५) योग्य पुरुष का अभिषेक (६) सोमाभिषव और सोम-सवन, तथा उत्तम अध्यक्ष का आश्रय ग्रहण। (७) अध्यक्ष का कर्त्तव्य, दुष्ट-दमन कर प्रजा में शान्ति-स्थापन। (८) प्रजा पालनार्थ अध्यक्ष का स्थापन। (९) अध्यक्ष प्रजा को उत्तम ऐश्वर्य और दृढ़ सहयोग दे। (पृ० ३४—३७)

सू० [१२]—पवमान सोम। आचार्य-कुल में विद्या निष्णात शिष्य और न्याय शासन में अध्यक्ष सोम-पुरुषों का स्थापन। (२) माता और वत्सवत् शिष्य जनों का गुरु जनों से सम्बन्ध। (३) विद्वान् शिष्य के तुल्य नवाध्यक्ष का नवाभिषेक। उसी के सदृश उसकी प्रतिष्ठा। (५)

अभिषेक के साथ ऐश्वर्य प्राप्ति। (६) समुद्र और मेघ के तुल्य शास्य-शासकों के कर्त्तव्य, प्रजा के बल, ज्ञान की उन्नति। (८) विद्यार्थीवत् अभिषिक्त पदाधिकारी को आगे बढ़ने का उपदेश। (९) वह ऐश्वर्य को धारण करे। (पृ० ३७–४०)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [१३] पवमान सोम। विद्यास्नातक का वर्णन। (२) विद्वान् का अध्यक्ष पद पर स्थापन। (३) विद्वानों का पवित्र कर्त्तव्य सर्व-साधारण को उपदेश करना। (४) राजा से फल प्राप्त करने की प्रार्थना। (५) अध्यक्ष प्रजा को सम्पन्न करे। (६) तीव्रवेग अश्वों के समान वीरों, विद्वानों का कर्त्तव्य। (७) माता और बच्चे के दृष्टान्त से अध्यक्षों का प्रजा के प्रति रक्षा का कर्त्तव्य। (८) अध्यक्ष का दुष्टदमन करने का कर्त्तव्य। (पृ० ४०–४३)

सू० [१४]—पवमान सोम। तरङ्गस्थ पुरुष के दृष्टान्त से अध्यक्ष की उन्नत पद प्राप्ति। (२) पांचों जन-संघों से अध्यक्ष का प्रस्ताव समर्थन। (३) उसके अभिषेक में सब की प्रसन्नता। (४) राजा का देश को निष्कण्टक करने का कार्य। (५) सूर्यवत् तेजस्वी का अभिषेक और उसकी शुभ्र कीर्त्ति। (६) उसकी लोकप्रिय प्रकृति। (७) उसके अधीन प्रबल सेना और वीर पुरुष। (८) प्रजा की शासक के प्रति स्वीकृति। (पृ० ४३–४६)

सू० [१५]—पवमान सोम। राजा का आगे उन्नति-पथ में प्रयाण। (२) उसका लोक हितार्थ कार्य। (३) राजा को सत् शिक्षण। यूथपति नर वृष के समान सदा सैन्यबल रखने का उपदेश। (५)

सुसज्जित सेनापति का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (७, ८) वीर का अभिषेक। (पृ० ४६–४८)

सू० [१६]—पवमान सोम। अभिषेक करने का मुख्य प्रयोजन, शत्रुओं के संघर्ष से विजय प्राप्ति। (२) अध्यक्ष का गुण दानशीलता (३) शासक के पवित्र पद के योग्य पुरुष के आवश्यक गुण, सर्वोपरि अजेय होना। (४) उसकी सभा-भवन में सभाध्यक्ष पर स्थिति। (५) राष्ट्रपति का आदर। (६) अध्यक्षपद का ग्रहण और (७) अधीनों पर अनुशासन। (पृ० ४८–५०)

सू० [१७]—पवमान सोम। दुष्ट शत्रुओं के नाशकारी वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। उनके अदम्य तीव्र जलप्रवाहों के तुल्य वेग से आक्रमण और प्रयाण। (३) निष्णात पुरुष की पवित्र पद पर प्राप्ति। (४) अभिषेक योग्य पुरुष के समान देहों में जीव की दशा। (५) देह में आत्मा का शासन। (६) प्रभु की स्तुति। (७) उपासना। (८) ज्ञान की प्रार्थना। (पृ० ५०–५३)

सू० [१८]—पवमान सोम। सोम परमेश्वर का वर्णन। सर्व-धारक, सर्वपालक प्रभु। (३) सर्वरक्षक। (४) सब ऐश्वर्यों का स्वामी। (५) माता पितावत् प्रभु। (६) सर्वोपदेष्टा। (पृ० ५०–५५)

सू० [१९]—पवमान सोम। प्रभु से धनैश्वर्य की याचना। शक्ति वाले जीव और प्रभु। (३) प्रकृति का स्वामी प्रभु, सर्वोपदेष्टा प्रभु। (४) मेघ और भूमि के तुल्य प्रकृति परमेश्वर की जगत-सर्ग में कारणता। (५) जगत्-सर्गकारी प्रभु ने प्रकृति को कैसे गर्भित किया। पक्षान्तर में—गौ, सांड और राज प्रजा के व्यवहार का स्पष्टीकरण। (६,७) शत्रुनाश की प्रार्थना। (पृ० ५५–५८)

सू० [२०)—पवमान सोम। वीर पुरुष को उत्तम पद प्राप्ति।

(२) उसकी दानशीलता। (३) विद्वान् से ज्ञान की याचना। (४) अन्न-धन की प्रार्थना। (५) सन्मार्ग के नेता से उत्तम वाणियों की प्रार्थना। (६) सेनाध्यक्ष का वर्णन (७) अध्यक्ष का पवित्र पद। (पृ० ५८—६०)

सू० [२१]—पवमान सोम। सोम ईश्वर के भक्त जन। उनका योद्धाओं के समान उद्योग। (२) उनके गुण। (३) उनका प्रभु के प्रति विविध प्रस्थान। (४) अश्वों के समान उनकी आगे बढ़ कर ऐश्वर्य प्राप्ति। (५) वीरों से ऐश्वर्य की प्रार्थना। (६) ज्ञान के सञ्चय का आदेश। (७) साधक की ब्रह्मपद प्राप्ति (पृ० ६०–६२)

सू० [२२]—पवमान सोम। वीरों, विद्यार्थियों, विद्वानों का रथों के तुल्य उत्साहपूर्वक आगे बढ़ना। (२) वायुओं के समान उदार होना। (३) विद्वानों का ज्ञानपूर्वक कर्म करना। (४) उनका अनथक जीवन-मार्ग में चलना। (५) उनकी उत्तम पद प्राप्ति। (६) जीवों की नाना लोक तथा परम पद तक की गति। (७) सर्वसञ्चालक प्रभु। (पृ० ६२–६४)

सू० [२३]—पवमान सोम। विद्वानों, वीरों के समान जीवों की उत्पत्ति। (२) जीवों की सांसारिक मनुष्यों के समान उच्च नीच पद की प्राप्ति। मनुष्यों का अपने बीच तेजस्वी पुरुष को जन्म देना (३) ऐश्वर्य आदि की प्रार्थना। (४) उपासकों का परमेश्वर की ओर गमन। (५) परमेश्वर का प्रभु पद। व्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर, जगत् का का सञ्चालक। (६) प्रभु के परम रसपान से प्राप्त जीव की बड़ी शक्ति। (पृ० ६४–६६)

सू० [२४]—पवमान सोम। परमेश्वर के भक्त साधकों की उन्नति की ओर गति। (२) जलधाराओं से उनकी उपमा। (३) वीर के समान जीव को उन्नति पथ पर अग्रसर होने का उपदेश। विपथगामी

इन्द्रियों के जय का उपदेश। (४) परमेश्वर प्राप्ति का उपदेश। (६) आनन्दमय परम पावन प्रभु। (७) परमपावन, परम रक्षक प्रभु। सूक्त में एक सोम प्रभु और अनेक सोम जीवों का वर्णन। (पृ० ६६–६९)

सू० [२५]—सोम पवमान। सर्वदुःखहारी 'हरि' प्रभु से प्रार्थना। आत्मा, जीव और आत्मा प्रभु का वर्णन। (२) जीव का देह में आने का कारण। (३) सर्वश्रेष्ठ क्रान्तदर्शी व्यापक आत्मा। (४,६) साधनाओं के पश्चात् उपासक को मोक्षलोक की प्राप्ति। (पृ० ६९–७१)

सू० [२६]—पवमान सोम। परमेश्वर का अति सूक्ष्म बुद्धि से विचार विमर्श करने का उपदेश। (२) प्रभु की स्तुतिकारिणी वेदवाणियां। (३) धारणावती बुद्धि द्वारा भगवान् की प्राप्ति। (५) योग-समाधि द्वारा ज्योतिः स्वरूप प्रभु की प्राप्ति, साक्षात्कार। (६) उसी की उपासना, स्तुति, प्रार्थना आदि। (पृ० ७१–७२)

सू० [२७]—पवमान सोम। स्तुत्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषेक योग्य पुरुष के गुण। (३) उसका कर्त्तव्य। (४) उसका प्रभाव। (५,६) उसकी सूर्य के समान स्थिति। (पृ० ७२–७४)

सू० [२८]—पवमान सोम। मुख्य रक्षक पद के योग्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषेक योग्य के कर्त्तव्य। (३) उसका अभिषेक। (४,५) उसको ऐश्वर्य पद प्राप्ति, तेज और प्रभाव। (६) उसका कर्त्तव्य, दुष्टों का दमन। (पृ० ७४–७६)

सू० [२९] सोम पवमान। आत्मा की देह में राष्ट्र में राजा के समान स्थिति। (३) सातों प्राणों के स्वामी आत्मा की साता प्रकृतियों के स्वामी राजा से तुलना। आत्मा 'सप्ति' का वर्णन। (३) राजा के समान आत्मा के साधनों का वर्णन। (४) आत्मा को लोकजय का उपदेश। (५) निन्दकों से रक्षा की प्रार्थना। (६) ऐश्वर्य शक्ति आदि

की प्रार्थना। पक्षान्तर में—तीव्र रसों से विद्युत्, यांत्रिक बलों को उत्पन्न करने आदि विज्ञान का संकेत। (पृ० ७६–७८)

सू० [३०]—सोम पवमान। बलवान् शासक की राष्ट्र शोधक घोषणा। (२) शासक के कर्त्तव्य। (३) प्रजा के बीच शासन-बल की उत्पत्ति। पक्षान्तर में—जलधारा से यान्त्रिक बल पैदा करने का संकेत। (४) वेगवान् जल के तुल्य शासक के कार्य। (६) बल-वृद्ध्यर्थ बलवान् नेता के अभिषेक का उपदेश। (पृ० ७८–८०)

सू० [३१]—पवमान सोम। देह में प्राणों का कार्य। राष्ट्र में विद्वानों और वीरों का कार्य (२) उत्तम शासकवत् आत्मा के शासन का वर्णन। (४-५) उत्तम विद्वान् का शासन। अध्यात्म शासन की तुलना। (पृ० ८०–८२)

सू० [३२]—पवमान सोम। वीरों और विद्वान् स्नातकों के कर्त्तव्य। (३) हंसवत् विवेकी कर्त्तव्य। हंस परमेश्वर। (४) सिंहवत् ज्ञानेच्छुक का कर्त्तव्य। सिंहवत् धर्माध्यक्ष का कर्त्तव्य। (५) पतिव्रता स्त्रीवत् स्वामी के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य। (६) उत्तम बुद्धि की प्रार्थना। (पृ० ८२–८४)

सू० [३३]—पवमान सोम। जंगल के महिषों वा जलतरंगों के समान, शासकों का कर्त्तव्य। पक्षान्तर में–प्राणों के बीच जीव की स्थिति। (२) विद्वान् शिष्यों के ज्ञान-वितरण की सत्पात्र में दान देने वालों के अन्नादि दान से उपमा। (३) राष्ट्र के कार्य के लिये योग्य विद्वानों का तैयार होना। (४) वाणियों का गौओं वा धनुष की डोरियों के समान उद्गम। (५) माता के तुल्य विद्वानों का उपदेश कार्य। (६) धनार्थी को उपदेश। (पृ ८४–८६)

सू० [३४]—पवमान सोम। वीर आक्रामक नेता के कर्त्तव्य।

सू० [४१]—पवमान सोम। विद्वान् परिव्राजकों के कर्त्तव्य। अज्ञान दूरकर ज्ञान का प्रचार करें। (२) आदरणीय रक्षक। दुष्ट दमन करने का उपदेश। (३) साधक के भीतरी आनाहत नादों के मेघ-गर्जवनत् श्रवण और विद्युत् के तुल्य दीप्तियों की प्रतीति। ईश्वर वा राजा से प्रजा की ऐश्वर्य याचना। (५) पालन करने की प्रार्थना। मेघ के समान वाणी द्वारा प्रभु वा स्वामी का प्रजा को प्राप्त होना। (पृ० ९९–१०४)

सू० [४२]—पवमान सोम। सर्वसंञ्चालक, सर्वोत्पादक प्रभु सर्व· सुखप्रद है। (२) सर्वज्ञानप्रद प्रभु। (३) ऐश्वर्यवान् वीर राजाओं का युद्ध के लिये प्रयाण। (४) पवित्रपद में स्थित का कर्त्तव्य। (६) अभिषिक्त के कर्त्तव्य। (पृ० १०१–१०२)

सू० [४३]—पवमान सोम। प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं। सर्वशासक प्रभु। उससे सुखों और बलों की याचना। (पृ० १०२–१९४)

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥ इति षष्ठोऽष्टकः समाप्तः ॥

सप्तमोऽष्टकः। प्रथमोऽध्यायः ॥

सू० [४४]—पवमान सोम। मुख्य अयास्य प्राण की उपासना। सर्व-शासक की स्तुति। (४)–(६) उसके कर्त्तव्य। (पृ० १०५–१०७)

सू० [४५]—पवमान सोम। परमेश्वर से प्रार्थना। (५) मिलकर ईश्वर स्तुति करने का उपदेश। उससे ज्ञान, बल की याचना। (पृ० १०९–११०)

सू० [४६]—पवमान सोम। कुशल पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वर के प्रति ब्रह्मचारिणी कन्या के तुल्य, ब्रह्मचारियों का गुरु के प्रति उत्सुकता

पूर्वक गमन। (३) तेजस्वी पुरुषों का राजा के बल वृद्धि करने का कर्त्तव्य। वीरों और ब्रह्मचारियों को समान वाक्य से आगे बढ़ने और वीर्य-रक्षा का उपदेश। (५) ऐश्वर्यवान्, धनदाता के कर्त्तव्य। (६) दश प्रकृतियों प्रजाओं का शासक के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० १०९—११०)

सू० (४७)—पवमान सोम। शास्ता का उत्तम कर्म के अनुसार उन्नत पद। उसके कर्म और ऐश्वर्य। (३) उत्कृष्ट बल वीर्य। (४) सर्वपोषक राजा शासक, सेवकों को भृति, वेतन आदि का देने वाला हो। (पृ० १११—११२)

सू० [४८]—पवमान सोम। सूर्य के तुल्य सर्वोपरि शासक से प्रजा का धनों के निमित्त प्रार्थना करना। विजेता शासक से याचना। (२) अध्यात्म में आत्मा की उपासना। (३) सर्वकामपूरक प्रभु। (४) ज्ञानियों को ज्ञानप्रद प्रभु। (५) वह महान् सर्वद्रष्टा सर्वप्रद है। (पृ० ११२—११३)

सू० (४९)—पवमान सोम। सुखवर्षी प्रभु। वाणीदाता प्रभु वा स्वामी। (३) स्वामी से यज्ञ द्वारा वृष्टि और परमेश्वर से वाणी द्वारा ज्ञानप्रकाश की प्रार्थना। (४) जलधारा से अन्न के तुल्य वाणी से ज्ञानप्राप्ति की प्रार्थना। परमेश्वर वत् राजा से राक्षसों के नाश की प्रार्थना। (पृ० ११३—११५)

सू० [५०]—पवमान सोम। विद्वान् और राजा के कर्त्तव्य ज्ञानोपदेश और शस्त्र प्रयोग। (२) परमेश्वर से तीनों प्रकार की वाणियों का प्रादुर्भाव। पक्षान्तर में राजा के अभिषेक में वेदत्रयी का उपयोग। (३) अभिषेक, योग्य पुरुष के गुण। अर्चना योग्य के कर्त्तव्य। उसका राष्ट्र-शोधन का कर्त्तव्य। (पृ० ११५—११७)

सू० [५१]—सोम पवमान। विद्वान् का योग्य व्यक्ति को अभि-

षिक्त करना। तेजस्वी पुरुष का अभिषेक करना चाहिये। (२) क्षमाशील राजा के अन्न जल के आश्रित प्रजाजन। (४) उत्तम राजा और प्रबन्धक के कर्त्तव्य, प्रजापालन और वर्धन। (५) अभिषिक्त होकर उसकी प्रभाव और बलके द्वारा पवित्र पद की प्राप्ति। (पृ० ११७–११८)

सू० [५२]—पवमान सोम। शासक और प्रजाजन के परस्पर कर्त्तव्य। वह बल-शक्ति बढ़ावे। (३) विजेता का राज्याभिषेक। (४) वहुतसों के चुनने पर प्रधान पद की प्राप्ति। (५) उसका कर्त्तव्य शुद्ध व्यवहार का चलाना है। (पृ० ११८–१२०)

सू० [५३]—सोम पवमान। सेनापति के कर्त्तव्य। प्रजा-सम्वृद्ध्यर्थं बलवान् राजा की स्थापना। (पृ० १२०–१२२)

सू० [५४]—पवमान सोम। प्रभु से ज्ञान प्राप्ति। प्रभु सूर्यवत् तेजस्वी, सर्वद्रष्टा, एवं सूर्यवत् सात प्रकृतियों में राजा की स्थिति। (३) सर्वोपरि प्रभाव एवं सर्वोपरि राजा।

सू० [५५]—पवमान सोम। प्रजा के प्रति राजा के सत् कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर से प्रार्थनाएं। राजा के कर्त्तव्य, उत्तम आसन पर स्थिति, प्रजा को नाना सम्पदा का देना और शत्रु-नाश। (पृ० १२२–१२३)

सू० [५६]—अभिषेक्य के कर्त्तव्य। पवमान सोम। (पृ० १२२–१२३)

सू० [५७)—पवमान सोम। मेघवत् शासक के कर्त्तव्य। शत्रु-दमन, सर्वसाक्षी, सब को सन्मार्ग दिखाना आदि अनेक कर्त्तव्य। (पृ० १२५–१२६)

सू० [५८]—पवमान सोम। प्रभु की वाणी द्वारा उपासना। उसके सहस्रों ऐश्वर्य। (पृ० १२६–१२७)

सू० [५९]—उत्तम शासक के कर्त्तव्य। प्रजा के चित्त को स्वच्छ रखे, सब बुरे कार्यों से प्रजा को बचावे, सब को अपने वश करे।

सू [६२]—पवमान सोम। राजा के कर्त्तव्य। राजा को शत्रु नगरों के तोड़ने का उपदेश। पक्षान्तर में नाड़ियों के बन्धन से मुक्त होने का उपदेश (३) अश्ववित् से अश्वों की प्राप्ति। राजा अभिषिक्त होकर प्रजा का मित्र होकर रहे। (५) वह प्रजा को सुख दे। (६) शासक और प्रभु का वर्णन। अति उदार का अभिषेक, उसकी सूर्यवत् स्थिति। उसके अनेक कर्त्तव्य। (१०) राजा के प्रताप का सर्वपालन का महत्व (११) ऐश्वर्य का राज्य में समान विभाग। (१२) इन्द्र पद के योग्य पुरुष। (१३) सब कोई उसकी शरण हों। (१५) प्रजा में ऐश्वर्य के साथ २ शान्ति स्थापन करे। (१६) जगत् उत्पादक के तुल्य राष्ट्र में राजा का तेजस्वी पद। (१७) राजा का दयामय कर्त्तव्य, (१८) उसका सर्वोत्तम तेज। राजा के अनेक कर्त्तव्य। (२३) वीरों के कर्त्तव्य, उनके उत्साह योग्य कार्य। (२५) उसके कण्टक-शोधन का कार्य। उसके कर्त्तव्य, शत्रुनाश, प्रजा की मान-रक्षा। (पृ० १८९–१३८)

सू० [६२]—पवमान सोम–उत्तम पदों पर अभिषिक्त अनेक जन। उनके कर्त्तव्य। (४) बलवान् शासक के कर्त्तव्य। (५) अभिषिक्त का वर्णन। (६) उसको सजाने आदि का प्रयोजन, भय से रक्षा। (७–१०) उसका विद्वानों के प्रति कर्त्तव्य। (११–१४) वह सर्वबन्धु हो। राष्ट्रैश्वर्य की वृद्धि करे। राजा के ईश्वरवत् कर्त्तव्य। (१५) विद्वान् कुलवान् को राजा करें। (१६) राजा के प्रयाण का प्रकार। (१७) राजा का जैत्ररथ। त्रिबन्धुर रथ की अध्यात्म और राजनीति पक्ष में व्याख्या। युद्ध और दुष्ट दमन के लिये बलवान् और ज्ञानी पुरुष का स्थापन। (१९) अभिषेक घट के तुल्य राष्ट्र में अभिषिक्त राजा की शोभा। (२०) राष्ट्र के सब उत्तम जन उसके पोषक हों। (२१) बहुश्रुत

पुरुष का अभिषेक करो। (२२) मुख्य शासक के नीचे अनेक गौण शासक हों। (२३) शासके कर्त्तव्य, ऐश्वर्य वृद्धि। (२४) बलशाली बनने के लिये, योग्य नाना कलाविदों से ज्ञान प्राप्त करे। (२७) अन्य प्रजाओं को ज्ञान धनादि से समृद्ध करे। (२८) प्रभुवत् राजा की विभूति का प्रदर्शन। (२९) वृष्टियों के समान अधीनों के प्रति राजा की आज्ञा-वाणियों का प्राप्त होना। (२९) विद्वान् कैसे वी वान् ऐश्वर्यवान् को इन्द्रपद के लिये अभिषेक करें। राज्यासन पर अभिषिक्त पुरुष प्रजाजन के लाभा ही बल धारण करे। (पृ० १३८–१४८)

सू० [६३]—सोम पवमान। राजा प्रजा को समृद्ध करे। (२) प्रजा को समृद्ध के ही अपना सैन्य बल बढ़ावे। (३) वह बड़ा सैन्य बल का स्वामी होकर राष्ट्र में बराबर विचरे। (४) विद्वानों वा भावी परि-व्राजकों का आश्रमों से आश्रामान्तर में प्रवेश (५) वीरों और विद्वानों का सबको आर्य, श्रेष्ठ बनाते हुए दुष्टों को दण्डित करते हुए, विद्वान शासकों का आगे बढ़ाना। (७) राजा का राष्ट्र शोधन का कर्त्तव्य। (८) राज्यकार्य में आकाशयानों का प्रयोग। प्रजा का सन्मा में चलाना राजा का कार्य। (१०) वीर, शत्रुवारक पुरुष का पदाभिषेक। पक्षान्तर में विद्यार्थी विद्वान् का स्नातक होना (११) राजा प्रजा को इतना अपार समृद्धिशाली बनावे कि शत्रु उसका अन्त ही न कर सके। (१२) उसके ऐश्वर्य में सहस्रों गौएं वा अश्वारोही आदि हों। (१३) मेघ के तुल्य अभिषेचनीय प्रजा की स्थिति (१४) किरणों वा जलों के समान शासकों के कर्त्तव्य। (१५) उनका राष्ट्र-शोधन का पवित्र कार्य। पक्षान्तर में—आचार्य से शिक्षित शिष्यों के कर्त्तव्य। (१६) अभिषिक्त का सूर्यवत् पद। (१७) जलों और ओषधिरसों के तुल्य राजा का अभिषेक, उसके परिशोधन के तुल्य हो। (१८) उसके कर्त्तव्य, समृद्धि प्राप्ति। (१९) संग्राम-कुशल के समान बल, अन्न, ज्ञान आदि में श्रेष्ठ पुरुषों का भी भिन्न २ उत्तम पदों

पर अभिषेक। (२०) परिव्राजकादि के तुल्य अन्य अभिषिक्तों के कर्त्तव्य। (२१) सर्वोत्पादक प्रभु का गुण-स्तवन। (२२) उसके 'वायु' पद की व्याख्या। (२३) विद्वान् ऐश्वर्यवान् का अपार ज्ञान-सागर प्रभु में प्रवेश। (२४) उसको दुष्ट प्रवृत्तियों और नाशक बुरे व्यक्तियों को त्यागने और दूर करने का कर्त्तव्य। (२५) विद्वानों का कर्त्तव्य दया से सबको सत्य ज्ञानों का वितरण करें। (२६) राष्ट्र-शोधक जनों का कर्त्तव्य। (२७) वायु वा जल धाराओं के तुल्य सोम, शासकों की विद्यास्थानों से उत्पत्ति। (२८) विद्वानों का कर्त्तव्य, दुष्टों का नाश। (२९) वीर शासक का कर्त्तव्य। (३०) उसका सर्वैश्वर्य-धारण। (पृ० १४७–१४८)

सू० [६४]—सोम पवमान। राजा के कर्त्तव्य। उसके मेघवत् कर्त्तव्य। (३) रथ के अश्व के तुल्य उसका राष्ट्र-चक्र प्रवर्तन का कर्त्तव्य। (४) प्रमुख पुरुषों को ज्ञान, बल, धन आदि की प्राप्त्यर्थ नियुक्ति। (५) शासकों और दीक्षित वा स्नातक पुरुषों के वेष आदि का श्लिष्ट वर्णन। (६) विद्वानों का गुरुओं को दक्षिणा दान। (७) प्रचारकों का किरणों के तुल्य कर्त्तव्य। (८) विद्वान परिव्राट् का समुद्र के तुल्य अगाध ज्ञानी होने का उपदेश। (९) परिव्राजक को देश देशान्तर भ्रमण का उपदेश। (१०) आत्मावत् शासक जन का कर्त्तव्य। (११) विद्वान् और धर्माध्यक्ष के कर्त्तव्य। उसके किये उपदेश का सत्-फल। अन्यों को सत्-ज्ञान और शिक्षा प्राप्त हो। (१२) अभिषिक्त दयालु पुरुष के पवित्र कर्त्तव्य (१३) वाणी और जल धारा से स्नात को उत्तम पद प्राप्ति। (१४) छाज के समान उसके सत्यासत्य विवेक का कर्त्तव्य। (१५) विवेक से राजत्व पद और प्रभु पद की प्राप्ति। (१६) उत्तम कर्मनिष्ठ पुरुषों का उत्तम गम्भीर पद व प्रभु को प्राप्त होना। ज्ञान वाणियों द्वारा परम-पद प्राप्ति। (२०) ज्ञानी को प्रभु-पद-प्राप्ति के अवसर, में काम क्रोधादि का त्याग। राज्यपद प्राप्ति के काल में मूर्खों के त्याग का उपदेश।

(२१) ज्ञानी और अज्ञानी लोगों की ऊर्ध्वगति और अधःपतन। (२२) मरुत्वान् इन्द्र की प्राप्ति के लिये विद्वान् को आदेश। (२३) विद्वान् उसको ज्ञान-वाणियों से परिष्कृत करें। (२४) विद्वान् के ज्ञान का और राज के वचन का सब श्रवण करें। (२५) शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य, ज्ञानपूर्वक वाणी का प्रयोग करे। (२६) वह सर्व-पालक वाणी का प्रयोग करे। (२७) वह सर्वप्रिय होकर अभिषिक्त हो। (२८) वह शक्ति से ही स्तुत्य हो (२९) उसको सैनिक के समान सदा सज्जन रहने का आदेश। (३०) वानप्रस्थ के अनन्तर संन्यास का आदेश। संन्यासी का सूर्यवत् पद। (पृ० १५७–१६६)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [६५]—पवमान सोम । वरणीय वर। कन्याओं को चन्द्रवत् आल्हादक, ऐश्वर्यवान् पुरुष को वरण करने का उपदेश। (२) विवेकी, योग्य-विद्या स्नातक ऐश्वर्य प्राप्त करे। (३) विद्वान् की सेवा करे, वह संयम से जीवन बितावे। (४) वह मेघवत् वीर्यवान्, सेक्ता, बली, हृष्टपुष्ट पवित्राचार हो। सब उसका आदर करें। (५) शस्त्र आदि से शोभित होकर राजा वा वीर के तुल्य गृहस्थ में प्रवेश करे। स्नान कर, स्वच्छ हो रथ में चढ़ने के तुल्य वह विद्या आदि गुणों से स्नात और सुशोभित होकर गृहस्थ में पैर रखे। (७) वरार्ह पुरुष की राजा के तुल्य स्तुति हो (८) वीर पुरुष की स्तुति। (९) उसकी सर्वप्रियता। (१०) देह में वीर्य के तुल्य बलवान् राष्ट्र में शासक के कर्त्तव्य। वह अपने से बड़े के शासन में रहे। (११) राजा को ऐश्वर्य के लिये प्रेरणा। (१२) वह अपने अधीनों को प्रेरित करे। (१४) प्रजा के प्रतिनिधियों रूप कलशों से राजा का राज्याभिषेक। (१५) बलशाली का प्रधान निर्णायक पद पर अभिषेक और

उसका न्याय-कर्त्तव्य। पक्षान्तर में आत्मा का आनन्द-रस-दोहन और इन्द्रियों का दमन। (१६) सेनापति और राजा का सर्वोपरि प्रयाण योग्य होना। (१७) राजा से गौ आदि ऐश्वर्यों की प्रार्थना। (१८) मनुष्यों के पालनार्थ राजा का अभिषेक, वह प्रजा के बल, धन और तेज को बढ़ावे। (१९) राजा का श्येनपक्षी के समान तेजस्विता का मार्ग। (२०) समस्त प्रजा के सेवक के तुल्य राजा को उत्तम उद्योग से उत्तम २ अधिकार प्राप्ति। (२१) प्रजा की अगली सन्तति की उन्नति के लिये उसको सहस्रों के धन की प्राप्ति का आदेश। (२२) नाना अभिषिक्तों के कर्त्तव्य। वे सब प्रजा के दुःख-निवारणार्थ ही हों। अध्यक्ष शासकों पर भी एक अति विद्वान् जमदग्नि पुरुष की नियुक्ति। (२३) अभिषिक्तों का आकाश में नक्षत्रवत् प्रजाओं में स्थिति। (२७) उसकी स्तुति वा प्रस्ताव और उस का वरण। वरण योग्य पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० १६७–१७५)

सू० [६६]—पवमान सोम। प्रभु परमेश्वर का वर्णन। वह सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामी, मित्रों का मित्र, परम वन्दनीय है। (२) वह सर्वप्रकाशक है। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। (३) सूर्यवत् प्रभु। (४) सब सुखों और शक्तियों का दाता प्रभु। (५) सर्वप्रकाशक प्रभु। (६) सर्वशासक, वाणियों का परम लक्ष्य है। (७) प्रभु, उपासित होकर जीव का सुखदाता आनन्दप्रद है। (८) वेद के सातों छन्द उसकी स्तुति हैं (९) वह प्रभु वेदों से एक मात्र स्तुत्य है। (१०) पक्षान्तर में वेदज्ञ का वर्णन। ईश्वर के सृष्ट लोकों का प्रसार। (११) राष्ट्र में शासक पद पर कोश से पुष्ट राजा की स्थापि। (१२) उपासकों के तुल्य शिष्यों का गुरु-सेवन। (१३) शिष्य के प्रति विद्वानों का कर्त्तव्य। (१४) प्रभु शासक के सख्य की कामना। (१५) उत्तम शासक का महान् शास्तृ-पद। (१६) पराक्रमी को विजयोद्योगी होने का उपदेश। (१७) अति पराक्रमी, अति शूर

अतिदानी प्रभु। (१८) प्रभु को मित्र-भाव के लिये वरण। (१९) उससे रक्षा बलादि की याचना। (२०) पुरोहित का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। उसकी महागृह, महाप्राण से उपमा। (२१) ज्ञानवान् तेजस्वी बल की प्रार्थना। (२२) सर्वद्रष्टा से प्रार्थना। (२३) विशेष अध्यक्ष की उत्तम उद्योग के लिये नियुक्ति। (२४) उसका कर्त्तव्य अज्ञान नाश। (२५) दुष्टों के नाशक तेजस्वी के उत्तम गुणों का स्वतः-प्रकाश। (२६) वही सब गुणों से शोभित होता है। (२७) उसके कर्त्तव्य। उत्तम वीर्य धारण करे, दयालु हो। पक्षान्तर में इन्द्र प्रभु, की परस्पर प्राप्ति। देह के अधिष्ठाता जीव की जीवन-क्रीड़ा, और परमानन्द के लिये प्रभु की पुकार। इसी प्रकार प्रजा का राजा को पुकारना। (३०) प्रभु से जीवन दान की प्रार्थना। (पृ० १७६–१८४)

सू० [६७]—पवमान सोम। उत्तम शासकों का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। सेनापति का वर्णन। (४) उत्तम विद्वान् उपदेष्टा के कर्त्तव्य उनके अनेकानेक कर्त्तव्य। (७) उनका कण्टक-शोधन कार्य। ऐश्वर्य-पद प्राप्ति। (८) वह प्रशास्ता, इन्द्रपद पाकर सर्वोपकारी हो। अभिषेक योग्य के प्रति अन्यों के प्रोत्साहन और उपदेश। (१०) उत्तम पुरुष ही विवाह योग्य वर हो। (११) वही मधुपर्क योग्य होता है। (१२) वैसा ही तेजस्वी पुरुष कन्याओं का पति होने योग्य है। (१३) विद्वान् का कार्य, उत्तम ज्ञान, धन, प्रदान करे। (१४) स्वच्छ पवित्र होकर स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम गृह में प्रवेश करे। (१५) वीर राजा का बल-प्रयोग। उसका श्येनवत् आक्रमण। (१६) उसका अन्नादि ऋद्धि के लिये उद्योग। (१७) अभिषिक्तों का सब की रक्षा के लिये सज्ज रहना। (१८) विद्यार्थी का वीर के सदृश कर्त्तव्य। उत्तम शिक्षा पाकर शासन पद के योग्य होना। राष्ट्र का कण्टक-शोधन करने वाले के कर्त्तव्य। वह किनको दण्ड दे। (२३–२७) तेजस्वी ज्ञानी लोग सबको पवित्र करें। (२८)

शासक और विद्वान् का कर्त्तव्य। (२९) उत्तम अन्न जल, आदि दुग्ध आदि की वृद्धि करना। (३०) अन्यायी की दुर्दशा, और भूमियों का सत्कार। (३१) पावमानी ऋचाओं के अध्ययन का महत्व। (पृ० १८५–१९४)

सू० [६८]—पवमान सोम। दुधार गौओं के समान विद्वानों के कर्त्तव्य। वे ज्ञान धारा को प्रवाहित करें और शुद्ध ज्ञान को धारण करें। (२) ज्ञानवान् अध्यक्षों के कर्त्तव्य। घोषणा और उपदेशों से ज्ञान-आदेश प्रसारित करें। पवित्र शास्ता पद पर रहकर भीतरी बाहरी शत्रुओं का नाश करें। (३) सभापति व प्रजाओं के प्रति शासक का कर्त्तव्य, उनको बढ़ाना। (४) माता पिता की सेवा और अपने शक्तिमान् होने का उपदेश। (५) ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी का विद्या-गर्भ से उत्तम जन्म। (६) स्नातकों का अभिषेक। (७) परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। पक्षान्तर में—राजा का राज्याभिषेक। (८) प्रभु की स्तुति, प्रार्थना। (९) परमेश्वर सर्वव्यापक, उसकी उपासना, पक्षान्तर में राजा के अभिषेक का वर्णन। (पृ० १९४–२००)

सू० [६९]—सोम पवमान। परमेश्वर की उपासना। उसकी मन्त्रों द्वारा स्तुति, उसके द्वारा प्रभु की प्राप्ति। (४) सर्वशासक परमेश्वर। (६) सर्वदुःखहारी प्रभु। (७) सूर्य की रश्मियों के तुल्य जगत् की पालक शक्तियों का महान् कार्य। (७) राजा के अधीन भृत्य शासकों के कर्त्तव्य। (८) ईश्वर से ऐश्वर्य की प्रार्थना। (९) महारथियों के समान स्नातकों के कर्त्तव्य, (१०) सोम शिष्य के कर्त्तव्य। (पृ० २००–२०६)

सू० [७०]—पवमान सोम। विद्यार्थी के लिये वेदविद्या का दोहन पक्षान्तर में परमेश्वर का वेदों का प्रकाशित करना। (२) ब्रह्मचारी के लिये भिक्षावृत्ति, ब्रह्मचर्य पालन, (३–४) विद्योपार्जनार्थ गुरुगृह में वास,

और प्रभु की आराधना। (५) ब्रह्मचारी का राजा के तुल्य नियमबद्ध होकर राजा के दुष्ट दमन के तुल्य अन्तः शत्रुओं का दमन। (६) प्रभु के उपासक परिव्राजक की लोक-सेवा। (७) ब्रह्म-जिज्ञासु पुरुष के कर्त्तव्य। ज्ञानमयी कन्था का धारण। (८) ज्ञानी का आमरण अभिषेक और मधुपर्कादि से आदर। (९) उत्तम विद्वान् से ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। शिष्य की ज्ञान-गर्भ से उत्पत्ति। (पृ० २०६–२११)

सू० [७१]—पवमान सोम। दान दक्षिण आदि की व्यवस्था। उससे उत्तम शासकों की उत्पत्ति। (२) अनुशासक पुरुष वा उपदेशक का कर्त्तव्य। उसका आदरणीय पितृ तुल्य पद। (३) स्नातक का माननीय आदरयोग्य पद। (४) सभापति राजा के तुल्य प्रधान विद्वान् का आदर। (५) प्रधान अध्यक्ष पर दशावरा परिषत् की योजना। सभा के निश्चयानुसार अध्यक्ष के अधिकार। (६) उसको सर्वोपरि आसन ग्रहण की प्रेरणा। (७) राष्ट्र-शासकवत् सर्वेश्वर प्रभु का वर्णन। उसका अनादि शासन। (८) प्रजा द्वारा चुने अध्यक्ष का उत्तम शासन। विद्वान् शास्ता का मधुपर्कादि से सत्कार। (९) राजा वा सेनापति का प्रबल और दयापूर्ण शासन। (पृ० २११–२१६)

सू० [७२]—पवमान सोम। अभिषेक योग्य पुरुष के विशेष गुण उसके कर्त्तव्य। (२) मधुपर्कादि से उसका समुचित आदर और उसके गुण स्तवन और उत्साह प्रदान। उसका लोकमत के अनुसार शासन से शान्ति प्राप्ति। उत्तम शासक के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (५) सेनापति सोम। उसका प्रोत्साहन। (६) गुरु विद्वान् से ज्ञान की प्राप्ति का उपदेश। उसके चरणों में जिज्ञासुओं का आगमन। (७) सोम का स्वरूप, सर्वोपरिशासक बल का रूप। (८) त्यागी तपस्वी साधक का उच्च प्रकाशमय परलोक को प्राप्त करने का उपदेश। (९) राजा और प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (पृ० २१६–२२१)

सू० [७३]—पवमान सोम। जगत्स्रष्टा की स्तुति। प्रभु ने मस्तक के तीन भाग बनाये, वही सत्य की नौका के समान पार करने वाली है। (२) परमेश्वर की स्तुति करने वाले, उसकी महिमा की वृद्धि करते हैं। (३) ज्ञानधारक गुरु का वर्णन। (४) प्रभु के उपासकों का वर्णन। पक्षान्तर में गुरु के अधीन वेदाध्यायी जनों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (५) सूर्य की किरणों के तुल्य विद्यार्थियों के कर्त्तव्य। वे तेजस्वी होकर दुष्टों का नाश करें। (६) विद्वानों और अविद्वानों के भिन्न २ मार्ग। (७) प्रभु का पथ पवित्र वेदज्ञान के अभ्यास से वाणी का पवित्र होना और विद्वानों के सद्गुण। (८) न्याय-शासक का रूप और कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रभु परमेश्वर का न्याय शासन। (९) न्यायी की वाणी पर आश्रित यज्ञ। अजितेन्द्रिय का अधःपतन। (पृ० २२१—२२६)

सू० [७४]—पवमान सोम। प्रभु से शरण की याचना। पक्षान्तर में नव जात शिशु का जन्म और उनके निमित्त माता पिता की गृहादि की कामना। (२) सर्वाश्रय पालक, सर्वव्यापक, सर्वपालक सर्वसुखदाता प्रभु। (३) भूलोक का रक्षक सूर्य और जल का वर्णन। अध्यात्म में प्रभु और आत्मा का वर्णन। कालमय प्रभु का अन्न जगत है। प्रभु ही सब का परममार्ग है। (४) सूर्य द्वारा जलवृष्टि का वैज्ञानिक रहस्य। (६) सूर्य की दिव्य शक्तियां (७) जलवृष्टि का रहस्य। (८) वीर के तुल्य प्रभु परमेश्वर का कृपायुक्त व्यवहार और परम स्तुत्य प्रभु। (९) प्रभु का परमानन्द रस (पृ० २२६—२३१)

सू० [७५]—सोम पवमान। सेनापति के कर्त्तव्य। (२) वेद-वाणी, वक्ता और ज्ञान-रक्षक के कर्त्तव्य। (३) अभिषेचनीय तेजस्वी और विद्यानिष्णात पुरुष का वर्णन। (४) उसकी सर्वप्रियता। (५) उत्तम ज्ञानवान् और अध्यक्ष का वर्णन। (पृ० २३१—२३४)

तृतीयोऽध्यायः



सू० [७६]—सोम पवमान । सर्वोत्पादक प्रभु का वर्णन । (२) महान् शासकवत् परमेश्वर का वर्णन । (३) जगद्-उत्पादक का वर्णन । (४) वही वेद-ज्ञान का प्रकाशक है । (५) वही जीव के समस्त कोशों को बनाता, स्वयं प्रकाशमय, कृपालु और रक्षक है । (पृ० २३४–२३७)

सू० [७७]—पवमान सोम । वज्रवत् बलशाली आत्मा । (२) प्रभु सर्वशासक, सर्वव्यापक, सब जात्रों का सन्मार्ग पर चालक है । (३) ज्ञानी पुरुषों के कर्त्तव्य । (४) प्रभु का अपूर्व शासन । (५) सर्व-कामनाप्रद प्रभु । (पृ० २३७–२४०)

सू० [७८]—पवमान सोम । शासक राजा के कर्त्तव्य । (२) उत्तम शासक शास्त्रोपदेशक के कर्त्तव्य । अभिषेक योग्य राजा का वैभव । (३) शासकवत् प्रभु का वैभव । (४) सर्वजित् शासक और प्रभु । (५) उत्तम शासक के कर्त्तव्य, शत्रु का नाश कर प्रजा को अभय देना । (पृ० २४०–२४२)

सू० [७९]—पवमान सोम । उत्तम विद्वानों का वर्णन । (२) उत्तम वीरों का वर्णन । (३) परमेश्वर की महती शक्तियां । (५) उत्तम सेव्य स्वामी प्रभु । (पृ० २४२–२४७)

सू० [८०]—सोम पवमान । अध्यक्ष वा उत्तम उपदेष्टा का वर्णन । (२) हृदय-व्याप्त ज्ञानप्रद, जीवनदाता प्रभु । (३) उसकी अनेक कृपाएं । सर्व-कामदुघा प्रभु । अभिषेक योग्य के तुल्य प्रभु का वर्णन । (पृ० २४४–२४७)

सू० [८१]—सोम पवमान । प्रभु के आनन्द की तरङ्गें । (२) सर्वधारक, सर्वज्ञ प्रभु । (३) प्रभु से ज्ञान बल की याचना । (४) उससे उत्तम संगी तथा उत्तम जनों के प्राप्ति की याचना । (पृ०२४७–२५०)

सू० [८२]—पवमान सोम। जगत्-शासक और राष्ट्र-शासक का वर्णन। (२) मेघवत् विजेता और प्रभु का वर्णन। (३) शास्य और शासक की स्थिति। (४) जीव को प्रभु का आश्रय लेने का उपदेश। (पृ० २५०–२५३)

सू० [८३]—तपस्या द्वारा प्रभु के पद की प्राप्ति। (२–३) मुक्त परमहंसों का वर्णन। प्रभु के शासन में जीवों की स्थिति। यजमानवत् प्रभु का वर्णन। शत्रुविजय के अनन्तर राज्य की वृद्धि के समान मोक्ष पद की प्राप्ति। (पृ०२५३–२५६)

सू० [८४]—सोम पवमान। विद्वान् असंग, ज्ञानी, सर्वोपकारी, अन्यों को ज्ञान-धन देने वाला हो। (२) सोम परमेश्वर के गुणों का वर्णन। वह सर्वाध्यक्ष, तेजःस्वरूप, सर्वप्रेमी है। (३) सूर्यवत् प्रभु का वर्णन। (४) सर्ववशी प्रभु। सर्वस्तुत्य, सर्वसुखप्रद प्रभु। (पृ०२५६–२५९)

सू० [८५]—पवमान सोम। उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (२) कण्टक-शोधक के कर्त्तव्य। (३) दयालु प्रभु वा परमेश्वर वा शासक का वर्णन। (४) विजयी राजा के गुण। (५) उसके अभिषेक होने की योग्यता। (६) शासक को उत्तरोत्तर वृद्धि का आदेश। (७) प्रजाओं द्वारा राजा की स्तुति, उसी प्रकार प्रभु के प्रति भक्तजनों का जाना। (८) विजयी से प्रजाजन की विजय। पक्षान्तर में मुक्तात्मा के देह-बन्धन में न गिरने का संकेत। (९) सूर्यवत् सभापति का पद। उसके कर्त्तव्य। (१०) विद्वानों को प्रभु की प्राप्ति। (११) वेदवाणियों द्वारा प्रभु की स्तुति। (१२) सर्वोपरि शक्ति प्रभु। उसका सूर्यवत् वर्णन। (पृ० २६९–२६५)

सू० [८६]—सोम पवमान। राजा के वीर सर्दार के तुल्य परमेश्वर और उपासकों का वर्णन। (२) राजा के सैनिकोंवत् उपासकों के कर्त्तव्य। (३) अश्ववत् भक्त विद्वान् का प्रभु की ओर बढ़ना। (४) आत्मोपसना

आत्म-साधना। (५) सर्वव्यापक प्रभु। (६) व्यापक प्रभु की हृदय में परिशोध। (७) यज्ञमय जगच्चक्र का प्रवर्त्तक प्रभु। उसकी हृदय में प्रतीति। (८) व्यापक प्रभु और आत्मा का तुल्य वर्णन। (९) मातृवत् प्रभु का भक्त का बालवत् उपसेवन। (१०) आत्मा का वर्णन। (११) षोडशकल आत्मा हरि का वर्णन। (१२) आत्मा का शूरवत् अभिषेक। (१३) आत्मा की पक्षी के तुल्य संसार-गति का वर्णन। (१४) ज्ञानी आत्मा का स्वतन्त्र लोकों में विचरण। (१५) सुखप्रद स्वामी प्रभु। (१६) आत्मा परमात्मा का परस्पर सख्य-भाव। प्रभु के अधीन नियमबद्ध होकर कामनाओं से प्रेरित आत्मा का षोडशकल देह में प्रवेश। (१७) एकाग्रचित्त होकर परस्पर मिलकर प्रभु की स्तुति का उपदेश। (१८) उत्तम सम्पद्, बल, वीर्य आदि की प्रार्थना। (१९) प्रभु की अद्भुत रचना। देह और उसकी रचना, उसके सूक्ष्म २ परमाणुओं में व्याप्ति। (२०) आत्मा में भी व्यापक परमेश्वर। (२१) उसका कर्म बन्धन-दाहक ज्ञान का प्रकाश करना। (२२) आत्मा की अनेक देहों में गति। सर्वाश्रय प्रभु की शरण का उपदेश। (२३) गुरु से ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष मार्ग में जाने का उपदेश। (२४) सर्वस्तुत्य और शरणयोग्य प्रभु। (२५) वेदाभ्यास। (२६) आत्म-परिशोधन पूर्वक ज्ञान के अभ्यास से ऐश्वर्य पद की प्राप्ति। (२७) प्रजाओं और सेनाओं द्वारा राजा का अभिषेक। पक्षान्तर में वेदवाणियों से प्रभु की स्तुति और शुद्धजनों से प्रभु की प्राप्ति। (२८) जगत् का राजा महान् प्रभु। (२९) वह समुद्रवत् अपार, सर्वज्ञ सर्वेश्वर है। पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन। (३०) सर्वधारक प्रभु। (३१) उपदेष्टा की उत्तम गति। (३२) स्तुतियों का लक्ष्य प्रभु। (३३) विद्वान् का मेघ के सदृश प्रशस्त मार्ग। (३४) अभिषेकयोग्य की ऐश्वर्य-पद प्राप्ति। (३५) ज्ञाननिष्ठ के अभिषेक के तुल्य आत्मा का स्वच्छ होने का वर्णन। (३६) सेनापति को सेनाओं के तुल्य विद्याशास्ता को जिज्ञासु

शिष्यों की प्राप्ति । (३७) ज्ञानी पुरुष का अनेक लोगों और वेदवाणियों से ज्ञान प्राप्त करना । (३८) प्रभु से ऐश्वर्यों और सुखों की याचना । (३९) सर्वोपास्य सर्वप्रद प्रभु । (४०) उपदेष्टा के कर्त्तव्य । गुरु-शिष्य के परस्पर कर्त्तव्य । (४१–४२) आचार्य और प्रभु के शिष्य और जीवों के प्रति दया का वर्त्ताव । शास्य-शासकवत् सम्बन्ध । (४३) उपासकों का योग-साधना द्वारा प्रभु का साक्षात् । (४४) देह से देहान्तर में केंचुली से सर्पवत् जाने वाले आत्मा का ज्ञानोपदेश । (४५) प्रभु और आत्मा का वर्णन । (४६) जगत्-धारक प्रभु । (४७) ईश्वर की महती शक्तियां । (४८) ईश्वर स्तुति, ज्ञान-प्रार्थना ।

सू० [८७]—पवमान सोम । परमेश्वर की उपासना । (२) सर्वाश्रय प्रभु । राजा के समान परमेश्वर की महान् शक्ति । (३) पूज्य विद्वान्, उसका कर्त्तव्य, आत्म ज्ञान । (४) उपासक ज्ञानी का वर्णन । (५) उपासकों के कर्त्तव्य । सवारों की वीरों से तुलना । (६) अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य । (७) अभिषेचित को उपदेश वीर के समान विद्यानिष्णात के कर्त्तव्य । (८) शासक गुरु से मेघगर्जनावत् ज्ञान वाणी का शिष्य को प्राप्त होना । (९) ज्ञान-संञ्चयार्थ गुरुकुलोपसना का उपदेश । (पृ० २८६–२९२)

सू० [८८]—पवमान सोम । शिष्य के प्रति आचार्य के कर्त्तव्य । शुश्रूषु शिष्य का रूप । गुरु के शिष्य रूप भूमि के प्रति कृषक के तुल्य ज्ञान-बीज वपनादि कार्य । (२) रथ के अश्वों के समान शिष्यों को इन्द्रिय दमन का उपदेश । पक्षान्तर में देह में आत्मा का दिग-दर्शन । (३) विद्या-व्रत-स्नातक का विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृह में आवर्त्तन अर्थात् लौटना और उसका गृहाश्रम में प्रवेश । (४) व्रतनिष्ठ विद्वान् का विजयी सेनापति के तुल्य आत्म-विजय । (५) जलों में प्रशान्त अग्नि के तुल्य शिष्य की वनस्थों के बीच ज्ञान-प्राप्ति, और उपदेष्टा होने का आदेश । (६)

मेघस्थ धाराओं के तुल्य विद्वानों का आनमन और उनका प्रभु वा जनों के प्रति गमन। (७) विद्वान वा राजा का अन्यों को बिना पीड़ा दिये आना और विजय करना। (८) राजा के अनेक कर्त्तव्य। (पृ० २९३–२९६)

सू० [८९]—पवमान सोम। विद्वान् विद्या-क्षेत्र में आगे बढ़ें। उसका मातृवत् गुरुगर्भ में वास। (२) राष्ट्रपति के तुल्य देह में आत्मा और जीव का वेदवाणी पर आरोहण और उन्नति और पिता प्रभु का उस पर अनुग्रह। (३) सिंहवत् उद्योगी को प्रजादि सम्पदाओं की प्राप्ति। (४) सिंहवत् उद्योग, अश्ववत् बलवान् की, नायक पद पर नियुक्ति और उसका अभिषेक। (५) उसको अनेक शक्तियों की प्राप्ति। (६) सर्ववशी प्रभु। (७) इन्द्र-पदोचित पुरुष के कर्त्तव्य। (पृ० २९६–२९९)

सू० [९०]—पवमान सोम। साधक पुरुष की ईश्वर प्राप्ति की साधना। (२) सर्व-शक्तिमान् प्रभु, सर्वरक्षक का वर्णन। (३) आत्म साधक के वीर के तुल्य कर्त्तव्य। (४) उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (५) प्रभु के प्रसादन का उपदेश। (६) आत्मपावन का उपदेश। (पृ० २९८–३०२)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [९१]—पवमान सोम। वाग्मी नेता के तुल्य वाक्पति का वर्णन। (२) उपास्य आत्मा का स्वरूप। (३) सर्वज्ञानोपदेष्टा प्रभु। उत्तम उपदेष्टा वेदज्ञ का वर्णन। (४) अग्निवत् तेजस्वी, राष्ट्र-शोधक वीर के कर्त्तव्य। (५) प्रभु से सन्मार्ग की याचना। (६) प्रभु से ज्ञान प्रकाश की प्रार्थना। (पृ० ३०२–३०५)

सू० [९२] पवमान सोम। प्रभु की उपासना। उत्तम सेनापति के

कर्त्तव्य। अध्यात्म में इन्द्रियाध्यक्ष आत्मा का वर्णन। (३) हृदय में परम-देव की प्राप्ति। (४) प्रभु के अंगभूत ३३ देव, उसकी ज्ञानप्रद सात छन्दो-वाणियां। (५) प्रभु का परम पावन रूप। (६) सिंहवत् पराक्रमी शासक का अभिषेक। (पृ० ३०५–३०८)

सू० [९३]—पवमान सोम। अभिषेक-प्राप्त राजा के तुल्य देह में आत्मा की स्थिति। (२) बालकवत् देह में आत्मा का शक्ति-संचय। (३) गो-वत्सवत् देही का ज्ञानवान् और पुष्ट होना। आत्मा का इन्द्रियों पर प्रभुत्व। उपास्य से ऐश्वर्य आदि की कामना। (पृ० ३०८–३११)

सू० [९४]—पवमान सोम। आभूषणों के समान आत्मा में गुण, वाणी, स्तुति आदि की उपमा। सूर्य-रश्मियों के तुल्य उसकी प्रजाएं, और पशु-पालक के तुल्य प्रभु का प्रजावर्धन का कार्य। (२) आनन्दमय प्रभु का दो प्रकार का वर्णन। ज्ञान रूप से, और काम्य रूप से। (३) ज्ञानप्रद प्रभु का राष्ट्रपति के समान शासन। (४) विजेता के समान तेजस्वी की स्थिति। उसके कर्त्तव्य। (५) ईश्वर से अन्न बल, समृद्धि आदि की याचना। (पृ० ३११–३१३)

सू० [९५]—पवमान सोम। वानप्रस्थ में विद्वान् जिज्ञासु के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२) न्यायऋत वाणी को बढ़ाने का विद्वानों का कर्त्तव्य। (३) तरंगों और प्रजाओं के तुल्य गुरु-वाणियों का वर्णन। (४) पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर परमेश्वर में आनन्द लाभ करने का उपदेश। (५) योग्य, विद्यानिष्णात शिष्य का कर्त्तव्य, ज्ञान का सर्वत्र प्रचार करना है। (पृ० ३१४–३१६)

सू० [९६]—पवमान सोम। सेनापति का वर्णन। (२) सेनापति के अश्वों और अधीन पदाधिकारियों का सुभूषित करना। महारथी का वर्णन। (३) उसका रण में प्रयाण। (४) उसका उद्देश्य, प्रजा का

सुख कल्याण। (५) स शासक प्रभु। (६) सर्वोपदेष्टा का वर्णन, वह कैसा है। अध्यात्म में आत्मा और उसके इन्द्रियगण का वर्णन। उसके ब्रह्मा, कवि, श्येन, स्वधिति आदि नाम। इन्द्रियों के देव, कवि, विप्र, मृग, गृध्र, वन आदि नाम। उत्तम शासक उपदेष्टा और आत्मा का वर्णन (८) वीर विजेता के तुल्य आत्मा का वर्णन। (९) देह में आत्मा के तुल्य सर्वशासक प्रभु और राष्ट्रपति राजा का वर्णन। (१०) परमात्मा का मेघ के तुल्य वर्णन, वही वेद-ज्ञान का दाता है। (११) जगत्-शासक प्रभु और राजा से प्रजाओं की प्रार्थना। (१४) विद्वान् और वीर के कर्त्तव्य। (१५) सर्वप्रिय शासक। (१६) राजा शासक के कर्त्तव्य। वीर प्रजा जनों के शासक के प्रति कर्त्तव्य। (१७) उसका अभिषेक और परम पद प्राप्ति। (१८) उपदेष्टा के कर्त्तव्य। सेनापतिवत् आत्मा का वर्णन। (२०) वीर युवा अश्व के तुल्य आत्मा का देहों में संक्रमण। (२१) तेजस्वी के कर्त्तव्य। (२२) अभिषेकयोग्य के कर्त्तव्य। (२३) स्नातक के गृहाश्रम-धारणवत् राजा का राष्ट्र-भार का धारण। (२४) उत्तम शासक, गृहपति और राजा के समान कर्त्तव्य। (पृ० ३१६–३२८)

सू० [९७]—पवमान सोम। तेजस्वी शासक के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। वह धन, बल, और पशु सम्पदा की गृहपात के समान वृद्धि करे। (२) सेनापति के सभापतिवत् कर्त्तव्य। (३) अभिषिक्त के कर्त्तव्य। (४) विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) जीव का राजावत् वर्णन। उसका परमपद की ओर प्रयाण। (६) आत्मा का वीर सेनापतिवत् वर्णन। (७) विद्वान् उपदेष्टा के कर्त्तव्य। (८) परमहंसों की प्रभु-शरण-प्राप्ति, पक्षान्तर में आंगूष्य हंस आत्मा और वृषगण का विवरण। (९) अवर्णनीय महान् प्रभु। (१०) विद्वान् और वीर राजा के कर्त्तव्य। (११) जीव का जिज्ञासु शिष्यवत् वर्णन। (१२) दश अमात्यों पर मुख्य राजा के समान दश प्राण युक्त आत्मा का वर्णन। (१३) राजसभा के स्वामिवत् आत्मा

का वर्णन । (१४) अभिषेक योग्य विद्वान् उपदेष्टा, सत्कारयोग्य शासक का वर्णन । (१५–१९) उसके कर्त्तव्य । (२०) मुमुक्षु जनों का वर्णन । (२१) उत्तम शासक विद्वान् के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । (२९) अग्रणी विद्वान् के कर्त्तव्य । (३६) ऐश्वर्य पदाधिकारी के कर्त्तव्य । (३९) उपास्य प्रभु का वर्णन । (४२) विद्वान् शासक के कर्त्तव्य । (४८) उसके कण्टक-शोधन का कर्त्तव्य । (५०) प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (५३) दयालुता पूर्ण कर्त्तव्य । (५४) दुष्टों का दमन करे । प्रजा को ऐश्वर्य दे । (५६) मेधावी का माता पिता से भी अधिक मान्य पद । (५७) परमानन्द रस वाले प्रभु की उपासना । (पृ० ३१८–३५६)

सू० [९८)—सोम पवमान । तेजस्वी के कर्त्तव्य । (२) अभिषिक्त शासक के कर्त्तव्य । राजा के कवचवत् रक्षण कार्य । (३) उसका राजकीय भव्य वेश । और उच्च आसन । (४) उसके कर्त्तव्य । (६–७) पांचों प्रजाओं से उसका अभिषेक । (९) उसके प्रति जनसभाओं के कर्त्तव्य । (१०) उसके कर्त्तव्य और जिम्मेवारियां । उत्तम अनेक पदाधिकारियों के कर्त्तव्य । (१२) कैसे को पदाभिषिक्त करें । (पृ० ३५६–३६०)

सू० [९९]—पवमान सोम । वीरता और स्तुति का पात्र, शासक । उसका स्तुत्य पद । उसका प्रयाण उसका प्रजाओं द्वारा अभिषेक पक्षान्तर में–प्रभु की उपासना, वरण और स्तुति । (६) अध्यात्म में आत्मा का वर्णन । उपास्य आत्मा वा प्रभु का प्रजाओं में शक्ति-वितरण । देहगत हृदय व आत्मा का वर्णन । (पृ० ३६०–३६३)

सू० [१००]—पवमान सोम । गौवों के बछड़े के प्रति प्रेम के सदृश परमेश्वर के परम प्रेमरस का आस्वादन । (२) प्रभु से प्रार्थनाएं । (४) वाणियों का लक्ष्य प्रभु । (५) विद्वान् का राज्य पद पर अभिषेक ।

उसके प्रजा आदि के प्रति कर्त्तव्य । (७) उसका स्तुत्य पद । (८) सूर्यवत् उसका वर्णन । (९) प्रभु का विश्व-धारण । (पृ० ३६३-३६६)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [१०१]—पवमान सोम । आत्मा की उन्नति के लिये त्याज्य लोभी पुरुष का त्याग और तृष्णालु चित्त का दमन । (२) अभिषिक्त शासक और परिव्राजक का कर्त्तव्य । (३) आत्मा का शासकवत् प्रतिपादन । (४) शासकों के तुल्य विद्वानों का कर्त्तव्य । (५) प्रभु की उपासना का उपदेश । (६) आत्मा और परमात्मा में मित्रता का सम्बन्ध । (७) पूषा प्रभु और पूषा आत्मा । (८) वेदवाणियों और विद्वानों का स्तुत्य और प्राप्य लक्ष्य प्रभु है । (९) उसकी साधना और साक्षात् करने का उपदेश । (१०) परम पावन विद्वानों का वर्णन । (११) उनके कर्त्तव्य । (१२) उनके उत्तम गुण । (१३) आत्मा की साधना के पूर्व लोभादि को विजय करने को उपदेश । (१४) माता पिता वा प्रिय पतिवत् प्रभु । (१५) विश्वाध्यक्ष विश्वधारक प्रभु । (१६) सब वाङ्मय के ऊपर मेघवत् प्रभु । (पृ० ३६६–३७३)

सू० [१०२]—पवमान सोम । जगत् के शासक प्रभु की आज्ञा-वाणी वेद । (२) यज्ञमय प्रभु का रम्य रूप । (३–४) विद्वान् प्रभु की स्तुति उपदेशादि करे । प्रभु के अधीन सब जीव प्रेम से रहें तो उत्तम है । (६) सर्वोपास्य प्रभु । (७) महायज्ञ के निर्माता अनादि तत्व आत्मा और प्रकृति । (८) प्रभु से शुद्ध निष्पाप होने की प्रार्थना । (पृ०३७३-३७५)

सू० [१०३]—पवमान सोम । सेवकवत् नियमपूर्वक देव-उपासना करने का उपदेश । (२) व्यापक प्रभु । (३) स्तुत्य अन्तर्यामी प्रभु । (४) सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वनेता, सर्वदुःखहारी है । (५) अविनाशी, विद्वान्, अमृत प्रभु । (६) परम पावन व्यापक प्रभु । (पृ० ३७५–३७७)

सू० [१०४]—सोम पवमान । सबको मिलकर उपासना करने का

उपदेश। (२) वाणियों से व्यापक प्रभु की उपासना करो। (३) उपासना और ज्ञान का फल बल, ज्ञान, तेज, और शान्ति सुख प्राप्ति है। (४) प्रभु से वेदवाणियों द्वारा अपनी अभिलाषाएं प्रकट करना। (५) मार्गदर्शी ज्ञानी प्रभु है। (६) छली, वंचक को दूर करने की प्रार्थना। (पृ० ३७७-३७९)

सू० [१०५]—पवमान सोम। व्यापक प्रभु की स्तुति। यज्ञों द्वारा उपासना। वाणियों से ज्ञान द्वारा प्रभु का साक्षात्कार। (३) उपासित प्रभु सुख देता है। (४) बल देता है, पक्षान्तर में शुद्ध राजा की स्थापित। (५) सर्वमित्र दानशील दयालु प्रभु। (६) दुष्टों से बचने की प्रार्थना। (पृ० ३८०-३८२)

सू० [१०६]—पवमान सोम। देह में वीर्यों के तुल्य राष्ट्र में सर्वसुख साधक विद्वानों की प्रभु की उपासना। (२) यथार्थ ज्ञान के लिये प्रभु की उपासना। (३) आश्रय योग्य प्रभु। (४) प्रभु सर्वद्रष्टा, सर्वसुख दाता। (५) सर्वलोक नियन्ता, सब की एक मात्र गति सर्वद्रष्टा उससे सुखों की याचना। (६) उसकी उपासना। (९) बन्धन-मोचन के लिये प्रभु की उपासना। (१०) गुरुवत् प्रभु की उपासना। (११) उसका स्तुति। (१२) हृदय में प्रभु का आविर्भाव। (१४) साक्षात् प्रभु प्राप्ति। (पृ० ३८२-३८६)

सू० [१०७]—पवमान सोम। अभिषेक-योग्य पुरुष का वर्णन। (२) अभिषिक्त राजा के कर्त्तव्य। उसकी उत्तम गुण-स्तुति। (३) अध्यक्ष के गुण और कर्त्तव्य। (५) उसका उत्तम पद प्राप्त करते हुए सुपरिक्षित होना। (६) वह अनालसी होकर उच्च पद पावे। (७) सर्वशास्ता प्रभु। वा गुरुओं का गुरु कवि है। (८) पक्षान्तर में अभिषिक्त राजा से तुलना। (९) समुद्रवत् रस-सागर प्रभु। (१०) साधक विद्वान् को मोक्ष मार्ग का उपदेश। (११) स्तुत्य आत्मा। (१२) सर्व-प्रेरक पूर्ण प्रभु। (१३) रथ के तुल्य रसवान् प्रिय आत्मा। (१४) रस-

सागर प्रभु की ओर विद्वानों का मार्ग। (१५) दिनरात्रिवत् जगत् की उत्पत्ति-प्रलय करने वाला प्रभु। (१६) व्यवस्थापक प्रभु। (१७) मेघवत् आनन्दवर्षी प्रभु। (१८) विद्वान् परिव्राजक के कर्त्तव्य उसकी दीक्षा, पक्षान्तर में राजा के अभिषेक का दिग्दर्शन। (१९) प्रभु से इन्द्रिय रूप शत्रुओं द्वारा गिरने से बचने की प्रार्थना। (२०) प्रिय परमात्मा से मोक्ष की याचना। (२१) ऐश्वर्य याचना। (२) प्रभु का दर्शन। (२३) प्रभु को ज्ञान-प्रदान। (२४) सुखप्रद प्रभु और उसकी ज्ञान-वाणियों से स्तुति। (२५) ज्ञानियों को मोक्ष-लाभ। (२६) आत्मा का गर्भ में प्रवेशवत् आनन्दमय कोश में प्रवेश। (पृ० ३८६–३९७)

सू० [१०८]—सोम पवमान। स्तुत्य आत्मा से सुख की आशंसा। उसका वर्णन। परम पावन से प्रार्थनाएं। (४) अमृतत्वरूप मोक्ष की ओर (५) अमृतत्व की प्राप्ति। (६) आत्मा में स्तुति-प्रेरक प्रभु। (७) सर्वसञ्चालक अव्यक्त प्रभु की उपासना। (८) राजावत् आत्मा की उपासना। (९) प्रभु से आनन्दमय कोष में प्रवेश करने में बाधक मध्यमकोशों के खोलने की प्रार्थना। पक्षान्तर में सेनापति का वर्णन। (१०) सेनापति और परमेश्वर प्रजापति का वर्णन। (११) समस्त ऐश्वर्य के स्वामी से प्रार्थना का उपदेश। (१२) सर्वप्रकाशक पिता प्रभु। (१३) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी प्रभु। सर्वगुरु प्रभु को स्वीकार करना। (१५) उत्तम शासक के कर्त्तव्य। (१६) सागरवत् प्रभु सब का परम लक्ष्य। परमेश्वर सर्वाश्रय स्तम्भ। (पृ० ३९७–४०४)

सू० [१०९]—पवमान सोम। जीव को प्रभु की प्राप्ति का उपदेश। (२) सद्भावना। (३) परम रसरूप प्रभु। (४) सूर्यवत् सुख-रसवर्षी प्रभु। (५) उससे अनेक प्रार्थनाएं, (६–७) विश्वकर्त्ता प्रभु। (८) सर्वसुखपद प्रभु। (९) ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (११) रसप्रद प्रभु (१२) उसका ध्यानाभ्यास। (१४) प्राणायाम साधन। (१५)

प्रभु के परम रस की प्राप्ति। (१६) उसका साक्षात्। (१८) साधक को उपदेश। (१७) साधना का मार्ग। (२०) परम सुखार्थ ज्ञानोपासना। (२१) आत्मा का शोधन। (२२) परमेश्वर प्राप्त्यर्थ तपः-साधना। (पृ० ४०४–४१०)

सू० [११०] सोम पवमान। वनस्थ और संन्यस्त जनों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर, राजा, विद्वान् के कर्त्तव्य। (५) कूप के तुल्य श्रम से प्रभु की प्राप्ति। (६) प्रभु स्तुति। (७) प्रभु के साक्षात् के लिये जितेन्द्रियता की साधना। (८) प्रभु-कृपा से प्रभु की प्राप्ति। (९) सर्वोत्पादक प्रभु सोम। (१०) पावन प्रभु की प्राप्ति, (११) सर्वशासक तेजस्वी दयालु। (१२) दुर्गम-तारक प्रभु। (पृ० ४१०–४१५)

सू० [१११]—पवमान सोम। राष्ट्रशोधक राजा के तुल्य आत्म-शोधक विद्वान् का वर्णन। (२) आत्मा और राजा का बलवान् होना, (३) साधक का वीर के तुल्य उद्योग। (पृ० ४१५–४१७)

सू० [११२]—पवमान सोम। नाना बुद्धियों और नाना कर्म के करने वालों में तरखान विद्वान् और वैद्य के तुल्य ऐश्वर्य के पद की ओर न बढ़ने का उपदेश। (२) वाणकार के समान वाणों, वा शस्त्र-बल से ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश। (३) अनेक उद्योग, व्यवसाय वालों का प्रमुख राजा द्वारा परस्पर संघटन। अध्यात्म में—नाना कर्म करने वाले अंगों का परस्पर ऐक्य। (४) अश्व-गाड़ी मन्त्री-राजा और युवा-युवति के दृष्टान्त से योग्य व्यक्ति को अनुरूप ऐश्वर्य प्राप्त करने का आदेश। (पृ० ४१७–४१९)

सू० [११३]—पवमान सोम। शस्त्रबल पर राजा का राज्य की रक्षा का कर्त्तव्य। (२) वह वेद द्वारा न्यायानुसार शासन करे। (३) सेना और सामन्त आदि उसे पुष्ट करें। (४) वह पुरोहित आदि उत्तम कार्य-

कर्त्ता जनों द्वारा प्रजा को सत्य की शिक्षा करे। (५) प्रभु के ऐश्वर्यों के तुल्य राजा के ऐश्वर्य। और राजा का दुष्टों के नाश का कर्त्तव्य। (६) चाहने योग्य ऐश्वर्यपद। विद्वानों से शासित राज्य हो। (७) अमृत लोक का वर्णन। (८) प्रभु से अमृत होने की प्रार्थना। (९) ज्योतिर्मय लोकों में अमृतत्व प्राप्ति। (१०,११) सुखमय लोकों में अमृतत्व की प्रार्थना। (पृ० ४१६–४२४)

सू० [११४] पवमान सोम। उत्तम गृहपति, उत्तम प्रजावान् का लक्षण। उत्तम शासक, प्रजा-पालक का आदर-पूजा करने का आदेश। (३) सात आदेष्टा, सात सचिवादि साहाय्य से राज्य का देहवत् शासन। (४) राजा का कर्त्तव्य। प्रजा की सब कष्टों से रक्षा। (पृ० ४२४–४२६)।

इति पावमानं सोम्यं नवमं मण्डलम्।

अथ दशमं मण्डलम् (सू० १–४५)

सू [१]—अग्नि। सूर्य के तुल्य तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य, शत्रु विजय। विद्वान् का कर्त्तव्य ज्ञान-प्रसार। (२) अरणियों में अग्नि और माता पिता में बालकवत् स्व-पर सैन्यों और शास्य शासक वर्गों में राजा की स्थिति। (३) सूर्य के तृतीय आकाशवत् ज्ञानी का तृतीय आश्रम का सेवन और ज्ञान-प्रसार। अध्यापन का कर्त्तव्य। (४) काष्ठाग्निवत् राजा का वर्धन। (५) ज्ञानी व बलशाली की ज्ञान बल प्राप्त्यर्थ उपासना। (६) तेजस्वी राजा का अग्निवत् होकर भी सत्संग करना। (७) राजा का पुत्रवत् पालन का कर्त्तव्य। अध्यात्म में अग्नि आत्मा वा प्रभु। (पृ० ४२७–४३०)

सू० [२]—अग्नि । राजा के कर्त्तव्य । उत्तम विद्वान् के कर्त्तव्य । (४) राजा और विद्वान् हमारी अज्ञान द्वारा हुई त्रुटियों को पूर्ण करें । (५) यज्ञ का उपदेश । (६) गुरु के पास विद्वान् होकर अन्यों को ज्ञान दे । (७) विद्वान् स्वयं गृहपति और कुलपति होकर पितृयाण मार्ग से कर्म करे । (पृ० ४३०–४३४)

सू० [३]—अग्नि । प्राभातिक सूर्यवत् विद्वान् होकर उषा के स्वीकारवत् स्त्री से विवाह कर गृहस्थ होने का उपदेश । (२) सूर्य के तुल्य, गुरु-गृह में विद्वान् स्नातक हो पक्षान्तर में राजा-प्रजा का सम्बन्ध । (३) सूर्य उषावत् गृहस्थ के कर्त्तव्यों और राजा प्रजा के कर्तव्यों का वर्णन । (४) प्रकाशयुक्त किरणों के तुल्य वीरों, विद्वानों का वर्णन । (५) सूर्यवत् प्रचण्ड प्रखर राजा का तेज । (६) राजा के किरणों के तुल्य विद्वान् और गर्जनावत् आज्ञा वचनों का वर्णन । (७) गृहस्थ युवा युवति के गृह-तन्त्र के तुल्य राज्यतन्त्र की तुलना । राजा के कर्तव्य । (पृ० ४३४–४३७)

सू० [४]—अग्नि । प्रपावत् रस-सागर प्रभु । (२) शीत-पीड़ित के लिये अग्नि के तुल्य शरणयोग्य प्रभु । (३) पृथिवी के पुत्र के तुल्य पृथ्वी को राजा का पुत्रवत् पालन-पोषण । (४) मूढ़ जन तेजस्वी की महिमा को नहीं जानते । अग्नि के समान विश्पति राजा का जिह्वा से भूमि का भोग । (५) अग्नि के तुल्य राजा की उत्पत्ति । राजा के श्लिष्ट विशेषण । (६) बाहुओं के तुल्य राजा की सेनाओं के कर्तव्य । (७) राजा की वाणी प्रजा की वृद्धि करे और राजा उनके सन्ततियों की रक्षा करे । (पृ० ३३७–४४१)

सू० [५]—अग्नि । राजा और प्रभु का उत्तम वर्णन । (२) प्रतिष्ठितों, विद्वानों के कर्तव्य । (३) बालक को माता के तुल्य प्रजा राजा

का पालन करे। उसका परस्पर व ँन और, प्रभु विषयक ज्ञान साधना। (४) अन्नार्थी कृशकों आदि के तुल्य धनार्थी जनों को सूर्यवत् राजा की अपेक्षा। (५) सात प्राणों सहित आत्मा के तुल्य राष्ट्रपति का वर्णन। (६) ऋषियों की उपदिष्ट, सात मर्यादाएं। उनके उल्लंघन से पाप। मध्यस्तम्भ के समान राजा की स्थिति। (७) उत्तम अध्यक्षवत् प्रभुसर्वाश्रय। (पृ० ४४१–४४६)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [६]—अग्नि आचार्य का वर्णन। उसके अधीन उपनीत शिष्य की प्राप्ति और वृद्धि। (२) प्रकाश से भानुवत् सबको धर्म का शिक्षक गुरु। (३) प्रभु और सेनापति का वर्णन। (४) सर्वश्रेष्ठ स्तुत्य, ज्ञानी पुरुष। (५) बहुश्रुत तेजस्वी पुरुष की सत्कार सहित संगतिका उपदेश। सभ्यता शिष्टता आदि का उपदेश। (६) ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष के कर्तव्य। वह सबका रक्षक हो। (७) तेजस्वी ज्ञानी का अन्यों सब से बढ़ना, सत्संग से ज्ञान प्राप्ति। (पृ० ४४७–४५०)

सू०० [७]—अग्नि। प्रभु से कल्याण और रक्षा की प्रार्थना। (२) स्तुत्य और मनोगम्य प्रभु। (३) प्रभु, पिता, बन्धु, भाई, मित्र है। वही सर्वोपास्य है। (४) समृद्धि की प्रार्थना, परमेश्वर के अनुग्रह की विभूति। (५) यज्ञाग्निवत् प्रभु की स्तुति। उसी प्रकार मथे अग्नि के समान ही राजा का प्रदुर्भाव। (६) प्रभु का आत्मयज्ञ। (७) प्रभु से बल, आयु, जीवन आदि की याचना। (पृ० ४५०–४५३)

सू० [८]—अग्नि। महान् प्रभु का वर्णन, पक्षान्तर में राजा के कर्तव्य। (२) महान् और देह गत आत्मा का समान वर्णन, (३) विराट्, सर्वोपरि महान् प्रभु का वर्णन। (४) लोकधारक प्रभु। पक्षान्तर में

देह के प्रभु आत्मा और गृह्य अग्नि का वर्णन। (५) नेत्रवत् प्रकाशक प्रभु। वह नौकावत् तारक, सर्वश्रेष्ठ है। वह ज्ञानदाता है। (६) विराट् विश्व-यज्ञ का चालक व्यापक प्रभु सबका शिरोवत् है। वही जगत् को भी प्रलयकाल में लीलता है। (७) इन्द्र परमेश्वर की व्यवस्था में रह कर जीवों का देह-बन्धनों में आना। (८) इन्द्र परमेश्वर की देह में अद्भुत रचना। शीर्षगत तीन प्रकार के प्राण-च्छिद्रों का निर्माण। (पृ० ४५३–५२९)

सू० [९]—आपः। आप्त जनों के कर्त्तव्य। जलों से उनकी तुलना। जलों का रोगों को, और आप्तों का दुर्भावों और पापों को दूर करने का कर्तव्य। (पृ० ४५८–४६०)

सू० [१०]—यम, यमी। स्त्री पुरुषों का यम, यमी रूप। उनका सख्य भाव। सन्तान उत्पत्ति के प्रति उनका कर्तव्य। पुत्रोत्पादन का प्रयोजन। वैवस्वत यमयमी का रहस्य। (२) पुत्रों के कर्तव्य। (३) पुत्रार्थिनी स्त्री की अभिलाषा। पाणिग्रहीता पुरुष से ही सन्तान हो। (४) निः-सन्तान स्त्री पुरुषों के पुत्र न होने में कारण पर विचार। (५) असमर्थ पुरुष से समर्थ स्त्री की सन्तान प्राप्ति का आग्रह। (६) पुरुष का अज्ञानवश हुई भूल को अपनी असमर्थता बतलाना। (७) रथ-चक्र के जोड़े की तरह पत्नी का स्वपुरुष से ही सन्तान प्राप्ति कर गृहस्थ चलाने का संकल्प। (८) पुरुष का स्त्री को अन्य पुरुष से सन्तान उत्पन्न करने का 'नियोग' अर्थात् आदेश देना। (९) पुत्रार्थिनी स्त्री की स्वपुरुष से ही सन्तान प्राप्ति की प्रबल इच्छा। (१०) भावी सन्तानों को लक्ष्य कर अन्य पुरुष से क्षेत्रज पुत्र प्राप्त करने का पुनः आदेश। (११) पुत्रार्थिनी के आग्रह का कारण। (१२) असमर्थ पुरुष की भ्रातृतुल्यता। भगिनी से संग करना पाप। (१३) स्त्री का परीक्षार्थ पुरुष के प्रति आक्षेप-वचन। पुरुष की अन्तिम आज्ञा। परस्पर सन्तानोत्पादन में कारणवश

असमर्थ स्त्री पुरुषों के लिये नियोग-विधान का प्रतिपादन। (पृ० ४६०–४६७)

सू० [११]—अग्नि। सूर्य के समान राजा वा गृहपति के कर्तव्य। (२) विद्युत् के तुल्य विदुषी स्त्री की अभिलाषा। उत्तम गृहपति के कर्तव्य। (३) स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। पक्षान्तर में प्रजा-राजा का उत्तम सम्बन्ध। (४) उत्तम प्रजाओं द्वारा उत्तम पुरुष का नायकवत् वरण। (५) शासक को ऐश्वर्य के तुल्य प्रजाप्रिय होने का उपदेश। (६) उषा-सूर्य के दृष्टान्त से शासक के कर्त्तव्य। राजा के अधीन सेनापति का राष्ट्र-धारण सामर्थ्य। (८) राजा सेनापति और सभापति के कर्तव्य। वे परस्पर अपमान तिरस्कार आदि न करते हुए मिलकर राष्ट्र-कार्य करें। पक्षान्तर में—गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों की योजना भी जाननी चाहिये। (पृ० ३६७–४७२)

सू० [१२]—अग्नि। प्रधानपद पर स्थित के कर्तव्य। (२) धूमकेतु अग्नि तुल्य राजा के कर्तव्य। (३) पृथिवी के तुल्य राजा के उदार कर्तव्य। (४) माता पिता गुरु आदि से प्रार्थना। उनका कर्त्तव्य। (५) शासक के कर्तव्य, उसका वेदवत् सत्य व्यवहारवान् सत्यवक्ता होने का आदेश। (६) अविज्ञेय परम रहस्य। उसके ज्ञान का आदेश। (७) सूर्यवत् सर्वशासक प्रभु की उपासना। मुक्ति के अविज्ञेय ब्रह्म के ज्ञान की जिज्ञासा। (पृ० ४७२–४७६)

सू० [१३]—हविर्धान। स्त्री पुरुषों को वेद-धर्म का उपदेश। स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (३) योगमार्ग का वर्णन, ज्ञानारम्भ के समान ही ब्रह्मज्ञान का शिक्षा। अमृत-प्राप्ति का मार्ग, (५) राजा के भृत्यों के तुल्य आत्मा के प्राणों का वर्णन। (पृ० ४७६–४७८)

सू० [१४]—यम। नियन्ता राजा का सत्कार योग्य पद। सत्कार योग्य यम, राजा, आचार्य, गुरु, विवाह्य आदि। (२) मार्गदर्शी उत्कृष्ट पुरुष

की नियन्तृ-पद पर स्थापना। उसके कर्त्तव्य। पूर्व पिता पितामहादि के मार्गानुसरण का उपदेश। (३) ज्ञानी मार्गदर्शी पुरुषों को संतृप्त वा प्रसन्न करने का उपदेश। (४–५) राजा का विद्वानों के प्रति कर्तव्य। (६) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का सत्कार उनके अधीन रहने का उपदेश। (७) पितृजन उनके उपदेश किये मार्गों पर आगे बढ़ने का आदेश। (८) सत्संगति और गृहस्थ का उपदेश। पक्षान्तर में—आवागमन पथ में विचरते जीव को उपदेश। (९) राष्ट्र भूमि को उत्तम बनावें। पक्षान्तर में योग साधन का उपदेश। चतुरक्ष शबल दो सारमेयों और पितरों का स्पष्टीकरण। (११) प्रभु से मुक्ति की प्रार्थना। पक्षान्तर में राजा के दो प्रकार के सैन्यों का वर्णन। (१२) यम नाम राजा के दो प्रकार के सैन्यों का वर्णन। अध्यात्म में-प्राण और अपान के बल से दीर्घ-जीवन का उपदेश। (१४) राजा का आदर। (१४) उसके राज्य में निवासियों का कर्त्तव्य। (१५) राजा और ज्ञानदर्शी विद्वानों के प्रति सत्कार। (१६) प्रभु में छः महती शक्तियां। त्रिष्टुप् गायत्री आदि समस्त वेद के छन्दों, मन्त्रों की परमेश्वरपरक संगति होने से उनकी उसमें स्थिति। (पृ० ४७९–४८६)

सू [१५]—पितरः। समस्त मनुष्यों को उन्नति करने का उपदेश। (२) प्रजा-पालक जनों के कर्त्तव्य। (३) ज्ञानियों का आदर, उनसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति। आदर योग्यजन। (४) आदरणीय जनों के उचित आदर का उपदेश। बर्हिषद् पितृगण (५) सौम्य पितृगण उनके कर्त्तव्य। (६) माता, पिता, गुरुओं का ज्ञानोपदेश का कर्त्तव्य। उनका आदरणीय स्थान। (७) प्रजापालक जनों के कर्तव्थ। (८) ज्ञानी सोम्य पितर, उनके कर्त्तव्य। यम, नव गृहस्थ। (९) वेदज्ञ विद्वान् पितर, उनकी सेवा। (१०) विद्वान् पितर उनके शिष्य, देव। (११) अग्निष्वात्त पितरों के कर्तव्य। (१२) अग्नि तेजस्वी राजा। उसका पितरों, प्रजा-पालक अध्यक्षों को देह-पोषणार्थ देने योग्य वेतन, स्वधा का देना। (१३–१४) अग्नि

दग्ध, अग्निदग्ध, पितरों का विवेचन। उनके सत्संग से शक्ति प्राप्त करने का उपदेश। अनेक प्रकार के पूज्य जन। (पृ० ४८७–४९३)

सू० [१६]—अग्नि। विद्यासम्पन्न आचार्य। उसके शिष्य के शिक्षण में क र्व्य। विद्यार्थी का तप और विद्या में परिपाक। स्नातक हाने के अनन्तर पुनः शिष्य का मा बाप के घर में आगमन। (१–३) व्रतचर्या आदि से विना पक्ववीर्य हुए गृहस्थादि आश्रम में प्रवेश का निषेध। (३) स्वस्थ रहने के लिये भिन्न २ इन्द्रियों का युक्त मार्ग में उपयोग। (४) तप द्वारा आत्मा की शुद्धि। सत्संग द्वारा आत्मोन्नति का उपदेश। (५) विद्यार्थी का तपोव्रत के अनन्तर पितृ-गृह में आवर्तन। (६) विषैले कीट, पतङ्गादि के दंशों से निवृत्ति और रोगनाश का उपदेश। (७) उत्तम वस्त्र-धारण और स्वस्थ रहने का उपदेश। (८) गुरु का कर्त्तव्य सन्मार्ग में प्रवर्त्तन। विद्यादि के योग्य पात्र शिष्य का लक्षण। (९) गुरु-शिष्य परम्परा द्वारा पोप, अज्ञान आदि का दूर करना। (१०) दुष्टों को दूर करने का उपदेश। (११) समिधा हाथ में लेकर शिष्य को गुरु के समीप जाना। (१२) गुरुजनों के प्रति अवरों का सेव्य भाव। (१३) तड़नापूर्वक शिष्य को ज्ञान, आचार और सद्-गुणों का आश्रय बनाने का उपदेश। (१४) शान्तिप्रद विद्या का वर्णन। (पृ० ४९३–४९९)

सू० [१७]—सरण्यू। परमेश्वर द्वारा प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति। और पुरुष का स्त्री से सन्तान उत्पत्ति और संसार का व्यवहार तथा माता का महामान्य पद। सूर्य उषा का वर्णन। (२) प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति, आकाश की उत्पत्ति। (३) यास्क के मतानुसार, ज्ञानमयी वाणी का वर्णन। (४) पूषा। पशुपालवत् पालक और प्रभु के कर्मों का वर्णन। (५) सर्वपोषक प्रभु रक्षा और सन्मार्ग की याचना। (६) सर्वफल दाता प्रभु पूषा। (७–९) सरस्वती। ज्ञानमयी वेदवाणीवत् सरस्वती नाम से प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में विदुषी का अंगीकार। उसके कर्त्तव्य। (१०)

आपः । आप्त जनों के कर्त्तव्य । उनसे पाप-मोचन की प्रार्थना । (११) सूर्य और ऋतुओं वा मासों के दृष्टान्त से आत्मा और प्राणों का वर्णन । द्रप्स, नाम मूल भूत सर्वजगद् उत्पादक परम तत्त्व का वर्णन । (१२) प्रभु के दिये सोम रस का स्वरूप । यज्ञपक्ष में सोमाहुति हुए । (१३) सर्वोत्पादक तत्त्व द्रप्स सोम । (१४) शुद्धि करने की प्रार्थना। (पृ० ५०७—५१८)

सू० [१८]—मृत्यु । दीर्घजीवन का उद्देश्य । देवयान और पितृयाण मार्ग । (२) मृत्यपद का लोप । दीर्घ-जीवन का उपदेश । (४) मनुष्य की परम आयु १०० वर्ष । (५) सब दीर्घजीवी हों, अल्प आयु में मृत्यु न हों । (६) जीवन की नसैनी । (७) स्त्रियें पति-वियुक्त न हों। वे सदा मान-आदर पद का पावें । पति के बाद भी स्त्री पुत्रादि के पालन के लिये जीवित रहे । पुत्र न हो तो नियोग से पुत्रोत्पत्ति करले । (८) मृत पुरुष के हाथ से पुत्र को अधिकार प्राप्त हो । उत्तराधिकारी भी पूर्वजों के समान विजयी हों । उत्तराधिकार के चिन्ह राजदण्ड के समान 'धनुष्' है । (१०) भूमि, आदि की प्राप्ति और शत्रुओं से रक्षा । (११) पक्षान्तर में स्त्री आदि के कर्त्तव्य । (१२) भूमि गृह आदि सुख सामग्री की प्राप्ति । (१३) उत्तराधिकारी को उपदेश । (१४) वाण के पीछे लगे पंखों के तुल्य सेनापति के कर्त्तव्य । (पृ० ५०७—५१०)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१९]—अग्नि, सोम, आप, गावः । तेजस्वी और धनवान् अध्यक्षों और उनके अधीन सम्पन्न प्रजाओं के परस्पर कर्त्तव्य । (२) पाल के तुल्य प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य । (३) प्रजाओं के कर्त्तव्य । क्षान्तर में—अध्यात्म में इन्द्रियों की चेष्टा और प्रभु और मुक्त जीवों का वर्त्तमान । (४) जीवों का आवागमन । (५) जीवों के लोक-लोकान्तर में आने जाने पर ईश्वरीय व्यवस्था । (६) उसका गोपालवत् वर्त्तन । जीव का मोक्षादि से भी आना । (७) प्रभु का न्याय और सम व्यवहार ।

(८) प्रभु का उत्तम शासन। अध्यात्म में—इन्द्रिय-दमन का उपदेश। (पृ० ५१४–५१७)

सू० [२०]—अग्नि। प्रभु से सत्पथ की प्रार्थना। (२) उत्तम मातृवत् प्रभु। (३) वृत्तिदाता शासक। (४) सूर्यवत् शासक राजा के कर्त्तव्य। (५) अग्निवत् उत्तम पदस्थ विद्वान् के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में ज्ञानी मुमक्षु का परम पद की ओर गमन। (६) यज्ञ और परम पुरुष की उपासना। उनका फल। (७) जीवनप्रद प्रभु की उपासना। (८) उत्तम पुरुषों का कर्त्तव्य, प्रभु की उपासना में रहना। (९) प्रभु का उत्तम शासन। (१०) उसकी श्रद्धा पूर्वक उपासना। (पृ० ५१८–५२०)

सू० [२१]—अग्नि। प्रभु की उपासना। (२) यज्ञ। महान् प्रभु की स्तुति प्रार्थना। (३) महान् प्रभु और राजा के आधार पर प्रजा के नाना व्यवहार। महान् प्रभु। (४) महान् प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (५) विद्वान् के कर्त्तव्य। योग्य पुरुष के लक्षण। शासक प्रभु का वर्णन। उस की स्तुति। (पृ ५२१–५२५)

सू [२२]—इन्द्र। परमेश्वर का निरूपण। (३) पिता के तुल्य प्रभु। (४) राजा के तुल्य देह में आत्मा की रीति (६) देह-प्राप्ति के सम्बन्ध में जिज्ञासा। (७) उदार प्रभु से ज्ञान, बल आदि की याचना। (८) दुष्टनाश की प्रार्थना। (९) भूमिवत् सर्वपालक-पोषक प्रभु। (१०) प्रेरक प्रभु और शासक। (११) शूरवीर के कर्त्तव्य। (१२) शक्तिशाली से अपने कार्यों का सफलता की प्रार्थना। (१३) उत्तम कर्मों के लक्षण। (१४) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से भूमि के समान प्रजा की समृद्धि की वृद्धि। राजा के प्रजा-वृद्ध्यर्थ कर्त्तव्य। (१५) राजा को प्रजाक्षय न कर उनके पालन का उपदेश। (पृ० ५२२–५३२)

सू० [२३]—इन्द्र। महारथी सेनापति के कर्त्तव्य। (२) राष्ट्रपति के कर्त्तव्य, उसकी प्रजा के नर-नारियों के आधार पर समृद्धि। (३)

राजा को राष्ट्र का चिरकाल के लिये स्वामी होने का उपदेश । (४) मेघ से वृष्टि के तुल्य राजा की प्रजा पर उदार वृष्टि । मेघ के तुल्य उसका वर्त्तन । (५) राजा का परम पौरुष, परुषभाषी दुष्टों का दमन । (६) दाता प्रभु की स्तुति और गोपतिवत् उसकी याद । (७) परम स्नेही सखा प्रभु । (पृ० ५३२–५३६)

सू० [२४]—इन्द्र । प्रजा को पुत्रवत् पालन करने का आदेश । (२) महान् प्रभु की शरण । (३) पाप से बचाने की प्रार्थना । (४–६) दो अश्वी । पति-पत्नी, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । विवाहितों के पालनीय धर्म । (पृ० ५३६–५३९)

सू० [२५]—सोम । महान् प्रभु से सुख-समृद्धि की प्रार्थनाएं । (४) सर्वशरण्य प्रभु । (५) प्रभु की कृपा से उत्तम देह-प्राप्ति । (६) (६) सर्वरक्षक प्रभु । (७) प्रभु से अपने पर दुष्टों के शासन न होने की प्रार्थना । (८) द्रोही से रक्षा की प्रार्थना । (१०–११) सर्वदाता प्रभु । (पृ० ५३८–५४३)

सू० [२६]—पूषा । सर्वपोषक प्रभु । सर्वस्तुत्य प्रभु । (४) सर्वसाधक, संचालक, शोधक प्रभु । (५) फलदाता, सर्वसंचालक दुःखहारी, (६) प्रकृत्यादि का स्वामी । (७) सब ऐश्वर्यों का स्वामी, सर्वप्रेरक है । (८) सर्वमित्र, अनादि आत्मा, ध्रुव अविनाशी, सबका बलप्रद । (९) वह महान् शक्तिशाली, सर्वैश्वर्यप्रद है । (पृ० ५४३–५४७)

सू० [२७]—इन्द्र । ऐश्वर्यवान् प्रभु का स्वात्म-वर्णन । ऐश्वर्यवान् के कर्त्तव्य । (२) इन्द्र पद पर स्थित राजा के प्रति कर्त्तव्य । (३) अप्रातम दुष्ट-नाशक प्रभु । शत्रु के प्रति राजा के कर्त्तव्य । (५) प्रभु और राजा का अप्रतिहत सामर्थ्य । (६) राजा के कर्त्तव्य । निन्दकों का दमन । (७) सर्वोपरि शक्तिशाली प्रभु । (८) जीवों की प्रभु-शासन में गौवों की तरह स्थिति । (९) कर्मफलभोगी जीवगण । (१०) अन्धी

अचेतन प्रकृति से प्रभु की श्रेष्ठता। (१२) सौभाग्यवती वरवर्णिनी स्त्री के समान ईश्वराधीन प्रकृति का वर्णन। (१३) प्रकृति में प्रभु का अद्भुत व्यापन। ईश्वर का प्रकृति-व्यापन मात्र ही भोग है। (१४) प्रभु का मातृत्व। और अपने में प्रकृति के बने जगत् को लीलना। गौ के प्रात परमात्मा का गौ के तुल्य स्नेहपूर्ण अनुग्रह। (१५) राजावत् भोक्ता आत्मा के आठों प्राणों की देह में केन्द्रित व्यवस्था। (१६) दश प्राणों में एक आत्मा की व्यवस्था, (१७) आत्मा, दशों प्राण, और उनमें दो मुख्य प्राण, अपान, और देह में रुधिर आदि की व्यवस्था। (१८) अग्नि-वत् आत्मा का वर्णन। (१९) जगत् का अनादि-सञ्चालक प्रभु, उसका सृष्टि-निर्माण। (२०) उसका जीवों की सृष्टि बनाना। सूक्ष्म शरीरादि से जीवसर्ग की व्यवस्था। जगत् के सञ्चालक प्रभु का महान् ऐश्वर्य। (२२) जीव को प्रभु का व्यापक भय। (२३) परम कारणरूप परमाणुमय प्रकृति से स्थूल जगत् की उत्पत्ति और जीवों की रक्षण-व्यवस्था, (२५) प्रभु की प्राणदात्री शक्ति। सर्वज्ञ और मुक्तिदाता प्रभु। (पृ० ५२७—५५६)

सू० [२८]—इन्द्र। देह का मुख्य शासक आत्मा। मुख्य शासक के कर्त्तव्य। (३) उत्तम शासक के कर्त्तव्य और अनेक वीर पुरुषों के अभिषेक। (४) प्रभु और राजा का महान् सामर्थ्य। (५) प्रभु का अगम्य रूप और मङ्गलजनक उपदेश। (६) सर्वोपरि शासक का सर्वातिशायी बल। (७) उसका शत्रु-नाश करना कर्त्तव्य। (८) शत्रु नाश का उपाय और वीर सैनिकों का कर्त्तव्य। (९) वे कैसे निर्भय हों। वे उत्साह से बड़े बली का भी मुकाबला करें। (१०) वेतन-भोगी वीर सैनिकों का सशस्त्रास्त्र रहकर सदा तैयार रहने का कर्त्तव्य। ब्राह्मणों और विजार पशुओं के नाशकों को दण्ड हो। (१२) शाकाहारी शान्त पुरुषों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। 'वसुक्र' की व्याख्या। (पृ० ५५९—५६५)

सू० [२९]—इन्द्र। राष्ट्र-रक्षार्थ एक नायक के अधीन उत्तम

जनों के दल की स्थापना। (२) तीनों शक्तियों से युक्त शतपति नायक महारथि का स्थापन। उसके अधीन सेना का प्रयाण। (३) प्रभु की वा शासक की समर्चा की उत्सुकता। (४) प्रभु के लिये भक्त की उत्सुकता-पूर्वक अनुग्रह की याचना। (५) उससे मोक्ष-याचना। प्रभु की बनाए आकाश और पृथिवी विश्व के माता पिता के तुल्य हैं। (७) राजा का मधुपर्क से आदर करने का आदेश। (८) राजा शासक का व्यापक सामर्थ्य उसके सख्य-भाव की कामना। इसी प्रकार प्रभु को समझना। (पृ० ५६५–५६९)

सू० [३०]—आपः, अपां नपात्। प्रभु वाणी की कामना, उससे महान् ऐश्वर्य की याचना। (२) परस्पर मिलाकर गृहस्थ बनाने का उपदेश। उन्नत का आश्रय लेकर प्रबल शत्रुओं का नाश करने का उपदेश। (३) रक्षार्थी लोगों का महापुरुष का आश्रय लेने और उसके आदर का उपदेश। (४) मेघ और विद्युत् के तुल्य तेजस्वी महापुरुष का वर्णन। (५–६) गृहस्थ के तुल्य राजा प्रजा का परस्पर प्रसन्नता का व्यवहार। (६) संकट से रक्षा करने वाले का आदर करने का आदेश। (८) समुद्र नदीवत् राजा प्रजा का व्यवहार। (९) नदी सूर्यवत् राजा प्रजा का व्यवहार। (१०) उत्पादक प्रकृति के समान स्त्रियों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (११) विद्वानों के कर्त्तव्य। (१२) आप्त प्रजाओं के कर्त्तव्य। (१३–१४) उत्तम स्त्री-जनों के कर्त्तव्य। विद्वानों का कर्त्तव्य। ईश्वरो-पासन, यज्ञसम्पादन। (पृ० ५६९–५७७)

सू० [३१]—विश्वेदेव। (१) आचार्य का उपासन। उसका सत्परिणाम। (२) गुरु-शुश्रूषा और मनोदमन, वाग्-दमन श्रेष्ठ कर्म का उपदेश। (३) ध्यान, धारणा, सदाचार और गुरुवत् प्रभु की उपासना का उपदेश। (४) जीवार्थ जगत्-सर्ग, ईश्वर का जीवोपकारार्थ ज्ञान-प्रकाश। (५) सब ज्ञान वालों से ज्ञान प्राप्त करना। (६) प्रभु की वेदवाणी, उसको ग्रहण करने का आदेश। (७) सृष्टिविषयक प्रश्न

आकाश और भूमि कहां से बने। (८) सर्वधारक प्रभु। वही आकाश और पृथ्वी का कर्त्ता है। (९) सूर्य और वृष्टि के दृष्टान्त से प्रभु के जगत्सर्जन का वर्णन। अग्नि से प्रकाशवत् उसका प्रकृति से संसार का रचना। (१०) गो-वृषभ के दृष्टान्त से ब्रह्म द्वारा प्रकृति का जगत् को उत्पन्न करना। (११) प्रभु का उत्तम स्वामित्व। (पृ० ५७७–५८३)

सू० [३२]—विश्वेदेव। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सत्संग (२) यज्ञों द्वारा प्रभु की आर्चना और सत्फल। (३) पिता पुत्र और स्त्री पुरुष के दृष्टान्त से जीव के लिये समस्त ऐश्वर्य का वर्णन। (४) गौओं वा बैलों और माता पिता वाद्य-यन्त्रादि के दृष्टान्तों से अध्यक्ष में प्रमातृ शक्ति के शासन का वर्णन। (५) अद्वितीय प्रधान पुरुष का सूर्यवत् दुष्टदमनकारी और ज्ञान-दाता विद्वानों के सत्कार का उपदेश। (६) आर्चना से आत्मज्ञान की प्रार्थना। उससे उपदिष्ट होने की प्रार्थना। (७) आत्मज्ञान के निमित्त अज्ञानी ज्ञानी की उपासना करें। पक्षान्तर में क्षेत्रवित् और कृषक तथा आत्मज्ञ-अनात्मज्ञ पक्षों का विवरण। (८) जीवरूप अग्नि की गति। (९) षोडश-कल आत्मा वा गुरु की उपासना। (पृ० ५८३–५८८)

अष्टमोऽध्यायः

सू० [३३]—विश्वेदेव। प्रभु की शरण याचना। भक्त का प्रभु से व्यथाओं का निवेदन। सौतों से पीड़ित स्त्री के तुल्य उसकी हार्दिक वेदना। (३) मानसी चिन्ताओं से पीड़ित भक्त की प्रार्थना। (४) अन्तर्यामी, भयदायक जनों के नाश की प्रार्थना, सुनने वाले प्रभु का वरण। (५) अनेक सुखों के दाता प्रभु की स्तुति। (६) सुखद वाणियों के उपदेष्टा प्रभु का स्तवन। (७) प्रजारक्षक का अतिथिवत् आदर। पक्षान्तर में

उपदेष्टा गुरु के अधीन ज्ञानप्राप्ति का उपदेश। (८) आत्मा का ऐश्वर्य। (९) उसका शतायु जीवन। (पृ० ५८८–५९३)

सू० [३४]—अक्षकृषि प्रशंसा अक्षकितव-निन्दा। जूए के अक्षों के तुल्य प्रलोभन देने वाले इन्द्रियों का वर्णन। पक्षान्तर में अध्यक्षों का निर्देश। जूएख़ोर के दारिद्रय और अधःपतन। इन्द्रिय लम्पट की बुद्धि-हीनता। (३) जूए के दुष्परिणाम। जूआख़ोर का अपने सम्बन्धी जनों से द्वेष, कलह और उसके प्रति सबकी तरफ से उपेक्षा। (४) जूएख़ोर की दुर्दशा। उसकी और इन्द्रिय लम्पट के गृहस्थ, स्त्री की भी दुर्दशा। सबकी किनारा-कशी। (५) जूएख़ोर की व्यसनमग्नता उसका घोर अधःपतन। (६) जूएख़ोर के समान धनार्थी विवाद-कलही का वर्णन। और काम्यसुखार्थ आत्मा की इन्द्रियों के बीच स्थिति। (७–८) उत्तम अध्यक्षों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (९) नीच अध्यक्षों का वर्णन, उसके दोष। (१०) उच्छृंखल द्यूत व्यसनी की दुर्दशा। (११) कितव। अन्यों का छीन झपट लेने वाले का अन्तस्ताप। उसकी दुर्दशा। (१२) सर्वश्रेष्ठ राजा का आदर। (१३) द्यूत का निषेध और कृषि की प्रशंसा। (१४) अध्यक्षों को सदुपदेश। (५९३–६००)

सू० [३५]—विश्वेदेव। शिष्यों, जिज्ञासुओं के कर्त्तव्य। (२) उत्तम माता पिता और गुरु जनों की इच्छा। (३) माता पितावत् राजा, राजसभा से रक्षा की प्रार्थना, विदुषी माता और राज्य की पोलिस सेना वा प्रभु-शक्ति आदि से पाप को रोकने की प्रार्थना। (४) उत्तम प्रभुशक्ति के कर्त्तव्य। क्रोध त्याग का उपदेश। ब्रह्मज्ञान को धारण करने की प्रार्थना। (५) उत्तम विदुषी स्त्रियों के कर्त्तव्य। वे गृहों का सब प्रकार से पालन करें। (६) प्राभातिक सूर्य रश्मियों का रोग-नाशक गुण। अग्निवत् तेजोमय से सुख-कल्याण की प्रार्थना। (७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। प्रभु का ऐश्वर्य-सम्पादक ज्ञानवाणी, वेद का उपदेश। (८)

ज्ञानी के उदय और ज्ञान-प्राप्ति की प्रार्थना। (९) द्रोहरहित पुरुषों का सत्संग। ज्ञानप्रकाशकों की शरण में रहकर ज्ञान-प्राप्ति। (१०) विद्वानों का किरणों के तुल्य आदर। यज्ञ में ऋत्विजों की तरह सात विद्वानों की राष्ट्र में स्थापन। अग्निवत् ज्ञान-प्रकाशक प्रभु से कल्याण की प्रार्थना। (११) वृद्ध ज्ञानी पुरुषों से यज्ञ-रक्षा की प्रार्थना और प्रभु से कल्याण-याचना। (१२) विद्वानों से ज्ञानोपदेश की याचना। (१३) बलवानों और सम्पन्नों से रक्षा-याचना। ज्ञानियों से ज्ञानी की याचना। (१४) विद्वान् तेजस्वी और सम्पन्नों की निर्भय शरण। (पृ० ६०१—६०८)

सू० [३६]—विश्वेदेव। दिन रात्रिवत् कर्मनिष्ठ स्त्री पुरुषों तथा आदरणीय पुरुषों का सत्कार। (२) उत्तम पुरुषों से रक्षा की प्रार्थना। उनसे पाप से बचने की प्रार्थना। उपदेष्टा ज्ञानी और प्रबल क्षत्रिय दुष्टों के नाश और उत्तम सुख की प्रार्थना। (५) राजा की सूर्यवत् स्थिति। पूज्यों की आर्चना, ज्ञान धनादि की वृद्धि। (६) तेजस्वी, उत्तम स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (७) प्रभु की आत्मदेह में प्राणापान की प्राप्ति। देह में से बल ज्ञान आदि की याचना। (८) प्रभु की उपासना। (९) उसकी अर्चना, भजन आदि। (१०) आत्मज्ञान के श्रवण का उपदेश। विजयप्रद ज्ञान, कर्म, बल आदि की याचना। (११) वीर पुरुष, वीर भोग्य ऐश्वर्य की कामना। (१२) प्रभु के परम सुख, और निष्पापता की कामना। (१३) प्रभु के व्रत में लगे श्रेष्ठ पुरुषों से ऐश्वर्य-वृद्धि की प्रार्थना। (१४) सर्वत्र प्रभु की भावना। (पृ० ६०८—६१४)

सू० [सू० ३७] विश्वेदेव। सर्वश्रेष्ठ प्रभु के सत्य ज्ञान और उससे प्रभु का स्तवन। (२) सर्वाश्रय सत्य-वचन से रक्षा की आकांक्षा। (३) सूर्य के उदयास्त के तुल्य आत्मा स्वप्न-जागरण और जन्म-मरण। प्रभु के ज्ञान-ज्योति से कष्टों के नाश की प्रार्थना। (५) प्रभु से उत्तम आचरणोपदेश की प्रार्थना। (६) माता पिता आदि आप्त जनों से सुखी

जीवन की प्रार्थना। (७) प्रभु से दीर्घ जीवन की प्रार्थना। (८) प्रभु के चिरकालिक साक्षात् की याचना। (९) दुःखहारी प्रभु से निष्पाप होने की प्रार्थना। (१०) प्रभु से शान्ति की याचना। (११) विद्वानों से सर्व-सुख कल्याण की कामना। (१२) अपराधी को दण्ड देने की प्रार्थना। (पृ० ६१४—६२०)

सू० [३८]—इन्द्र। सूर्य मेघवत् प्रबल राजा के कर्त्तव्य। दुष्ट दमन। प्रजा को समृद्ध करना। (२) सूर्य के तुल्य राजा प्रजा में ज्ञान ऐश्वर्य की वृद्धि करे। (३) हम दुष्ट शत्रु के विजेता हों, (४) विजयी, ऐश्वर्य-वर्धक राजा को हम सदा चाहें और पावें। (५) ऐश्वर्यवान् राजा विद्वान् और आत्मा का वर्णन। वह सन्मार्ग में चलावें, निन्दित मार्ग से न चलावें, निन्दित मार्ग से हटावें वह मुक्त, असंग वा जितेन्द्रिय हों। पक्षान्तर में—जितेन्द्रियता से ब्रह्मचर्य के बाद स्नातक का गृहाश्रम में प्रवेश। (पृ० ६२०—६२३)

सू० [३९]—दो अश्वी। जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। उत्तम उपदेष्टा को पालक रूप से स्वीकार करना। (२) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सत्योपदेश कर प्रजापोषक उद्योग धन्धे करें। ऐश्वर्य की वृद्धि करें। (३) वे दोनों सदा सत्याचरणी हों, भूखों को अन्न दें, छोटे जीवों की रक्षा करें, निर्बलों को पालें, पीड़ितों की चिकित्सा करें। पक्षान्तर में वैद्य के कर्त्तव्य, उदर रोगी, अपस्मारी, नेत्र-विकल, राजयक्ष्मी, कृश आदि की चिकित्सा करे। (४) स्त्री पुरुषों के रथकार के समान कर्त्तव्य। वे उत्तम राजा को अधिकार दें। उत्तम नायक को पुनः उत्साहित करें। (५) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के वैद्यों के तुल्य कर्त्तव्य, रोगों की चिकित्सा करें, वे रक्षा का कार्य करें, सत्य को धारण करें। (६) विद्या पारंगत माता-पिता, गुरुजनों के कर्त्तव्य। उनसे ब्रह्मचारिणी की ज्ञान वा पालन याचना। (७) माता पिता को शुद्ध कन्या का नियमानुसार योग्य से विवाह

करने का आदेश। (८) वे विद्वानों को पालें, दुःखियों का दुःख से उद्धार करें। (९) विद्या में निष्णात स्त्री-पुरुष जीव को कष्ट से उबारें। (१०) प्राण उदान के तुल्य वे वीर पुरुषों को आने वाला सामर्थ्य दें। (११) वे रथी सारथिवत् जिसको बड़ी पालक शक्ति सौंपे वह पाप से दूर रहे। (१२) वे रथों से यातायात करें। (१३) वे रथों से पर्वतादि देशों में भी जावें आवें। दुष्टों के पञ्जों से प्रजा की रक्षा करें। (१४) ऐसे व्यक्तियों के हाथों ही प्रजा को सौंपे जो जितेन्द्रिय और शक्तिशाली हों। (पृ० ६२३–६३१)

सू० [४०]—दो अश्वी। जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। उनका रथ निर्विघ्न चले। (२) वे अपने कार्यों को नियत कालों में व्यवस्थित करें, नैत्यिक नैमित्तिक कार्यों का ध्यान रखें, (३) वे प्रातः स्तुति करें और अपने शक्ति और अधिकारों को सदा प्राप्त करें। (४) सूर्य मेघवत् उनके कर्त्तव्य। वे सिंहों के समान रक्षक वीर हों, शिक्षित हों। (५) सभाओं के नायकों के कर्त्तव्य। वे राष्ट्रहित और हिंसक के नाश के लिये उद्यत रहें। (६) उत्तम स्त्री पुरुषों के शासन कर्त्तव्य। मुख से मधुर बोलें, गृहणीवत् प्रजा-सभा के कर्त्तव्य। (७) सभा सेना के अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (८) विद्वान् स्त्री पुरुष अचेत, सेवक, विधवा, ज्ञानदाता और उपदेष्टा आदि का पालन करें और अपने इन्द्रियों का दमन करें। (९) स्त्री के कर्त्तव्य। उत्तम पुत्र प्राप्त करे, अपने सामर्थ्यानुसार उन्नत पद पावे, जलधाराओं के तुल्य तेजस्वी पुरुष को प्राप्त हो, सौभाग्यवती हो। इसी प्रकार प्रजा भी चाहे कि उसका राजा उत्तम हो। (१०) पति के घर जाते हुए स्त्री को पितादि बन्धुओं से बिछुड़ते हुए न रोने का उपदेश। क्योंकि पति के गृह को जाने में उसका उद्देश्य पवित्र और अधिक उत्तम है। उसमें वह रोना अमङ्गल है। (११) युवा-युवतियों का गृहस्थ-प्रवेश के पूर्व माता पितादि से योग्य शिक्षा की प्रार्थना। (१२) वर वधू

को माता पिता आदि का उपदेश, वे अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण रखें। शुभ कार्य, गुण आदि धारण करें। (१३) उत्तम अन्न और ज्ञान से तृप्त हों, ऐश्वर्यवान् हों, उत्तम पुरुष को गुरु बनावें। उत्तम आश्रय करें। (१४) प्रसन्न रहें, उत्तम विद्वान् का सत्संग करें। (पृ० ६३०–६३९)

सू० [४१]—दो अश्वी। त्रिकाल शक्तियुक्त प्रभु की स्तुति। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) योगाभ्यास द्वारा प्रभु का ध्यान करें, और यज्ञ करें। (३) उत्तम ज्ञानी आचार्य का सत्संग करें, वेद ज्ञान का रस प्राप्त करें।

सू० [४२]—इन्द्र। उत्तम धनुर्धर के समान स्वयं प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश। विद्वान् हृदय में परमेश्वर को धारण करे। सुखी हों। (२) गौ के तुल्य प्रभु की सेवा करो। प्रभु के प्रति सखि-भाव का उपदेश। (३) उत्तम पालक प्रभु। उससे ऐश्वर्य की याचना। (४) विवाद के अवसर पर राजा शासक की पुकार। युद्धादि में सेनापति की आवश्यकता, उसके समान सर्वत्र प्रभु के सहाय की आवश्यकता। उपासक को प्रभु प्रेम करता है। (५) प्रभु पर विश्वासी के निर्विघ्न मार्ग। (६) हमारे स्वामी से शत्रु भय करें। (७) राजा शत्रु का दूर से ही नाश करे। (८) उत्तम शास्ता राजा के कर्त्तव्य। भले को पीड़ा न दे। (९) मनुष्य को कितव के तुल्य विजयोद्योगी होने का उपदेश। (१०) प्रभु और राजा से अज्ञान और धनों के विजय की प्रार्थना। (११) प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ६४१–६४६)

सू० [४३]—इन्द्र। पति को स्त्रियों के तुल्य प्रभु को स्तुतियां प्राप्त हों। समस्त स्तुतियों का एक मात्र लक्ष्य प्रभु है। (२) राजावत् प्रभु की स्तुति। प्रभु में मन का अनुराग। (३) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। उसके प्रजा के प्रति अन्नादि को समृद्ध करने और बल बढ़ाने का कर्त्तव्य। (४) उत्तम २ नायकों का समर्थ पुरुष को आश्रय रूप से अपनाना।

(५) द्यूतकार के समान प्रजा को कृतकर्मा कुशल पुरुषों के संग्रह का उपदेश। जिससे वह सदा बलशाली बना रहे। (६) राजा प्रजा के सुखों का सदा ध्यान रक्खे और शत्रुओं का विजय करे। (७) समुद्र के समान राजा बलवान् राजा का सर्वाश्रय पद। (८) क्रुद्ध सांड के समान प्रजाओं वा शत्रुओं के राजा का उग्र रूप। उसका शासन। सेनाओं और प्रजाओं का जल का सा स्वभाव। राजा मनुष्यमात्र के हित के लिये पराक्रम धारण करे। (९) राजा स्वयं दुधार गौ के समान प्रजा को ऐश्वर्य दे। तेजस्वी निष्क्रोध होकर भी चमके। हृदय में शुद्ध, तेजस्वी उत्तम आचरण वाला हो। (१०) प्रआ अन्नादि से सम्पन्न, ज्ञानी, धन सम्पन्न हो। (११) राजा उसकी सब ओर से रक्षा करे। राजा प्रजा का सख्य हो। (पृ० ६४६ ६५२)

सू० [४४]—इन्द्र। राजा के कर्त्तव्य, राजा न्याय से शासन करे शत्रुओं और दुष्टों का नाश करे। पक्षान्तर में गृहपति के कर्त्तव्य। (२) राजा का रथ और सैन्य दृढ़ हों, प्रजा संयमी हों। समस्त सैन्य उसके हाथ में हो। (३) बलवान् जन राजा के रक्षक हों। (४) प्रजा बलशाशी राजा को चाहें। वह उनकी वृद्धि करे। (५) राजा से प्रजाकी समृद्धि याचना। (६) देवोपासक जन यशोभजन होते हैं और उपासना न करने वालों का अधःपतन हाता है। (७) अजितेन्द्रियी का अधःपतन और जितेन्द्रियों की उन्नति। (८) प्रभु का प्रसाद और कोप। उसका गर्जनवत् उपदेश। (९) प्रभु से दुष्टों के नाशक बल की याचना। (१०) अज्ञान दुर्भिक्ष आदि का विजय। (११) परमेश्वर से सर्वतोभद्र रक्षा की याचना। (पृ० ६५३–६५८)

सू० [४५]—अग्नि। मुख्याग्नि सूर्य, अध्यात्म में प्राण। जाठर, और भौम ये तीन अग्नियें। उनसे दीर्घायु की प्राप्ति। (२) तीन लोकों में विद्यमान् उसके तीन रूप। उसका एक निगूढ़ रूप। (३) ज्ञानद्रष्टा

अग्नि । पक्षान्तर में राजा रूप अग्नि । (४) आकाश रथ विद्युद् अग्नि । उसके समान राजा का वर्णन । उसके तुल्य विद्वान् । सूर्यवत् राजा का कर्त्तव्य । (५) प्राभातिक सूर्यवत् राजा का स्वरूप । और उसके कर्त्तव्य । (७) तेजस्वी राजा के कर्त्तव्य । (८) आत्मा रूप अग्नि का प्रकाश । उसका अग्नि के तुल्य ही जीवन रूप ज्वलन । (९) उसका सुख-प्राप्ति के निमित्त परिसेवन । (१०) शिष्य रूप अग्नि का वर्णन, उसको गुरुवत् प्रभु का उपदेश । प्रभु का सर्वव्यापक तेज । जीवन रूप अग्नि, उसका प्रभु शक्ति से ही अनेक जीव रूप से उत्पन्न होना । (११) सर्वैश्वर्यप्रद सर्वज्ञानप्रद प्रभु । (१२) सर्वहितकारी, वैश्वानर अग्नि । सर्वरक्षक, ज्ञानमय माता पिता गुरु आदि विद्वान् जनों से उत्तम उत्तम वीर्य, धन, पुत्रादि की याचना । (पृ० ६५८—६६४) इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति सप्तमोऽष्टकः ।

---

* ओ३म् *

ऋग्वेद-विषय-सूची

अष्टमोऽष्टकः । प्रथमोऽध्यायः ।

दशमं मण्डलं । चतुर्थोऽनुवाकः ।

सू० [४६]—अग्निः । ज्ञानी, विद्वान्, सर्वाध्यक्ष, सर्वपालक प्रभु । (२) यज्ञाग्नि के तुल्य आत्मा की ज्ञान-साधनों से प्राप्ति । (३) मोक्ष में युक्तात्मा का प्राप्य प्रभु सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, तेजोमय है । (४) सर्वस्तुत्य, सर्वस्वामी प्रभु । (५) सर्वमोक्षप्रद, तेजोमय प्रभु (६) त्रित अग्नि का वर्णन । आचार्य-गृह में ब्रह्मचारी के तुल्य आत्मा का देह में आगमन । कलाकौशल पक्ष में—अग्नि विद्युत् का वर्णन । (७) मुख्याग्नि गुरु के अधीन अन्य अनेक शिष्याग्नियों के तुल्य मुख्य के नीचे अधीन शासकों का वर्णन । (८) सर्वज्ञानप्रद प्रभु (९) सर्वस्तुत्य, सर्वोपास्य प्रभु का उपदेश (१०) प्रभु से ही दीर्घ जीवन, बल आदि की प्रार्थना । (पृ० १७७)

सू० [४७]—इन्द्रो वैकुण्ठः । वसुपति परमेश्वर का अवलम्ब लेकर उसी से ऐश्वर्य की याचना करने का उपदेश । (२) सर्वरक्षक । (३) सर्वज्ञ, सर्वोपरि, सर्वस्वामी । (४) भवतारक, महान्, सर्वदुष्ट-विघ्नादि नाशक । (५) सबका स्वामी, सर्वनेता, सर्वसंचालक, स्तुत्य परमेश्वर का जगत् रूप महान् रथ । (६) सर्वनमस्य, सप्तप्राण, सप्तरश्मि

सत्यकर्मा, बृहस्पति। (७) प्रभु से याचना-विनय और ऐश्वर्य, और रक्षा, स्थानादि की याचना। (पृ० ७–११)

सू० [४८]—इन्द्र वैकुण्ठ। परमेश्वर। प्रत्यक्ष रूप से अध्यात्म वर्णन। (२) वह प्रभु सर्वोपरि सर्ववेदों का स्वामी, लोकनाथ, धन को देने, विभाग करने हारा है। (३) सबको बल का दाता, सबका अध्यक्ष सबके फलों का देने-दिलाने वाला। (४) आत्मा का ज्ञान-दाता, उद्धारक प्रभु। (५) मृत्यु आदि का वारक प्रभु। परमेश्वर के सख्य में सदा अभय, आश्वासन, (६) दुष्टों को दण्ड देने वाला प्रभु। (७) सर्वोपरि शक्तिशाली प्रभु। (८) दुष्ट-नाशक, प्रजापालक प्रभु। (९) प्रभु के साथ मैत्रीभाव रखने का उपदेश। (१०) सर्वशास्ता प्रभु (११) सर्वशक्तिप्रद प्रभु। वह अपराजित, अहिंसित, अविनाशी है। पक्षान्तर में—सर्वोपरि राजा का वर्णन। (पृ० ११–१६)

सू० [४९]—सर्वैश्वर्यप्रद प्रभु का आत्म-वर्णन। सर्वजगत्-उत्पादक, बलप्रद, सर्वप्रेरक, दुष्ट-दण्डक प्रभु। (२) सर्वव्यापक, सर्ववशकर्त्ता प्रभु। (३) अज्ञान-नाशक, सर्वरक्षक, दुष्टदण्डक, सज्जनपालक प्रभु। (४) प्रभु के पिता के तुल्य कर्त्तव्य। प्रभु का दुष्टों का दमन। (५) अपनी ओर आने वालों के प्रति प्रभु की विशेष कृपा। (६) सर्वतारक प्रभु। (७) भक्तों पर कृपालु परमेश्वर। (८) साधक पुरुष के प्रति प्रभु के कार्य। (९) प्रभु का देह में आत्मा के तुल्य अद्भुत कार्य। (१०) देह में आत्मा के कर्त्तव्य। (११) प्रभु के अद्भुत कर्म। (पृ० १६–२२)

सू० [५०] इन्द्र वैकुण्ठ। सर्वोपरि, सर्वस्तुत्य, आनन्दमय, सर्वोत्पादक प्रभु। (२) सर्वस्वामी, सर्वसेव्य, सर्वसुखप्रद, निरञ्जन प्रभु। (३) भक्तों विषयक प्रश्न (४) सर्वपूज्य, सर्वद्रष्टा, सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रेरक।

पति के अधिकार । वह कन्या के धन का अधिकारी न हो । (९) चौरवत् व्यक्ति के हाथ कन्या को न देकर वीर पुरुष के हाथ कन्यादि का दान करे । (१०) विद्यार्थियों के कर्त्तव्य, गुरु उपासना । पक्षान्तर में—नवविवाहितों के सत्कर्त्तव्य । (११) ब्रह्मचारी के तुल्य विवाहित के कर्त्तव्य । (१२) निष्पाप जीवन का फल दीर्घ-जीवन । (१३) मुख्य प्राण के अधीन गौण प्राणों के तुल्य राजा के अधीन सामन्तों के कर्त्तव्य । (१४) सर्वोपास्य पापनाशक देव भर्ग । (१५) स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य उनके ब्रह्मचारी वा पुत्रों के प्रति कर्त्तव्य । (१६) राजा के तुल्य आत्मा का वर्णन । उसको रथवत् देह-चालन का कर्त्तव्य । (१७) पुत्रवत् आत्मा का उभय-लोक-तारक होने का वर्णन । (१८) सर्वाश्रय हृदयस्थ परमात्मा का सर्वमाता के तुल्य होना, वही उपास्य है । (१९) मातृवत् प्रकृति का वर्णन । उससे पुत्रवत् जीव-सर्ग । उसकी सवनीय गौ के साथ उपमा । (२०) बालक-वत् आत्मा का वर्णन । उसका देह पर वशीकरण करने का वर्णन । (२१) उत्तम भक्त के लक्षण । जितेन्द्रिय से ही प्रभु प्रसन्न होता है । (२२) प्रभु से रक्षा, और निष्पाप होने की प्रार्थना । (२३) सन्यासी उपदेष्टा के कर्त्तव्य । (२४) अवश्य प्रार्थनीय सर्वसुखप्रद प्रभु (२५) उपास्य प्रभु से ज्ञान और अन्न की याचना । (२६) उपास्य प्रभु, सर्वोत्तम बन्धु उत्तम दुधार गौ के तुल्य है । (२७) विद्वानों को ज्ञान-सेवन, प्रभु के प्रेमी होने का उपदेश । (पृ० ६५–७९)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [६२]—विश्वेदेव और आङ्गिरस गण । ईश्वरोपासना से मोक्ष लाभ । विद्वानों के कल्याण की भावना । विद्वानों का कर्त्तव्य, मनुष्यों पर

अनुग्रह करना। (२) गड़े खजाने के तुल्य ज्ञान प्राप्त करने का उपदेश, (३) विद्वान् तेजस्वियों का कर्त्तव्य राजा का स्थापन, प्रजा का अभ्युदय, मानवों पर अनुग्रह। पक्षान्तर में—योगाभ्यास का वर्णन। (४) गुरु और ज्ञानार्थी शिष्यों के कर्त्तव्य। (५) उत्तम शिष्यों के कर्त्तव्य। उनके बीच सूर्यवत् उनको ज्ञान देना। (७) गुरु-शिष्य का विद्या-दाना-ऽऽदान। (८) जीव की सस्यांकुर के समान उत्पत्ति, (९) तेजस्वी का सूर्यवत् सर्वोच्च स्थान। उसका महान् सागरवत् वर्णन। (१०) उसका सबसे अधिक आदर, (११) तेजस्वी नायक के कर्त्तव्य। उसके ग्राह्य गुण।

सू० [६३]—विश्वेदेव। उपदेष्टा लोगों के कर्त्तव्य। (२) उत्तम नाम पदधारी नेता जनों के कर्त्तव्य। (३) माता-पिता गुरु आदि से शिक्षा, ज्ञान, मधु अन्नादि प्राप्त करने वाले विद्यावानों के सुख-कल्याण की कामना। (४) मोक्षसेवी ज्ञानी पुरुषों के लक्षण। (५) योग्य आदरणीय पूज्यों की पूजा का उपदेश। (६) सेव्य, वेदोपदेष्टा, सर्वतारक प्रभु। (७) विद्यावानों से कल्याण की याचना। (८) उत्तम ज्ञानी ऐश्वर्यवानों से सुख-कल्याण रक्षा की याचना। (९) पापमोचना उत्तम जनों का सादर आमन्त्रण। (१०) उत्तम नौका के तुल्य तारक प्रभुमयी नौका का वर्णन। (११) रक्षार्थ उत्तम पुरुषों का शासन, और उनसे रक्षा और कल्याण की प्रार्थना। (१२) वे प्रजाओं में से रोग, पीड़ा, परस्पर अदानशीलता और दुःखदायिनी हिंसा को दूर करें। (१३) तेजस्वी और उत्तम व्यापारियों के कर्त्तव्य। उनके आत्मा का अभ्युदय। (१४) वीरों विद्वानों के रक्षा-कुशल अध्यक्ष का वर्णन। (१५) वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य, वे प्रजाओं में उत्तम सुखप्रद मार्ग, समुद्र नदी आदि पर गमन-साधन और घर गृहस्थ में शान्तिस्थापन करें। (१६)

विद्वानों का परमेश्वर से सम्बन्ध। (८) शिल्पी के तुल्य प्रभु परमेश्वर का जगत्सर्जन कार्य। (पृ० ५२-४६)

सू० [५६]—विश्वेदेव। सर्वाश्रय प्रभु में रमण करते हुए सर्वोत्तम, ज्योतिर्मय प्रभु में मग्न होना। (२) आत्मा को जन्म-जन्मान्तर में साधन कर प्रभु को प्राप्त करने का उपदेश। (३) उत्तम कर्म, उत्तम ज्ञान, उत्तम मार्गों से उत्तम गति प्राप्त करने का उपदेश। (४) उनको उत्तम मार्गों का उपदेश। (५) उत्तम लोक-प्राप्ति और प्रजा-प्रसार का उपदेश। (६) अगली प्रजा के स्थापन का उपदेश अथवा वानप्रस्थोचित विधि से वंश-स्थापन, अविच्छिन्न तन्तु करने का उपदेश। (७) नाव और समुद्र के दृष्टान्त से इस लोक का तरण, प्रजास्थापन का उपदेश।

सू० [५७]—विश्वेदेव। प्रभु से दूर न होने और कुपथ पर न जाने का आदेश। (२) ईश्वर भक्त की आत्मा की सूत्र, प्रजा वा पुत्रवत् स्थिति। उसकी प्राप्ति का आदेश। (३) मन को वश करने का उपदेश। (४). मन का पुनः ज्ञानमार्ग में प्रवर्त्तन, प्रत्याहार, योग-अंग की साधना। (५) मन को बलवान् बनाने का उपदेश। (६) परमेश्वर प्राप्त्यर्थं अनेक जन्मों में उत्तम मन उत्तम प्रजावान् होने की कामना। (पृ० ५०—५२)

सू० [५८]—मनः-आवर्त्तन। इस लोक में पुनः आने, जन्म लेने आदि के निमित्त मन का पुनः २ आवर्तन। योगाङ्ग रूप प्रत्याहार का वर्णन।

सू० [५९]—(१-३) निर्ऋतिः। गृहस्थ को सुखपूर्वक निभाने का उपदेश। बालक दीर्घायु हों। (२) उत्तम अन्न वा धनों को प्राप्त करें। (३) शत्रु पर विजय करें और विद्वान् की मार्गदर्शिता में इस

दुःख से मुक्त, सुखी हों। (४) निऋ ति और सोम। विद्वान् के कर्त्तव्य। वह अन्यों को कष्टों से बचावे। प्रभु हमें प्रकृति के तमोमय बंन्धन से मुक्त रखें। (५-६) असुनीति। प्राणप्रद प्रभु से प्रार्थना। उससे पुनः जन्म जन्मान्तरों में समस्त इन्द्रियादि सुख-साधनों की प्रार्थना। (७) प्रभु से पुनः प्राणादि की याचना। (६-१०) द्यावापृथिवी। आकाश-भूमिवत् माता-पिता के कर्त्तव्य। वे प्रजा का कष्ट दूर करें।

सू० [६०]—असमाता राजा। विनयशील तेजस्वी, स्तुत्य जन को आश्रय करने का उपदेश। (२) असाधारण मानवान्, पालक की शरण ग्रहण करो। (३) राजा का हिंसावत् पराक्रमी होने का कर्त्तव्य। (४) प्रजा वृद्ध्यर्थ मधुरभाषी राजा की आवश्यकता। (५) राजा के आश्रयभूत जन असाधारण बल और ज्ञान वाले हों। (६) प्रजा के हितार्थ राजा-प्रजावर्गों को सन्मार्ग पर चलाने और दुष्टों के दमन का उपदेश। (७) माता पिता के तुल्य राजपद। (८) जुए के समान मन के वशीकरण का उपदेश। (९) मनोदमन का प्रभु को साधन बनाना। (१०) दीर्घजीवन वा कल्याणार्थ प्रभु से ज्ञान वा मन-शक्ति की याचना। (११) पापत्यागार्थ व्रत आदि से विनय की शिक्षा। (१२) हाथों के सौभाग्यवान् और कल्याणप्रद होने की प्रार्थना। (तृ० ६०-६४)

सू० [६१]—विश्वेदेव। ब्रह्मा पद के योग्य विद्वान् का लक्षण। पक्षान्तर में मेघ-कर्म। (२) मेघ वा सूर्यवत् पराक्रमी राजा के कर्त्तव्य। (३) शक्तिशाली की आज्ञा-पालन का उपदेश। (४) दिन रात्रिवत् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य, वे प्रातः यज्ञ, विद्याभ्यासादि करें। प्रेम भाव से रहें। (५) गृहस्थ को पुत्रोत्पत्ति और वनस्थ होने का उपदेश। (६) पुत्रोत्पादन की आवश्यकता। (७) पुत्र न होने की दशा में कन्या को ही पिता के धन का उत्तराधिकार। (८) अभ्रातृका कन्या के

उत्तम गृहणी के सेना के सदृश कर्त्तव्य। (१७) उत्तम शासक और विद्वानों के कर्त्तव्य।

सू० [६४]—विश्वेदेव। सदा स्मरणीय और मननीय प्रभु देव की जिज्ञासा। (२) ज्ञानार्थी और फलार्थी सब पर दयालु प्रभु। (३) सर्वोपरि स्तुत्य प्रभु और स्तुत्य सूर्य चन्द्रवत् उत्तम स्त्री पुरुष। (४) एक मात्र जगत्-कर्त्ता वेदवाणियों से स्तुत्य महान् प्रभु। (५) राजा के तुल्य आत्मा का नाना देहों में विचरण और भोग्य फल प्राप्ति। (६) शूरवार दानी, लोगों से प्रार्थना। (७) वायुवद् बलवान् पोषकों का वरण, क्योंकि वे प्रभु के शासन में एक चित्त होकर कार्य करते हैं। (८) उत्तम शक्तियों और शक्तिशालि पुरुषों की प्राप्ति। (९) उदार देवियों का सादर आमन्त्रण और अन्नवत् ज्ञान-याचना। (१०) पूज्यों से प्रार्थना, प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (११) सम्पन्न गृहवत् सुखदायी प्रभु। उत्तम जनों का सुखदायी उपदेश। यशः-सम्पदा आदि की कामना। (१२) विद्वानों से उपदेशों और उत्तम मान-प्राप्ति की प्रार्थना। (१३) विद्वानों और वीरों से परस्पर बन्धुत्व और ज्ञान-प्रसार की प्रार्थना। (१४) सूर्य भूमि के तुल्य माता पिताओं के कर्त्तव्य। (१५) परम वेदवाणी का वर्णन। (१६) विद्वान् ज्ञानी को उत्तम जन्म लाभ। (१७) उत्तम शासक और विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ० ९६–१०)

सू० [६५]—विश्वेदेव। अग्नि, विद्युत्, जल, अन्न, सूर्य, वायु पृथिवी, नदी १२ मास, आकाश, अन्तरिक्ष, देहगत प्राणगण, तेज, शब्द, ओषधिगण, प्राण, प्रकृति, प्रभु इनकी परस्पर सुसंगत स्थिति। (२) वायु, अग्नि जल की व्यापक स्थिति, ओषधिवर्ग की जल के आश्रय वृद्धि, पक्षान्तर में राष्ट्र में सेनापति, पुरोहित और राजा तथा गृहपति, स्त्री और पुत्र का वर्णन। (३) उन शक्तिशाली पदार्थों का वर्णन।

(४) महापुरुषों के कर्त्तव्य। (५) मित्र वरुण, वायु जलवत् दानी स्नेही, महापुरुषों का वर्णन। (६) पृथ्वी के परि भ्रमण से ऋतुओं की उत्पत्ति आदि का वर्णन। (७) सूर्य की रश्मियों के तुल्य ज्ञानी पुरुषों का वर्णन। (८) आकाश, भूमि, वा सूर्य पृथिवीवत् पुत्रों के प्रति माता-पिता के कर्त्तव्य। (९) इन्द्र वायु, मेघ वायु, और सूर्य किरणों के तुल्य पार्थिव और दिव्य जनों और तत्वों का वर्णन। (१०) सूर्यादि के तत्वज्ञ की उपासना। (११) उत्तम पुरुषों के लक्षण। (१२) उत्तम स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (१३) उत्तम पुरुषों से प्रार्थना। (१४) श्रेष्ठ जनों के कर्त्तव्य। (१५) ब्रह्मचारी और आचार्य के कर्त्तव्य। (पृ० १००–१०९)

सू० [६६]—विश्वेदेव। राजा गुरु आदि पूज्यों की उपासना और सत्संग का उपदेश। (२) विद्वानों से ज्ञान-प्राप्ति का उपदेश। (३) तेजस्वी राजा का कर्त्तव्य, प्रजा का पालन। (४) माता पिता के तुल्य प्रिय, सत्यज्ञानी पुरुषों के आदर का उपदेश। (५) श्रेष्ठों से शरण आदि की याचना। (६) यज्ञ, विद्वान् स्त्री पुरुषों, वीरों के बलशाली होने की प्रार्थना। (७) अग्नि जलवत् शान्तिप्रद और दुष्ट-संतापक से सुख की प्रार्थना। (८) क्षत्रियों के कर्त्तव्य। (९) विद्वानों के कर्त्तव्य। (१०) राजसभादि के विद्वान् सभासदों के कर्त्तव्य। (११) राजादि पुरुषों से प्रार्थना। (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य। (१३) न्यायमार्ग का अनुसरण। विद्वानों के सत्संग का उपदेश। (१४) उत्तम गुरु जनों का कर्त्तव्य वे प्रेम से वेदोपदेश करें।

सू० [६७]—बृहस्पति। वेदज्ञ विद्वान् का कर्त्तव्य ज्ञानोपदेश कर मोक्ष प्राप्त कराना। पक्षान्तर में—प्रभु की महिमा। (२) सत्योपदेष्टा जनों के कर्त्तव्य। (३) विद्वान् परमहंसों के कर्त्तव्य वे देह-बन्धन

को दूर करें । पक्षान्तर में सूर्य का वर्णन । (४) बृहस्पति रूप आत्मा का देह में वर्णन । उसको वेदत्रयी का साक्षात्कार । (५) ज्ञानवान् आत्मा का देहपुरी-बन्धन का भेदन । अध्यात्म योजना । (६) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा का दुष्ट-दमन का कर्त्तव्य । (७) सूर्य के दृष्टान्त से राजा को संग्रह का उपदेश । पक्षान्तर में—आत्मा का प्राण-च्छिद्र-निर्माण आदि का वर्णन, आत्मा के धनसनि, वृष, वराह आदि नामों की व्याख्या । (८) माण्डलिकों में प्रधान राजा के तुल्य प्राणों में आत्मा का वर्णन पक्षान्तर में—प्रभु और भक्त का वर्णन । (९) सिंहवत् पराक्रमी सभापति के प्रति प्रजा का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में आत्मिक बल बढ़ाने का उपाय । (१०) सूर्यवत् प्रभु का वर्णन । पक्षान्तर में—राष्ट्रपति और वेदज्ञ विद्वान् के कर्त्तव्य । (११) विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (१२) सूर्य का मेघ-भेदनवत् आत्मा के देह में प्राण-मार्गों के भेदन का वर्णन । राष्ट्र में राजा-प्रजावर्गों का कर्त्तव्य । सप्त-सिन्धुओं के भेदन का रहस्य । (पृ० ११ –१२५)

सू० [६८]—बृहस्पति । हंसवत् भक्तों के कर्त्तव्य । भक्तों की प्रकट होती वाणिया का वर्णन । (२) अग्नियों के तुल्य विद्वानों का कार्य, सत्-मार्ग प्रकाशन । पुरोहित वा गुरुवत् प्रभु से सन्मार्ग की आशा । कर्मफल दाता प्रभु । (३) किसान के समान प्रभु का सृष्टि-वपन का कार्य । और खेतियों के समान पृथिवियों का वर्णन । पक्षान्तर में प्रभु का जंगम सृष्टि रचने का वर्णन । और जंगम-सर्गोत्पादक जंगम भूमियों का वर्णन । (४) परमेश्वर ज्ञान किस प्रकार देता है इस का वर्णन । मेघ से, वा पर्वत से जलधाराओंवत् ज्ञान धाराओं की प्राप्ति का वर्णन । शिल्पी द्वारा बनी नहर के समान शिष्यों में ज्ञान-धारा का प्रवर्त्तन । (५) प्रकाश से अन्धकार के तुल्य वा वायु के झोके से सेवार के तुल्य अज्ञान के नाश का उपदेश । (६) अन्नवत् शत्रुदल के ग्रसने

का उपदेश। पक्षान्तर में—मन्त्रों से ज्ञानप्राप्ति का उपदेश। (७) वेदवाणियों से गुह्य ज्ञान करने का उपाय। वेद से समस्त ब्रह्माण्डों के ज्ञान करने का उपदेश। (८) छोटे तालाब में तड़पते हुए मत्स्य के समान बद्ध आत्मा की स्थिति। उसको ज्ञान द्वारा मुक्त होने का उपदेश। उसके लिये वह ओंकार का ध्यान करे। मुक्ति में डण्डी से फल टूटने के समान बन्धन-छेद। (९) साधना से ऋतम्भरा के प्रति प्रकाशमय आत्मा का दर्शन, पोरु २ में मज्जा वा सींख के दृष्टान्त से आत्म-विवेचन का उपदेश। (१०) पतझड़ के दृष्टान्त से भोग आदि बन्धनों का त्याग—फिर बन्धन में आना। (११) मेघ को विद्युत् जैसे वैसे दिन रात्रि का अनेक प्रकार से विभाग। अध्यात्म में—आत्मा को गुणों द्वारा भूषित करना। और ज्ञानेन्द्रिय-वृत्तियों से आत्मा का बोध। राष्ट्रपक्ष में—राजा का कर्त्तव्य। विवेक पूर्वक न्याय-शासन। (१२) उपदेष्टा गुरु के कर्त्तव्य। (पृ० १२५–१३४)

सू० [६९]—अग्नि। संयमी के परमात्मविषयक सम्यङ् दर्शन उसी की यज्ञाग्निवत् प्रतिष्ठा। पक्षान्तर में—राजा के कल्याणकारी कार्य, प्रजा द्वारा उसका अभिषेक। (२) घृत से अग्नि के तुल्य तेजस्वी राजा का वर्णन। (३) तेजस्वी राजा की प्रशंसनीय नीति। वह प्रजा को ज्ञान-ऐश्वर्य आदि दे। (४) राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य। प्रजा के प्रति राजा के उदार दान। पक्षान्तर में प्रभु के उदार दान। (५) राजा के कर्त्तव्य। (६) राजा का विजय कार्य। (७) शक्तिशाली राजा का वर्णन। उसकी आचार्य से समता। (८) उत्तम गौ के तुल्य स्त्री और वाणी का वर्णन। (९) परमेश्वर की महान् महिमा। (१०) पिता पुत्र के तुल्य राजा का व्यवहार। (११) राजा की विनय दण्ड की व्यवस्था। (१२) प्रभु और राजा। (पृ० १३४–१४२)

सू० [७०]—(१) अग्नि। अग्नि के दृष्टान्त से गुरु के कर्त्तव्य।

(३) शिष्यों के कर्त्तव्य। (४) धान्यवत् प्रजाजन के विस्तृत होने का वर्णन। (५) स्त्रियों और सेनाओं का द्वारों के दृष्टान्त से वर्णन। (६) दिन रात्रिवत् गृहस्थ स्त्री पुरुषों का वर्णन। (७) विद्वान् उपदेष्टा का कर्त्तव्य। (८) इडा, आदि तीन देवियें और उनके कर्त्तव्य। (९) विद्वानों के बीच पालक स्वामी का कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्राणों के बीच आत्मा की स्थिति। (१०) वनस्पतिवत् शासक का कर्त्तव्य। (११) अग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य। (पृ० १४२–१४६)

सू० [७१]—ज्ञान। बुद्धि में वाणी की उत्पत्ति। प्राथमिक वाणी का उद्भव। उनके प्रेम वश अन्यों को उपदेश। (२) विद्वानों का विवेक से पवित्र वाणी का प्रयोग। वेदों का बुद्धिपूर्वक साक्षात्कार और प्रकाश। (३) संगति द्वारा वाणी को समझने का सिद्धान्त। (४) वाणी के ज्ञान में विद्वान् और अविद्वान् का भेद। वाणी और विद्वान् की पतिपत्नी से उपमा। (५) विद्वान् और अविद्वान् में भेद। स्थिरपीत विद्वान् का लक्षण। वाणी के पुष्प और फल। अविद्वान् की अफला अपुष्पा वाणी। अविद्वान् की मायावृत्ति। (६) सच्चे मित्र वेद के त्यागने वाले को दण्ड। (७) एक समान अध्येताओं में भी ज्ञान मार्ग में न्यूनाधिक ज्ञानी होने का कारण। (८) विद्यार्थियों को ज्ञान-वृद्ध्यर्थ परस्पर वाद-प्रतिवाद करने का उपदेश। (९) वेदज्ञान का लाभ न करने वालों का अनिष्ट जीवन (१०) विशेष विद्वान् का वर्णन। (११) वेदाभ्यासार्थ ४ ऋत्विजों के कार्यों का वर्णन। (पृ० १४९–१५६) इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः

सू० [७२]—देवगण। देवों, विद्वानों, दिव्य पदार्थों के जन्मादि सम्बन्ध में विवेचन। (२) लोहकार शिल्पी के दृष्टान्त से गुरु के कर्त्तव्य

एवं जगत्-उत्पादक प्रभु के सर्जन आदि दर्शन। (३) उषा के दृष्टान्त से असत् दशा से सत् का प्रादुर्भाव। (४) पृथिवी से स्थावर-जंगम सृष्टि के तुल्य प्रकृति से जगत्-सर्ग का वर्णन। (५) सूर्य से भूमि के तुल्य गुरु से विद्या का प्रादुर्भाव। सूर्य की पुत्री पृथिवी से अनेक जीवों की उत्पत्ति। प्रकृति से सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति का वर्णन। (६) प्रकृति-मय लोकों में जीवसर्ग। पक्षान्तर में—आचार्य कुल में शिष्यों का सर्ग और उनकी सदाचार से उन्नति। (७) मेघों के तुल्य सूर्यादि लोकों के कर्त्तव्य। सूर्य के किरणों के तुल्य देहधारियों के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में—विद्वानों का मेघादिवत् उदार कर्त्तव्य। (८) माता से पुत्रों के तुल्य प्रकृति से ८ प्रकृति-विकृतियों की उत्पत्ति। दूर ९ तक लोकों में देहवान् सर्ग की सृष्टि। पक्षान्तर में देह-प्रकृति के आठ पुत्र ८ प्राण। (९) आत्मा में ७ प्राणों की शक्ति, उसकी देह-धारक शक्ति का वर्णन। (पृ० १९७–१६३)

सू० [७३]—इन्द्र। माता के तुल्य वीरोत्पादक प्रजा के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में प्रकृति-पुरुष का वर्णन। (१) सेनापति की सेना से बढ़ने वाले वीरभटों के तुल्य माता से उत्पन्न गर्भों का वर्णन। (३) ऐश्वर्यवान् राजा के दो कर्त्तव्य। (४) राजा के शासनार्थ कर्त्तव्य। (५) सेनापति वा सभापति के कर्त्तव्य, न्याय शासन, दुष्ट दमन। (६) सूर्यवत् राष्ट्रपति के कर्त्तव्य। प्रजापालन और शत्रुनाश। (७) उसका दुष्ट-दमन का कार्य। (८) सूर्यवत् प्रजा-पालक का उदार शासन। (९) सूर्य-मेघ चक्रवत् राजा के राष्ट्रचक्र का वर्णन। राजा का आदर मेघवत् राष्ट्र में जलसेचन का प्रबन्ध। पक्षान्तर में परमेश्वर वा जगत्सर्जन। वेदद्वारा जगत् का ज्ञान-वर्णन। पक्षान्तर में देहों के बीच लिङ्ग शरीरों का वर्णन, जलाश्रित देह। देह बन्धन का ज्ञान से छेदन। रसाधार देह। (१०) मेघ की सूर्य से उत्पत्ति के तुल्य

सैन्य बल से राष्ट्र की उत्पत्ति। पक्षान्तर में प्रभु से जगत् की उत्पत्ति, विद्युत्-विद्या। (११) सूर्य की किरणों के तुल्य ज्ञानदर्शी विद्वान् उपासकों का वर्णन। उनकी प्रभु से प्रार्थना।

सू० [७४]—इन्द्र। दानशील और वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) किरणों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य। (३) मोक्ष-साधकों के कर्त्तव्य उनको दान देने का धर्म। (४) भूमि से फल, फ़सल चाहने वाले खेतिहरों के तुल्य वीरों और विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) सेनापति और गुरु के उत्तम लक्षण। (६) विद्युत् के तुल्य विजेता के कर्त्तव्य। प्रधान-पद योग्य पुरुष। (पृ० १७३—१७७)

सू० [७५]—नदियां। आप्तों, प्राणों का वर्णन। पक्षान्तर में—जलों के सम्बन्ध में शिल्पी का विशेष ज्ञान। जल-विज्ञान। और प्राण-विज्ञान। (२) इन्जीनियर के तुल्य प्रयाणार्थ मार्ग-निर्माण में राजा के कर्त्तव्य। (२) अध्यात्म में देह-शिल्प का वर्णन। प्रभु विषयक मन्त्र-योजना। (३) बरसाती जल-धाराओं और बहती नदियों के तुल्य सेनापति और उसकी शक्तियों का वर्णन। (४) माता और पुत्रवत् राजा प्रजा का कर्त्तव्य वर्णन। योद्धा राजा के तुल्य नायक का वर्णन। (५) गंगा आदि देहगत १० नाड़ियों का वर्णन, उनका विशेष विवरण। आत्मा रूप नदी सिन्धु। (६) आत्मा रूप सिन्धु का वर्णन। तृष्टामा आदि देहगत ८ नाड़ियों का वर्णन। (७) आत्मा का सिन्धु रूप से वर्णन। (८) आत्मा का युवति रूप से वर्णन। सिन्धु रूप से अनादि आत्मा का वर्णन। (पृ० १७७—१८६)

सू० [७६]—ग्राव गण। विद्वानों और वीर पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) वह प्रधान नायक के अधीन रहें। (३) नाना पदों पर योग्यों का स्थापन। (४) वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। दुष्टदमन, कष्ट-निवारण,

ऐश्वर्य-सम्पादन। (५) विशेष सामर्थ्यों के आदर का उपदेश। (६) मेघवत् विद्वान् उपदेष्टाओं के कर्त्तव्य। (७) मेघवत् वीर पुरुषों, विद्वानों के कर्त्तव्य। आत्म-साक्षात्कार। गोपालक के समान रस दोहन का उपदेश। मुखों से अन्नों के तुल्य समस्त उत्तम वचनों का सेवन। (८) प्रभु की उपासना। उपयोगी समस्त पदार्थों को उत्पन्न करने का उपदेश। (पृ० १७६—१९०)

सू० [७७]—मरुद्गण। वर्षा लाने वाले वायुगण के सदृश विद्वानों, प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (२) शस्त्र-निर्माण, लक्ष्मी-वृद्धि, वीरों की वृद्धि का उपदेश। किरणोंवत् वीरों के उद्योग करने की आवश्यकता। (३) सूर्यवत् वीरों के तेजस्विता के कर्त्तव्य। (४) जल धाराओं के समान वीर विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) रथ में जुते अश्वों के तुल्य वा रश्मियों से बद्ध वायुओं के तुल्य नियुक्त वीरों के कर्त्तव्य। (६) वीरों और वैश्य वर्गों को धन की प्राप्ति का उपदेश। (७) दानशील उदार पुरुष को उत्तम लाभ और उत्तम मान-पद प्राप्ति। (८) रक्षक, सर्वशान्तिदायक आदित्य विद्वान् तेजस्वियों के कर्त्तव्य। (पृ० १९१—१९५)

सू० [७८]—मरुद्गण। विद्वानों और वीरों के कर्त्तव्य। वे निष्पाप हों। (२) वे तेजस्वी हों, उत्तम भूषण पहनें, नियम और समय के पाबन्द हों, (३) वायुवद् बलशाली, अग्नि-ज्वालाओं के तुल्य तेजस्वी, और शुभ ज्ञानदाता हों। (४) चक्र के अरों के समान परस्पर बन्धु, ईश्वरोपासक हों, (५) वे नाना विद्याओं में पारंगत, सर्वपोषक, विनयी हों, (६) मेघों के तुल्य उनके कर्त्तव्य। 'सिन्धु-मातरः' का रहस्य। बालकों के समान उनके धर्म। पक्षान्तर में देहगत प्राणों का वर्णन। (७) प्राभातिक रश्मियों के तुल्य वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। वे गुणी तेजस्वी, शुभकारी, ज्ञानी, वेगवान्, दूरदेशगामी हों (८) उनसे ऐश्वर्यों, ज्ञानों और मैत्री-सद्भाव की प्रार्थना। (१९६—२००)

सू० [७९]—अग्निः। अग्नि, जाठरअग्नि, व्यापक आत्मा और परमात्मा का श्लेष से वर्णन। जड़ जगत् में आत्मा की अद्भुत आश्रयकारी शक्तियों का वर्णन। नश्वर देहों में अविनश्वर आत्मा के दर्शन। अग्नि तत्त्व में ताप और विद्युत् दो शक्तियां। (२) शरीर में स्थित वैश्वानर आत्मा की अद्भुत महिमा। यज्ञवत् वैश्वानर अग्नि में आहुति। पक्षान्तर में विशाल वैश्वानर का वर्णन। उसमें महान् यज्ञ के दर्शन। (३) शिशु के तुल्य आत्मा का वर्णन, पक्षान्तर में साधक योगी के आत्मा का वर्णन। (४) आत्मा का अद्भुत वर्णन। अज्ञेय प्रभु। आत्मा की रहस्यमय गति। (५) कृपालु, परमेश्वर की जीवों के प्रति अद्भुत दया-युक्त व्यवस्था। परमेश्वर का सहस्र रूप। पुरुषसूक्तोक्त वा गीतोक्त विराट् का व र्न। (६) परमेश्वर के उग्र रूप को देखकर भक्त को जिज्ञासा। परमेश्वर की संहारक शक्ति का दर्शन। गीता के ११ वें अध्याय में कहे विराट् की उग्र रूप से तुलना। (७) सूर्य के समान आत्मा का वर्णन। पक्षान्तर में अग्नि और वीर तेजस्वी का चन्द्र के तुल्य वर्णन। (पृ० २००–२०८)

सू० [८०]—अग्निः। प्रभु परमेश्वर आत्मा और वीर शासक पुरुष का अग्निवत् श्लिष्ट वर्णन। सर्वधारक अग्नि, सूर्यवत् सर्वधारक प्रभु सर्वोत्पादक है। पक्षान्तर में चिति शक्ति और वाणी आदि का धारक वेदादि वचनों से श्रोतव्य आत्मा। (२) ज्ञानी की वाणी कल्याणकारिणी, हो, तेजस्वी पुरुष और प्रभु सर्वदुष्ट-नाशक हैं। पक्षान्तर में देहगत तेज, ओज रूप अग्नि का वर्णन। (३) सर्वरक्षक, मृत्युनाशक प्रभु और देहस्थ जाठर अग्नि का वर्णन। (४) तेजस्वी अग्रणी प्रधान पुरुष के कर्त्तव्य। और देहस्थ वीर्याग्नि का वर्णन। (५) सर्वस्तुत्य, नित्य स्मरणीय, सर्वकाल-प्रार्थनीय और सर्वध्यानास्पद प्रभु। पक्षान्तर में भौतिक अग्नि के नाना वैज्ञानिक उपयोगों का वर्णन। (६) सर्वोपास्य

प्रभु, वेदवाणी का उपदेष्टा। पक्षान्तर में अग्नि वा तेज की सर्वत्र उपासना. सर्वत्र अग्नि का साक्ष्य। वेदरूप सर्वश्रेष्ठ मार्ग। विद्वान् सत्कार योग्य है। (७) वेद से रक्षा की याचना। पक्षान्तर में शक्तिशाली अग्नि, उसकी पालाशी अरणियों से उत्पत्ति (पृ० २०८–२१४)

सू० [८१]—विश्वकर्मा। सबका दाता, सर्वपालक, सर्वप्रेमी, सर्वव्यापक, विश्वकर्मा परमेश्वर—सायण मतानुसार ईश्वर का प्रलय रूप सर्वमेध यज्ञ। एक यास्कोक्त इतिहास के अनुसार सायणीय अर्थ। उसमें दोष। यास्क वचन का दुर्ग-सम्मत अभिप्राय। आहुति का अर्थ आत्म-दर्शन। तदनुसार मन्त्रार्थ। सर्वमेध की व्याख्या। गीता, और उपनिषदादि में प्रोक्त आत्म-दर्शन की संगति। (२) जगत् के आश्रय, और सर्ग तथा मूलकारण आदि के सम्बन्ध में प्रश्न। (३) सर्वकर्त्ता परमेश्वर का स्वरूप। वह प्रभु सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक, अद्वितीय विश्वकर्मा है। (४) आकाश भूमि और जगत् के उपादान कारण और सर्वाध्यक्ष विषयक प्रश्न। (५) प्रभु का सर्वमेध यज्ञ सब जीवों को कर्मानुसार देह, सुख, कर्म फलादि देना ही है। परमेश्वर के तीन धाम, तीन प्रकार के नाम। (६) परमेश्वर की जगत् रूप अद्भुत आत्माहुति। (७) वाचस्पति प्रभु का स्मरण, ध्यान, प्रार्थना। सर्वजगत् का उत्तम शिल्पी प्रभु। (पृ० २१४–२२३)

सू०[८२]—सब जगत् का कर्त्ता परमेश्वर। उसी की शक्ति से भूमि, आकाश स्थूल जगत् की स्थिति और वृद्धि। पृथिवी आदि का क्रमशः सर्जन। (२) विश्वकर्मा, विश्वस्रष्टा का वर्णन। पक्षान्तर में देहाश्रित विश्वकर्मा आत्मा का वर्णन। विश्वकर्मा आदित्य का वर्णन। (३) परमेश्वर पिता, उत्पादक, व्यवस्थापक सर्वज्ञ, अद्वितीय, अविज्ञेय सब का लक्ष्य है। (४) ऋषिजनों का सर्वोपास्य प्रभु में समस्त भूत-दर्शन रूप सर्वमेध।

ऋषिजनों का प्रभु में चित्त-समर्पण। (५) सर्वाश्रय, सर्वश्रेष्ठ प्रभु। (६) सर्वाश्रय प्रभु एक, अजन्मा है। वही सब प्रकृति और समस्त दिव्य लोकों और शक्तियों का आश्रय। (७) व्यापक, अन्तर्यामी, अज्ञेय प्रभु। (पृ० २२४–२२९)

सू० [८३]—मन्यु। प्रतापी तेजस्वी स्वामी के सहाय के कर्त्तव्य। (२) मन्यु ज्ञानी, सस्तंभक, सर्वमान्य देव का स्वरूप। (३) अति बलशाली, मन्युदेव, प्रभु' अध्यात्म में इन्द्र मन्यु आत्मा। (४) मन्यु सेनापति का वर्णन। पक्षान्तर में संकल्प मात्र से जगच्चालक प्रभु। (५) परम ज्ञानी, प्रभु स्वामी के प्रति विरही भक्त की विरहवेदना-युक्त विनय भाव। (६) सर्वदण्डक, सर्वपोषक, सर्वपालक प्रभु के प्रति भक्त का ममत्व। (७) भक्त का प्रभु के दर्शनों के लिये उतावलापन, और समान सख्यभाव (पृ० २३०–२३३)

सू० [८४]—मन्यु। सेनापति का वर्णन। अध्यात्म में रस स्वरूप प्रभु का वर्णन। (२) सेनापति का कार्य सैन्यसंञ्चालन शत्रु सेनाओं का दूरीकरण। (३) वह सब को वश करे। (४) युद्ध के लिये सबको उत्साहित करे। (५) शक्तिशाली पुरुष अध्यक्ष, सर्वप्रिय, सब शक्तियों का स्रोत हो। (६) सर्वातिशयी बली, सर्वस्तुत्य, युद्धकुशल हो। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (७) वह प्रजा को ऐश्वर्य दे, शत्रुओं को भय दिखावे। (पृ० २३३–२३७)

सू० [८५]—(१-५) सोम। सर्वाधार सत्य। सत्य के आश्रय ही सोम की स्थिति। गृहस्थ का आधार सत्य और ऋत। (२) सर्वाश्रय सोम। वीर्य और शक्ति की महत्ता। सर्वोत्पादक सामर्थ्य सोम। (३) सोमपान का महत्व। वेदज्ञान सोमपान। (४) ब्रह्मचारी बधूयू, सोम। उसके आश्रय पर गृहस्थ। ब्रह्मचारी का रूप। (५) चन्द्रवत

सोम विद्वान् का वर्णन। (६–१६) सूर्या का विवाह। बधू के साथ देने योग्य सर्वश्रेष्ठ शिक्षा और दहेज, बधू की ओढ़नी। (७) सूर्या बधू के उत्तम अलंकरण। (८) बधू के योग्य पति की भेट, व्यवहार और दोनों का अश्वी होने का रूप। (९) बधू की कामनावान् पुरुष सोम। पिता कन्या को कब दान करे। (१०) बधू के पतिगृह में जाने के लिये उचित रथ मन। (११) उसके रथ का अलंकारिक रहस्यमय वर्णन। (१२) मनोमय रथ का वर्णन। (१३) बधू की विदाई। (१४) सूर्या का त्रिचक्र रथ। (१५) त्रिचक्र रथ के चक्र विषयक प्रश्न। (१६) तीनों चक्रों का स्पष्टीकरण। (१७) आदरणीय जनों के आदर-भाव प्रदर्शन। (१८) सूर्य चन्द्र वा दिन रात्रि का दो बालकों के तुल्य तथा उनके समान स्त्री-पुरुषों का वर्णन। विवाह के समय की परिक्रमाओं के तात्पर्य का स्पष्टीकरण। (१९) चन्द्र के समान वर तथा आत्मा का वर्णन। पक्षान्तर में राजा और बालक का वर्णन। (२०) उषा सूर्यवत् नव वधू को विवाह की आज्ञा और उपदेश। गृहस्थ का वर्णन। मन्त्र की पति-पत्नी दोनों के प्रति योजना। (२१) पुरुष को कन्या-ग्रहण करने का आदेश। विश्वावसु गन्धर्व का स्पष्टीकरण। (२२) पुरुष कैसी कन्या को ग्रहण करे? भिन्नगोत्र में विवाह का उपदेश। (२३) सुदृढ़ दाम्पत्य का उपदेश। (२४) पति द्वारा वधू को पितृपाश से मुक्त कर पतिगृह में स्थापन। (२५) स्त्री का वरुणपाश और उससे मोचन। पति का दृढ़तर बन्धन। (२६) वधू का गृहपत्नी होने का अधिकार, पति के साथ पाणिग्रहण कर गमन। (२७) गृहस्थ के कर्त्तव्यों का उपदेश। पति-पत्नी का देह संसर्ग, और वार्धक्य तक परस्पर मिलकर रहने का उपदेश। (२८) यज्ञ द्वारा पति-पत्नी का प्रेम-बन्धन और संसारिक बन्धन का उपदेश। पक्षान्तर में—स्त्री पुरुष के परस्पर सम्बन्धित होने का काल स्त्री के रजो-

दर्शन के अनन्तर ही है। (२९) विवाह बन्धन में बन्धने का ठीक समय और विवाह काल में करने योग्य कार्यों का निर्देश। स्त्री-सहवास के पूर्व स्त्री के शरीर शोधन की अति आवश्यकता। अविवेक से हानियें। दूषित स्त्री-देह से भयंकर रोगादि की संभावना। (३०) रजोधर्म से हुई स्त्री के शरीर तथा वस्त्रादि से स्पर्श करने का निषेध। उस काल में स्त्री शरीर तथा उसके वस्त्रादि के स्पर्श-संसर्गादि से हानियें। (३१) पुरुषादि से आने वाले स्त्री शरीर वा गर्भाशय द्वारा आने वाले परस्परिक रोगों से बचने का का उपदेश। (३२) दम्पती की रक्षा का उपदेश। (३३) विवाह पर बधू के सौभाग्य आशीर्वाद की प्रार्थमा। (३४) बधू के अभोग्य देह के दोष, उसका प्रतिविधान। (३५) सूर्या सवित्री, वा वधू के देह के तीन रूप। (३६) पाणि ग्रहण के मन्त्र। वर का वधू का हस्तग्रहण करते हुए वधू ग्रहण करने और आजन्म-सम्बन्ध का उद्घोषणा। (३७) नर के लिये बीजवपनार्थ भूमि स्त्री, उसका कमनीय कल्याणतम रूप परस्पर कर्षणा। (३८) अग्निवत् विद्वान् वा प्रभु की साक्षिता में बधू का परिग्रह। (३९) ऋतुकालानुसार पत्नी का पति से पुनः संसर्ग का उपदेश। (४०) कन्या को सोम, गन्धर्व और अग्नि की प्राप्ति। इसका स्पष्टीकरण। (४१) सोमादि का उपरोक्त गन्धर्वादि को देने का अभिप्राय। (४२) वर वधू को आयु भर एकत्र रह कर पुत्र पौत्रादि सहित सुखी जीवन बिताने का उपदेश। (४३) गृहस्थ को प्रजापति के कर्त्तव्यों का उपदेश। वधू को पतिगृह में प्रवेश करते हुए सबके प्रति शान्तिदायक होने का उपदेश। (४४) पत्नी को कर्तव्य का उपदेश। (४५) वेद की १० पुत्रोत्पत्ति करने की आज्ञा। (४६) नववधू की सम्राज्ञी होने की प्रतिष्ठा। (४७) वर-बधू का परस्पर एक-हृदय और एकांग होने की प्रार्थना। (पृ० २३७—२६६) इति तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [८६]—वृषाकपि-सूक्तम् । वरुण । सर्वोपरि परमेश्वर की जगत्सर्जन रूप महिमा का वर्णन । (२) भक्त के लिये प्रभु का असह्य विरह । सर्वोत्कृष्ट, सर्वसुखदाता प्रभु । (३) भक्त के प्रति उदार दयालु प्रभु । (४) रक्षक प्रभु और जीव में देह का बन्धन । (५) देह बन्धन के नाश और सम्यग्-ज्ञान में प्रकृति की कारणता । (६) प्रकृति का उत्कृष्ट ऐश्वर्य, और पक्षान्तर में स्त्री का परम सौभाग्य । परमेश्वर का उत्कर्ष । (७) जीव के देह की अद्भुत रचना से ईश्वर के उत्कृष्ट कौशल का स्मरण । (८) प्रकृति का स्त्री तुल्य बन्धन होना । (९) जीव, प्रकृति और प्रभु के पारस्परिक सम्बन्ध । (१०) परमेश्वर का प्रकृति में बीजवपन । पक्षान्तर में नारी माता का पूज्य भाव । (११) स्त्री का सौभाग्य और उसकी प्रकृति से तुलना । (१२) जगत्-सर्ग में जीवात्मा की आवश्यकता । जगत् सर्ग में परम प्रभु की आनन्दप्रदता से उसका सबसे अधिक उत्कर्ष । (१३) प्रभु का सर्वोपरि उत्कर्ष । (१४) अध्यात्मिक १५ प्राण और अंगों का एक साथ परिपाक । (१५) इन्द्र, वृषभ, सर्वशासक, सर्वोपास्य प्रभु का वर्णन । (१६) उत्कृष्ट और निकृष्ट पुरुष के लक्षण । (१७) जीवात्मा की प्रभु को प्राप्ति । (१८) प्रभु की साक्षात् प्राप्ति । (१९) देह-बन्धन की जंगल से उपमा । (२०) अति समीप प्रभु की प्राप्ति का उपदेश । (२१) प्रकृति और प्रभु का मिलकर भोग्य जगत् को बनाना । (२२) प्रभु-दया से अमर पद की प्राप्ति । (२३) बुद्धिशक्ति से २० अंगुलियों के तुल्य २० प्राणों का चालन और प्रकृति से २१ विकृतियों की उत्पत्ति । 'मानवी पर्शु' का रहस्य । (पृ० २६६–२८१)

सू० [८७]—रक्षोहा अग्नि । जंगल में अग्नि के तुल्य जगत्-जाल

में रक्षक प्रभु की प्रार्थना। (२) प्रजानाशक दुष्ट के नाशार्थ शस्त्रादि-सम्पन्न शासक से विनीति। (३) सेनादि से दुष्टों के दमन करने की प्रार्थना। (४) राजा को महास्त्रों से दुष्टों के नाश का उपदेश। (५) दुष्टों के अंग-छेदनादि दण्ड करने का आदेश। (६) सेनापति को आकाश भूमि आदि सर्वत्र दुष्टों के नाश का उपदेश। (७) स्वामी को दुष्ट जनों से प्रजा को बचाने का कर्त्तव्य। दुष्टों को बुरी मृत्यु से पीड़ित करने वा मारने का आदेश। (८) अपराधियों के अपराध घोषणा सहित दण्डित करने का आदेश। (९) राष्ट्र-रक्षा और आत्म-रक्षा का उपदेश। (१०) सब पर राजा की दृष्टि रखने और दुष्टों को अन्न, जन और मन तीनों बलों से नाश करने का उपदेश। (११) प्रजा के हितार्थ असत्यशील दुष्टों का दमन। (१२) न्याय-बल से अनृतवादी, आदि दुष्टों का दमन। (१३) वाणी द्वारा मर्म-पीड़ादायी दुष्टों को हृदय-मर्मवेधी दण्ड का विधान। (१४) युद्धादि से प्रजा-पीड़कों के नाश का उपदेश। मूलदेवों का रहस्य। (१५) पापाचारी, और वाणी से पीड़ा देने वाले को दण्ड विधान। (१६) पीड़ा देकर स्वयं ऐश्वर्य भोक्ता को दण्ड। (१७) प्रजाजनों को पीड़ित करने वाले को दण्ड कि वर्ष भर उसे दूध न मिले, वह पीवे तो अग्नि-दण्ड। (१८) दुष्टों गोमूत्रादि पान का दण्ड। उनको अन्धेरी कोठड़ी का दण्ड। (१९) दुष्टों को कभी विना दण्ड दिये न छोड़ने का आदेश। (२०) सब ओर से प्रजा-रक्षा और दुष्ट-नाश का आदेश। (२१) प्रजा-रक्षा मित्ररक्षा का उपदेश। (२२) दुष्टपीड़क राजा के शरण में प्रजा की स्थिति। (२३) दुष्ट शत्रु का मूलोच्छेद करने का उपदेश। (२४) अन्यों को तुच्छ समझ कर कष्ट देने वालों को दण्ड देने और राजा को सावधान रहने का उपदेश। (२५) उनको विविध उपायों से दण्डित करने का आदेश। (पृ० २८१—२९३)

सू० [८८]—सूर्य, वैश्वानर। किरणों के जलादान के दृष्टान्त से देह में प्राणों का अन्नदान और मुमुक्षुओं का प्रभु में आत्मदान का वर्णन। (२) दिन और रात्रि के अन्धकार के तुल्य तमस् या अव्यक्त जगत् के लय होने का वर्णन। जगत्-सर्जक और संहारक प्रभु के आश्रित समस्त लोक। (३) महान् व्यापक अग्नि, प्रभु का वर्णन। (४) जगत्-सर्जक, संहारक जातवेदा अग्नि। (५) व्यापक सर्वोपरि पूज्य महान् अग्नि की स्तुति। (६) सर्वमूलाश्रय अव्यक्त व्यापक प्रभु का वर्णन। (७) सर्वान्नग्राही वैश्वानर अग्नि का वर्णन। (८) यज्ञाग्निवत् देहाग्नि में वैश्वानर यज्ञ, (९) महान् सर्वाश्रय अग्नि का वर्णन। (१०) अग्नि के तीन रूप। (११) महान् सूर्य प्रभु। उसकी प्रकृति से संगति और समस्त लोकों की उत्पत्ति, (१२) उषाओं के निर्माता सूर्य के समान कल्पों का प्रारम्भक प्रभु। (१३) चेतन आत्मा का यज्ञाग्निवत् प्रतिपादन। (१४) सर्वोपरि शासक महान् प्रभु की स्तुति। (१५) आत्मा के लिये जगत् में दो मार्ग देवमार्ग और मर्त्य मार्ग। उनकी उपनिषदादि प्रोक्त देव मार्ग और पितृमार्ग से तुलना। (१६) माता पिता के बीच बालक के तुल्य भूमि आकाश के बीच व्यापक प्रभु का वर्णन। (१७) विवादास्पद प्रभु के सम्बन्ध में उसके साक्षात् ज्ञाता ही बतला सकते हैं। (१८) अग्नियों, और उषाओं और सूर्यों के सम्बन्ध में प्रश्न और समाधान। (१९) आपत्कालिक यज्ञाग्निवत् आत्म-साक्षात्कार तक आत्मोपासना का प्रतिपादन। (पृ० २९३–३०४)

सू० [८९]—इन्द्र और सोम। सर्वाध्यक्ष सम्राट् के तुल्य सर्व व्यापक, सर्वशक्तिमान्, महान् प्रभु का वर्णन। अध्यात्म में—आत्मा का वर्णन। (२) यन्त्रों के चालक शिल्पी के तुल्य जगत्-सञ्चालक सूर्यवत् प्रभु का वर्णन। (३) उपास्य प्रभु, एकरस सर्वव्यापक, अमित, महान् सर्वपालक, सर्वप्रिय प्रभु। (४) सर्वप्रेरक सर्वधारक प्रभु। (५) दुष्ट-

दण्डक, तेजस्वी, बलशाली, सर्वोत्पादक, सर्वोच्च महान् प्रभु । (६) सब से महान् शासक प्रभु । (७) परशु के समान महान् आत्मा का वर्णन । (८) परम धनी प्रभु । तलवार के तुल्य प्रभु पाप-नाशक । (९) सर्वोपरि शासक प्रभु के दण्ड का मार्ग कौन २ व्यक्ति हों । (१०) सर्वोपरि स्वामी प्रभु । (११) सबसे महान् प्रभु । (१२) वीर योद्धा के उत्तम शस्त्रवत् प्रभु की शक्तियों का आलंकारिक वर्णन । (१३) सूर्य के समान तेजस्वी की स्थिति । (१४) उसकी दुष्ट-दमनी शक्ति का प्रयोग । (१५) राजा को शत्रु दमन के कार्य आवश्यक । (१६) सर्व-स्तुत्य प्रभु । (१७) प्रभु से विनय कि उसकी महिमाओं के ज्ञान का उत्तम फल । (१८) उसकी स्तुति करनी आवश्यकीय । (पृ० ३९५–३१०)

सू० [९०]—पुरुष सूक्त । महान् पुरुष का वर्णन । (१) सर्वोपरि महान् प्रभु । (२) सर्वोपरि सर्वकारण पुरुष परमेश्वर (३) सबसे महान् अविनाशी प्रभु । (४) सर्वव्यापक, सर्वस्तंभक, धारक पुरुष । (५) ब्रह्माण्ड रूप विराट् के ऊपर पुरुष प्रभु । (६) महान् पुरुष का यज्ञ । (७) महान् पुरुष की यज्ञोपासना । (८) सर्वोत्पादक, सर्व-रचयिता प्रभु । (९, १०) वेदों का स्रष्टा प्रभु । (११, १२) वर्णमय पुरुष की कल्पना । (१३– १४) विराट् पुरुष की अंग कल्पना । लोक-सम्मित पुरुष । पुरुष सम्मित लोक, पुरुष का जगन्मय देह । (१५) देवयज्ञ का वर्णन । (१६) यज्ञ द्वारा प्रभु की उपासना । (पृ० ३१४–३२३)

सू०[९१]—अग्निः । अग्निवत् परमेश्वर और आत्मा का वर्णन । (२) अतिथिवत् परमेश्वर का वर्णन । (३) सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञानी, सर्वपोषक अद्वितीय । (४) अग्निवत् स्वयं प्रकाश आत्मा । गर्भ में प्रकट जीव के वा काष्ठ में अग्नि के तुल्य हृदय में आत्मा का प्रकट भाव ।

(५) मेघस्थ विजुलियों वा प्रभात की कान्तियों के तुल्य, आत्मा की ज्ञान-प्रवृत्तियां। (६) ओषधियों, मेघादि के दृष्टान्त से जीव के गर्भ में आने का वर्णन। (७) अग्नि के तुल्य, आत्मा का वर्णन। (८) तेजोमय, ज्ञानमय, प्रभु का वरण। उसीसे प्रार्थना। (९) सर्वस्तुत्य प्रभु। (१०) विद्वान् में समस्त ऋत्विक् पन। उसी प्रकार आत्मा और प्रभु में भी ऋत्विग् के गुण। (११) प्रभु की कृपा के पात्र। (१२) हमारी बुद्धि और वाणियों का लक्ष्य प्रभु। (१३) प्रभु के प्रति प्रेम का उद्रेक। पत्नी-प्रेमवत् प्रभु के प्रति अनन्य प्रेम। (१४) सर्वपालक प्रभु के प्रति आत्म-समर्पण। (१५) यज्ञाहुतिवत् तेजस्वी में कर आदि देना।

सू० [११]—विश्वेदेव। अग्नि के दृष्टान्त में प्रभु का वर्णन। (२) जाठराग्निवत् चराचर का अत्ता और प्राणवत् प्रभु। (३) सत्यवाणी, सत्य ज्ञानमय प्रभु के ज्ञान और वाणी का चिन्तन कर्त्तव्य। उसमें आहुति, घोर तपस्वियों को अमृतत्व प्राप्ति। (४) सर्वोपरि शासक प्रभु। (५) विशाल रूप (प्रथम) प्रभु और देह में रुद्र प्राण। (६) देहगत रुद्र गण प्राण। (७) सर्वमनोरथ सर्वस्तुत्य रक्षक, (८) प्रभु के ऐश्वर्य, सामर्थ्य सर्वोपरि। (९) सर्वमनोरथ पूर्वक शक्तिशाली प्रभु। उससे विनय। (१०) गुरु परमेश्वरादि के जीव में अनेक सम्बन्ध। विद्वानों और पञ्चभूतों में तुलना। गुरुजनों के शिष्यों के प्रति कर्त्तव्य। (११) पूजा करने योग्य व्यक्ति। (१२) सर्वव्यापक प्रभु से अनेक प्रार्थनाएं। (१३) सर्वपोषक प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (१४) सर्वोपरि शास्ता प्रभु की स्तुति। (१५) सर्वप्रथम उपदेष्टा गुरु परमेश्वर। उसके द्रष्टा विद्वान् जन ही सन्मार्ग-प्रेरक है। (पृ० ३३१–३३९)

सू० [९३]—विश्वेदेव। स्त्री पुरुषों को उत्तम होने का उपदेश। वे बलवान्, रक्षक, शत्रुविजयी पुरुष की अनेक उपायों से रक्षा करें। (२) ज्ञान के लिये ज्ञानी लोगों की सेवा शुश्रूषा करें। (३) सदा मान-सत्कार के पात्र हों। (४) स्तुति और अमर यश के पात्र जन। (५) देह में चन्द्र सूर्यवत् दो प्राणों की गति। उसी प्रकार गृहस्थ में स्त्री पुरुष हों। (६) श्रेष्ठ स्त्री पुरुष सब की रक्षा करें, अन्यों को दुःखों से पार करें। (७) प्रजा को सुख देने वाले जन। (८) महान् प्रभु का वर्णन। उसका सर्वातिशायी आनन्द और बल है। (९) प्रभु से प्रार्थना, हम पापों से लज्जालु न हों। हम पर प्रभु का सत् नियन्त्रण हो। (१०) प्रमुख राजा, प्रजा और नेताओं के कर्त्तव्य। वे ज्ञान, प्रेम, धनादि की वृद्धि करें। (११) प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (१२) सूर्य के प्रकाश के तुल्य प्रभु-विषयक ज्ञान बढ़े। रथ के तुल्य हमारा शरीर दृढ़ हो। (१३) वाणी, उदारता वा अर्थसम्पत् से युक्त हों, पौरुष अविच्छिन्न हो। (१४) धनवानों में हम सदा ईश्वर की चर्चा किया करें। (१५) दैहिक ७७ केन्द्रों के ज्ञान का आदेश। (पृ० ३३९–३४५)

सू० [९४]—ग्रावा। विद्वान् जन। विद्वानों के कर्त्तव्य। वे भद्र वाणी बोलें। गुरुओं से ज्ञान प्राप्त करें। (२) सात्विक यजमान के दिये अन्न का भोग करें। (३) मुख से मधु रस के तुल्य वे ज्ञान-मधु का संग्रह करें। वेद का निरन्तर अभ्यास करें। (४) परमेश्वर की भक्ति में मग्न रहें, सब के साथ हर्षित हों। (५) सूर्य की किरणों के तुल्य सन्मार्गदर्शी, सदा प्रसन्न, और बल-वीर्यवान् हों। (६) प्राणों का वर्णन। वीरों के साथ प्राणों की तुलना। (७) दश अंगुलियों वा अंगों के समान दश प्राण। (८) यन्त्राधिपतियों के तुल्य प्राणों के कार्य। पक्षान्तर में विद्वानों के कर्त्तव्य। (९) विद्वानों का वाणी द्वारा आत्म-स्वरूप की प्राप्ति। उनकी वर्षक मेघ से तुल्यता। (१०) आत्मा के अमरत्व

के हेतु वीरों विद्वानों को अमर रहने का उपदेश। उनको सदाचार का उपदेश। (११) विद्वानों के उत्तम गुण। संशय मेटें, संगठित रहें, अनथक काम करें। न घबरावें, सदा निस्पृह हों, सदा काम में लगे रहें। (१२) विद्वानों और वीरों के दलपतियों के कर्त्तव्य। (१३) वे उपदेश के दाता हों। कृषकों के तुल्य उत्तम गुणों का बीज बोएं। उत्तम फल प्राप्त करें। (१४) सदा ईश्वरसेवी और बालकवत् निष्पाप, सुप्रसन्न, निष्प्रपंच रहें। (पृ० ३४५–३५३) इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [९५]—पुरूरवा और उर्वशी। सेनापति प्रजा और राजा का पति-पत्नी के तुल्य संवाद। वे परस्पर मन्त्रणा कर के भविष्य के कार्य किया करें। (२) उषा के दृष्टान्त से वरवर्णिनी के कर्त्तव्यों का वर्णन। पक्षान्तर में—सेना के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) सेनापति कैसा हो? (४) उषा के तुल्य वधू के कर्त्तव्य। (५) सेना नायक का वर्णन। (६) वधू के कर्त्तव्य। उसके तुल्य सेना के कर्त्तव्य। (७) रणनायक के कर्त्तव्य। (८) सेना-सेनानायक के कर्त्तव्य। (९) सेना, सेनापतियों के तुल्य नायक और वधू आदि के कर्त्तव्य। (१०) विद्युत् के समान सेना और वधू का वर्णन। सेना का सेनापति के प्रति हित वचन। (१२) पिता माता पुत्रादि के कर्त्तव्यों के तुल्य सेनापति, सेना और राजा राष्ट्रादि के कर्त्तव्यों का वर्णन। (१३) प्रयाणोद्यत सेनापति के प्रति सेना का हित वचन। (१४) सेनापति को प्रमाद न करने का आदेश। (१५) उसे दुष्ट कुटिल पुरुषों से सावधान रहने का उपदेश। (१६) सेना का नायक के प्रति अपना कर्त्तव्य वर्णन। (१७) सेनापति की प्रतिज्ञा वा कर्त्तव्य। (१८) राजा वा राष्ट्रपति को पदानुरूप उपदेश। (पृ०३५३–३६२)

सू० [९६]—हरि-स्तुति। रथ के दो अश्वों के तुल्य प्रभु के दो रूपों की स्तुति। प्रभु के दो रूप ज्ञानमय और तेजोमय। (२) सर्वाश्रय प्रभु की स्तुति। (३) परमेश्वर तेजस्वी 'दुष्ट' दण्डकर्त्ता रूप। (४) प्रभु का कमनीय रूप। प्रभु हरि-शिप्र। (५) हरिकेश प्रभु का कमनीय रूप। (६) सर्वस्तुत्य प्रभु। (७) प्रभु और भक्तों का पारस्परिक आकर्षण, (८) सूर्यवत् तेजस्वी, सर्वरक्षक प्रभु। (९) प्रभु का व्यापक साम्राज्य। (१०) जगद्-भवन का स्वामी प्रभु। (११) ज्ञानप्रद प्रभु। (पृ० ३६२—३६९)

सू० [९७]—ओषधि-स्तुति। तीन युगों, तीनों ऋतुओं में उत्पन्न ओषधियों के ज्ञान का उपदेश। उन देह के ७०० मर्मानुसार उनके ७०० तेज। (२) ओषधियों के सैकड़ों सामर्थ्यों से रोगनाश का उपदेश। (३) रोगनाशक ओषधियों को सदा हरा भरा, तैयार रखने का उपदेश। पक्षान्तर में—अश्वसेनाओं के कर्त्तव्य। (४) ओषधियों का रश्मियों के तुल्य रोगनाशक गुण। पक्षान्तर में—शत्रुनाशक सेनाओं का वर्णन। (५) ओषधियों का आश्रय और जीवन का वैज्ञानिक रहस्य। सूर्यरश्मि आदि द्वारा प्रकाश वा रसादि को ग्रहण करने से ही उनमें रोगनाशक सामर्थ्य है। पक्षान्तर में—सेना के बल का वर्णन। (६) राजसभा में राजाओं के तुल्य देह में ओषधियों की स्थिति। भिषक् विप्र का लक्षण। (७) आरोग्यदायक ओषधियों के ४ प्रकार। अश्वावती, सोमवती, ऊर्जयन्ती, ओजस्विनी। पक्षान्तर में—राष्ट्ररक्षक सेना का गुण। (८) गोष्ठ में गौओं के तुल्य देह में ओषधियों का रस-बलाधायक गुण। (९) ओषधियों के रोगनाशक सामर्थ्य का तात्त्विक विवेचन। चोरों, डाकुओं के समान वेग से ओषधियों का रोगों पर आक्रमण करके देह को नीरोग करने का वर्णन। (११) ओषधियों के प्राप्त करने से रोगों का शिकारी से भयभीत पक्षियों के समान भागना। (१२) ओषधियों का

शरीर में व्याप कर रोगों को मध्यस्थ बलवान् द्वारा शत्रुवत् नष्ट करना। (१३) रोग का अपने तीव्र लक्षणों सहित नाश होना। (१४) ओषधियों का परस्पर रक्षक-पोषक होना। (१५) फलसहित, फलरहित, सपुष्प और अपुष्प आदि अनेक ओषधियों का वैद्यादि द्वारा रोग नाशक प्रयोग होना। (१६-१७) रोगों के विकट लक्षणों से मोचक ओषधियां का प्रयोग। शपथ्य, वरुण और देवकिल्विष तथा यम के पड्वीश का रहस्य। ओषधि शब्द का निरुक्तयर्थ। ओषधियों का रोगनाशक सामर्थ्य। (१८) उत्तम ओषधि का चुनाव। (१९-२०) ओषधि को प्राप्त करने और प्रयोग के समय विशेष सावधानी की आवश्यकता। पक्षान्तर में—सैन्य प्रयोग में सावधानता की आवश्यकता। (२१-२२) उत्तम ओषधियों के ज्ञान और संग्रह में उद्योग करने का उपदेश। (पृ० ३६९-३७८)

सू० [९८]—देवगण। विद्वान् राजा, स्वामी, प्रभु आदि के सूर्यवत् कर्त्तव्य वर्णन। (२) भक्त को देव के प्रति दत्तचित्त होने का आदेश। पक्षान्तर में देवापि-मेघ विद्युत् आदि विद्या का उपदेश। (३) प्रभु से सन्मार्ग दर्शन और सुखद वेदवाणी की प्रार्थना। पक्षान्तर में सूर्य के ताप, प्रकाश, जल, वृष्टि आदि की याचना। द्युमती वाक् का वर्णन। देवापि शन्तनु आदि का रहस्य। (४) देव की परम भक्ति का उपदेश। पक्षान्तर में—वृष्ट्यर्थ यज्ञादि का उपदेश। (५) प्रभु भक्त के प्रति आनन्द-वर्षी घन प्रभु की कृपा। मेघ-वृष्टि पक्ष में—मेघ-विद्यावान् का यज्ञों द्वारा आकाश से वृष्ट्युत्पादन। (६) सर्व सत्-फल प्रभु के आश्रित हैं। जितेन्द्रिय ही उनको पाते हैं। मेघ-वृष्टि-ज्ञान। (७) यज्ञार्थ विद्वान् का वरण, उसका यज्ञ का यथावत् सम्पादन और लोकोपकार। (८) भक्ति-प्रार्थनादि द्वारा उपासित प्रभु का जलद मेघ के तुल्य वर्णन। (९) प्रभु से अनेक ऐश्वर्यों की प्राप्ति। (१०) ज्ञान-प्रकाश आदि शक्तियों की याचना। (११) प्रभु के निमित्त स्वार्पण का

उपदेश। पक्षान्तर में मेघ-वृष्टि आदि के लिये ९० सहस्राहुतियों का महायज्ञ। (१२) प्रभु वा वीर पुरुष से दुष्टों के नाश की प्रार्थना। (१३) अग्नि द्वारा रोगादि नाश का उपदेश। आर्ष्टिषेण देवापि और शन्तनु के ऐतिह्य का स्पष्टीकरण। (पृ० २७८–२८५)

सू० [९९]—इन्द्र। प्रभु-विद्वान् और सूर्य की महिमा। (२) सर्वोपरि शासक प्रभु। अध्यात्म में आत्मा का वर्णन। (३) सदाचारी पुरुष को प्रतिष्ठा लाभ। (४) सूर्य के तुल्य और आत्मा और ईश्वर के कार्यों का वर्णन। (५) सूर्य के समान आत्मा का वर्णन। (६) वर्ष के स्वामी सूर्यवत् देह में आत्मा की स्थिति। त्रिशीर्षा षडक्ष, त्रित, वराह आदि का रहस्य। (७) दुष्ट-दमन के निमित्त शस्त्रों-अस्त्रों के प्रयोग का उपदेश। (८) मेघ के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। (९) प्रभु की भक्त पर कृपा। (१०) सर्वदुःखनाशक प्रभु। (११) प्रभु-भक्ति से देह-बन्धन से मोक्ष प्राप्ति। (१२) भक्त की प्रभुप्राप्ति। जीव को सुखार्थ प्रभु का जगत्सर्ग। (पृ० ३८६–३९२)

सू० [१००]—विश्वेदेव। सर्वमंगल प्रभु का वरण। प्रभु से बल, रक्षा, ज्ञान, आदि की याचना। (२) विद्वानों से उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम राजा की याचना। (३) प्रभु से बलादि की याचना, जिससे हम विद्वानों को तृप्त कर सकें। (४) अक्षुण्ण ऐश्वर्यवान् प्रभु से याचना। (५) सर्वपालक प्रभु का माता पिता के तुल्य वरण। (६) प्रभु सर्वशक्तिमान्, ज्ञानी, व्यापक की प्रार्थना। (७) पापत्याग की प्रार्थना। (८) पापादि से मुक्त होकर मङ्गलमय प्रभु का वरण। (९) द्वेषभाव त्याग कर सर्वोत्तम प्रभु का वरण। (१०) गौ के तुल्य परस्पर उपकारक होने का आदेश। (११) सूर्य, मेघ, वेदवाणी और स्तन के तुल्य सुखद प्रभु का वरण। (१२) प्रभु का अदम्य तेज, अपराजित कामनाएं हैं। रस्सी से पशु के तुल्य स्तुति द्वारा प्रभु के ज्ञान की प्राप्ति।

सू० [१०१]—विश्वेदेव वा ऋत्विग् गण। एकचित्त होकर प्रभु-उपासना का उपदेश। (२) उत्तम स्तुति, कर्म, नौका, वेद का अभ्यास, शस्त्र, अन्न और यज्ञ करने का आदेश। (३) हल आदि से क्षेत्रा-कर्षण, अन्नोत्पादन, तथा अध्यात्म में—योग द्वारा साधना करने का आदेश। (४) हलादि द्वारा क्षेत्रकर्षण के तुल्य देहगत नाड़ियों द्वारा योग-साधना का उपदेश। (५) पशुओं के लिये जलपान-स्थान, रस्सी, कूप आदि बनाने का विधान। अध्यात्म में—अक्षय रससागर प्रभु की उपसना करने की आज्ञा। (६) उत्तम कूप और पक्षान्तर में—रस के उद्भव स्थान परमेश्वर का वर्णन। (७) अश्व-रथादि निर्माण तथा उत्तम सुदृढ़ कूप आदि बनाने का उपदेश। पक्षान्तर में—इन्द्रियजय, ईश्वरो-पासना और आत्म-साधना का उपदेश। (८) मार्ग, गोशाला, कवच, दृढ़ दुर्ग, नगर, चमसपात्र, आदि बनाने का उपदेश। पक्षान्तर में—इन्द्रियों, देह, पञ्च-कोश और देहादि को दृढ़ करने का उपदेश। (९) वेदवाणी को धारण करने का उपदेश। वेदवाणी की गौ से उपमा। (१०) हृदयपात्र में आनन्द रस का सेचन, वाणी रूप छेनियों से प्रभु की स्तुति रूप भूमिनिर्माण। सद्-दर्शनवृत्ति रूप रस्सियों से इन्द्रियों का दमन, और इन्द्रिय वर्ग रूप अश्वों का आत्मरथ में संयोज-नादि का श्लिष्ट वर्णन। (११) गृह में दो स्त्रियों के पति के तुल्य उभय इन्द्रियवर्गों के स्वामी आत्मा के साधनादि का वर्णन। (१२) सुखमय प्रभु की उपासना द्वारा आत्म-साधना का उपदेश। (पृ० ३९८–४०५)

सू० [१०२]—द्रुघण इन्द्र। परमेश्वर से रक्षा की प्रार्थना। (२) वीर पुरुष का कार्य। पक्षान्तर में वृष्टि द्वारा प्रजा-पोषण। (३) वीर पुरुष का रक्षा का कर्त्तव्य। (४) बरसते मेघ के तुल्य वीर पुरुष का कार्य। (५) वृष्टिप्रद मेघ के तुल्य स्तुत्य प्रभु का वर्णन। (६) दुःख-नाशार्थ प्रभु की स्तुति। प्रभु का आदेश, और उसका साक्षात् दर्शन।

(७) प्रभु की प्राप्ति। (८) सर्वव्यापक सर्वप्रबन्धक प्रभु। (९) देह में आत्मा के सदृश विश्व में व्यापक प्रभु। (१०) प्रभु का निष्पाप रूप। उसकी उपासना, सर्वधारक, सर्वतारक प्रभु। पक्षान्तर में—यन्त्र द्वारा संचालित वेगवान् रथादि का वर्णन। (११) नववधू के समान बुद्धि का वर्णन। कूप या मेघ के समान आत्मा का वर्णन। बुद्धि द्वारा ज्ञानोपार्जन और सुखानुभव। (१२) विश्व के चक्षु का भी चक्षु, परमेश्वर सर्वनियन्ता, सर्वद्रष्टा है। (पृ० ४०५—४११)

सू० [१०३]—इन्द्र, बृहस्पति, अप्वा इन्द्र वा मरुद्गण। सेनापति रूप इन्द्र का वर्णन, उसके गुण। पक्षान्तर में—व्यापक परमेश्वर का वर्णन। (२) वीर सेनापति के साथ मिलकर वीरों को संग्राम का आदेश। (३) सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन। (४) युद्ध के प्रकार का निर्देश। अध्यात्म में इन्द्र आत्मा का वर्णन। (५) सेनापति के कर्त्तव्य। (६) सेनापति के प्रति सहयोगियों के कर्त्तव्य। (७) सेनापति कैसा हो। (८) सेनानायक और वीरों का वर्णन। (९) वीरों का बल, पराक्रम और नाद कैसा हो? (१०) सेनानायक का काम वीरों का प्रोत्साहन। (११) ध्वजाधारियों के साथ नायक और वीरों का विजय-कार्य। (१२) अजेय सेना अप्वा। उसके विशेष गुण और कर्त्तव्य। (१३) वीरों का प्रोत्साहन। (पृ० ४११—४१७)

सू० [१०४]—इन्द्र। प्रभु के तुल्य राजा के कर्त्तव्य। (२) प्रभु का सृष्टिजनक कर्म। (३) प्रभु की रक्षा की स्तुति। वह सर्वज्ञान-प्रद और दाता है। (४) भक्त प्रभु की सदा स्तुति करें। (५) विद्वानों और स्तोताओं के कर्त्तव्य। (६) सब ज्ञानों और यज्ञादि फलों का दाता प्रभु। (७) समस्त स्तुतियों का सर्वोपरि लक्ष्य प्रभु। (८) मोक्षदाता और पूर्ण जीवनदाता प्रभु। (९) मेघ से जलवर्षी अग्नि तत्ववत् मोक्षदाता, ज्ञानप्रकाशक, सर्वजीवनदाता प्रभु। (१०)

ज्ञानोपदेष्टा, प्राणों का नायक, स्तुत्य, प्रकाशक प्रभु। (११) सर्वप्रार्थना सुनने हारे प्रभु की पुकार। (पृ० ४१७—४२२)

सू० [१०५]—इन्द्र। जल-निरोध के दृष्टान्त से चित्तनिरोध का उपदेश। पक्षान्तर में वर्षा-विज्ञान का उपदेश। (२) सूर्य के समान पुरुष का वर्णन। (३) श्रमी पुरुष के तुल्य आत्मा का वर्णन। (४) उसके कर्त्तव्य। (५) वीर शासक प्रभु का वर्णन। (६) ईश्वर का ज्ञानोपदेश और जगत्-सर्जन। (७) प्रभु की दमन-शक्ति। (८) पापनाश की प्रार्थना। दुष्टों के नाश की प्रार्थना। मन्त्रों से यज्ञ करने का उपदेश। (९) प्रभु की त्रिलोक-व्यापिनी शक्ति। (१०) प्रभु की शक्तियों के उपलक्षण। (११) अच्छों बुरों सबों का स्तुतिपात्र प्रभु। (पृ० ४२२—४२७)

सू० [१०६]—दो अश्वी। उत्तम स्त्री-पुरुषों को उनके कर्त्तव्यों का उपदेश। (२) उनके उपदेष्टा के प्रति कर्त्तव्य। (३) नाना दृष्टान्तों से उनको परस्पर सहयोगी, स्नेही, यज्ञवान्, सुसंगत रहने का उपदेश। (४) वे पालक, राजा-रानीवत्, ज्ञान-प्रकाशक हों। (६) स्त्री-पुरुषों को अनेक उपयोगी उपदेश। (८) सात्विक भोजन करें, दीर्घायु हों। (९) ऐश्वर्य प्राप्त करें। (१०) मधुरभाषी हों, श्रमशील हों। (पृ० ४२७—४३३)

सू० [१०७]—दक्षिणा और दक्षिणा के दाता। प्रभु का महान् सामर्थ्य। सबके दुःख छूटने की कामना। अन्नोत्पत्ति, दानशीलता का मार्गदर्शन। (२) दानशीलों की उन्नत स्थिति। (३) विद्वानों के पालन का उत्तम उपाय दक्षिणा। (४) दक्षिणा की वायु से तुलना। दानशीलों का सत्-साहस और उद्योग। वे भूमि को दोहते हैं। (५) अन्नदाता की प्रतिष्ठा। (६) दक्षिणादाता के प्रतिष्ठा-पद। (७) दक्षिणा

दाता और प्रतिगृहीता दोनों की उत्तमता। (८) सर्वपालकों का मान्य पद। (९–११) रक्षक पुरुषों के लौकिक ऐश्वर्य।

सू० [१०८]—सरमा और पणिगण। सरमा नाम आत्मशक्ति चेतनाशक्ति का वर्णन। (२) पणिगण इन्द्रियगण का चेतना से सम्बन्ध। बुद्धि का वाणी रूप में प्रकटीभाव। सर्वरक्षक ब्रह्मज्ञान, उसके आधार पर आत्मशक्ति का देहमय पार्थिव बन्धन से तरण। (३) आत्मा, चितिशक्ति, दर्शनशक्ति के सम्बन्ध में प्रश्न। (४) इन प्रश्नों के उत्तर, वह आत्मा अविनाशी, सर्ववशी। (५) पणि-इन्द्रियगणों का चित्त-भूमि और देह पर वश। (६) उन पर भी चेतना और इच्छाशक्ति का प्रबल अधिकार। (७) प्राणों का देह पर वश। (८) प्राणों का इन्द्रियों पर वश। (९) चेतनाशक्ति से उनका सम्बन्ध। (१०) सर्वेश्वर आत्मा का पद। चेतना पर प्राणों का आवरण। चेतना का प्रकटीभाव। (११) वेद वा ज्ञानवाणियों का प्रादुर्भाव। (पृ० ४३९–४४४)

सू० [१०९]—विश्वे देव। परमेश्वर की सर्वतोमुख्य आश्रय रूप शक्ति। (२) सर्वोत्पादक प्रभु सोम। (३) प्रकृति ब्रह्मजाया का वर्णन। (४) सात ऋषि, सात देवगण, सात प्राण, प्रकृति की महती शक्ति और परमेश्वर की ओमृशक्ति द्वारा प्रकृति का धारण। (५) व्यापक, परमेश्वर प्रकृति में उसका स्वामी है। (६) प्रकृति का विद्वानों द्वारा पुनः २ त्याग। पुनः २ आत्मा की मुक्ति और बन्ध। (७) पुनः २ निष्पाप हो प्रभु की उपासना कर पुनः २ मोक्षप्राप्ति। पक्षान्तर में—आश्रमान्तर ग्रहण की ध्वनि। (पृ० ४४४–४४७)

सू० [११०]—आप्रीगण। अग्निवत् गृहपति-ज्ञानी आत्मा का वर्णन। विद्वान् ज्ञानी पुरुष के कर्त्तव्य। (२) देहपतन होने देने वाले

आत्मा का वर्णन। हिंसारहित यज्ञ का प्रतिपादन। (३) अग्नि, विद्वान् शिष्य-आचार्य का समादर। (४) सबसे पूर्व प्राप्त ज्ञानमय वेदों का वर्णन। (५) गृहदेवियों, वेदवाणियों का द्वारों के तुल्य वर्णन। (६) दिन-रात्रिवत् उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य का वर्णन। ज्ञानदाता वा अन्नदाता विद्वानों के कर्त्तव्य। (८) भारती, इडा, सरस्वती तीन देवियों का आदर। (९) द्यौ-पृथिवीवत् माता पिता का आदर। (१०) वनस्पति रूप जितेन्द्रिय तेजस्वी का आदर। (११) अग्निवत् अग्रणी पुरुष का आदर। (पृ० ४४७–४५३)

सू० [१११]—इन्द्र। इन्द्र प्रभु की स्तुति। (२) वृषभ रूप से प्रकृति के स्वामी जगद्-उत्पादक प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में—जल-धारक मेघ का वर्णन। (३) ज्ञानदाता सूर्य भूमि का पालक, प्रभु। (४) मेघ से वृष्टिवत् प्रकृति से जगत्-स ँ का व ंन। (५) सर्वातिशायी परमेश्वर, सर्वदुःखनाशक, विश्व को थामने वाला है। स्कम्भ का रहस्य। (६) अज्ञाननाशक प्रभु, अति वीर्यशाली प्रभु। (७) उषा सूर्य के दृष्टान्त से आत्मा इन्द्रियों का वर्णन। (८) मूल प्रकृति (आपः) का व्यापक सूक्ष्म रूप। उसकी व्यवस्था। (९) मेघ से निकलती जलधाराओं के तुल्य प्रकृति-बन्धन में आने वा उससे निकलने वाले आत्माओं का वर्णन। सिन्धु रूप से जीवात्माओं की गति का वर्णन। (१०) बहती नदियों के साथ बड़े नद के तुल्य आत्माओं के बीच प्रभु का वर्णन। (पृ० ४५३–४५८)

सू० [११२]—इन्द्र। सर्वप्रथम उपास्य प्रभु। (२) प्रभु का प्रेम पूर्वक आह्वान। (३) सूर्यवत् प्रभु का स्मरण। अध्यात्म में-देहगत आत्मा की सूर्यवत् स्थिति। (४) भक्त और प्रभु का परस्पर स्नेह। (५) प्रभु का वीर के समान स्मरण। (६) आत्मा का ब्रह्मानन्द-रस रूप सोमपान। (७) कृषक के समान प्रभु के उपासकों का

व्यवहार। (८) प्रभु के गुणों और अद्भुत कर्मों पर भक्तों का मुग्ध होना और उससे अज्ञान के नाश की प्रार्थना। (६) गणपति का वर्णन। (१०) प्रभु से, राजा से प्रजा की ज्ञान, ऐश्वर्य और न्याय की याचना। (पृ० ४५८—४६४)

सू० [११३]—इन्द्र। सूर्यवत् प्रमुख शासक के कर्त्तव्यों का वर्णन। (२) प्रजा ही राजा के वैभव को बतलाती है। (३) संग्राम क्यों किया जाय? उस समय प्रजा का कर्त्तव्य। (४) युद्ध से बल परिक्षा और बल से शत्रुविजय और स्वराज्य का दृढ़ीकरण। (५) राजा के कर्त्तव्य। राजसभा आदि पर प्रशासन, शस्त्रबल पर यश, मित्रवर्ग पर अनुग्रह। (६) शत्रुनाश के उत्तम फल। राजा के आतंक का परिणाम। (७) स्पर्द्धाशील पक्षों में से एक के विजय हो जाने पर उसके स्वामित्व की स्थिति। (८) पराजित शत्रु का नाश और प्रजाद्वारा विजयी राजा की वृद्धि। (९) राजा के प्रति प्रजा के सद्-बन्धन और राजा का ध्यानाकर्षण। (१०) प्रभु वा आत्मा से ज्ञान-बल याचना, वा पाप-कष्टादि से पार करने की प्रार्थना। (पृ० ४६४—४६८)

सू० [११४]—विश्वेदेव। अग्नि सूर्यवत् जीव प्रभु, प्रजा राजा, और स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (२) गुरु जनों से ज्ञानोपार्जन का प्रकार। (३) चार शिखा वाली वेदवाणी। (४) सर्वजगत् साक्षी अद्वितीय प्रभु का वर्णन। (५) एक अद्वितीय प्रभु के १२ रूप। (६) यज्ञ विधि में कहे ४० ग्रहों का स्पष्टीकरण। (७) प्रभु के १४ महान् सामर्थ्य उनका मुख से वर्णन। (८) प्रजापति के १५ रूप—(९) वेदज्ञ विद्वान् के सम्बन्ध में प्रश्न। (१०) रथ में धुरों के संभालने वाले अश्वों के तुल्य विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ० ४६९—४७४)

सू० [११५]—अग्नि। बालक के समान प्रभु का वर्णन। उसका जगत्-पोषण कार्य। (२) सर्वोपरि स्वामी तेजस्वी अग्नि। (३) पक्षी

के तुल्य प्रभु का वर्णन। (४) पापनाशक सर्वाधार प्रभु। (५) सर्वतारक प्रभु। (६) सर्वोपरि रक्षक बलशाली प्रभु। (७) सूर्यरश्मिवत् नियुक्त पुरुषों के कर्त्तव्य। (८) प्रभु की स्तुति। (९) उसके भक्तों की प्रभु पिता से पुत्रवत् याचनाएं। पुत्रों के तुल्य ऐश्वर्यादि याचना। (पृ० ४७४–४७९)

सू० [११६]—इन्द्र। राजा के कर्त्तव्य। वह प्रजा को पिता के समान पाले। (२) प्रजा उससे न्यायादि की याचना कर मधुर अन्न जल लें. सब पर सुख बरसावे। (३) सोम के बल पर राजा ऐश्वर्य का भोग करे। चार प्रकार के सोम। मेघ सूर्यवत् राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) राजा का कार्य शत्रुविजय। राजा उनके दुर्गों का नाश करे। (५) राजा अपना बल स्थिर रूप से फैलावे। (६) उसके बल पर शत्रु को काटे। (७) राजा के प्रति प्रजा का स्वकर-दान। (७) सर्वदुःख तारक की नाव के तुल्य स्तुति। विद्वानों से उत्तम ऐश्वर्यादि की याचना।

सू० [११७]—इन्द्र। धन और अन्नदान की प्रशंसा। भूखा मारने के दण्ड का निषेध। दान दिये का नाश नहीं होता। (२) निर्बल पीड़ित और अतिथि आदि को अन्नादि न देनेवाले की भविष्य में दुर्गति। (३) दाता की सद्‌गति। (४) अदानशीलता से हानि और दान के लाभ। (५) धनादि की अस्थिरता होने से समर्थ को अन्यों के पालन का उपदेश। (६) क्षुद्र पुरुष की व्यर्थ धन की प्राप्ति। (७) फाली और पैरों के दृष्टान्त से सत्कार्य करने वालों की प्रशंसा। ज्ञानादि का दाता अदाता से कहीं अच्छा है। (८) साधनों के सिवाय सामर्थ्य, दानशीलता का महत्त्व। (९) दान-सामर्थ्यादि की विषमता। (पृ० ४८३–४८७)

सू० [११८]—रक्षोहा अग्नि। इन्द्रिय दमन, और दुष्टों के दमन का उपदेश। (२) आहुतिप्राप्त अग्नि के तुल्य तेजस्वी को उत्तम

वचनों से प्रसन्न होने का उपदेश। (३) अग्निवत् वाणी द्वारा प्रकट आत्मा का वर्णन। (४) घृत से प्रज्वलित अग्निवत् ज्ञानी और तेजस्वी हो। (५) विद्वान् ज्ञानोपदेश से प्रकाशित हो। (६) मनुष्यों को विद्वान् की परिचर्या का उपदेश। (७) तेजस्वी दुष्टों का नाश करे, न्याय की रक्षा करे। (८) पीड़ादायक विपत्तियों वा व्यक्तियों को दूर करे। (९) विद्वान् की उपासना का उपदेश। (पृ० ४८७–४९९)

सू० [११९]—आत्मस्तुति। आत्मतुष्ट पुरुष के उदार भावों का प्रकाश। (२) सोमपान अर्थात् आत्मानन्द रस, ऐश्वर्य, ज्ञान आदि की प्राप्ति, आत्मा की शक्ति का उद्रेक। (४) आत्मदर्शन रूप सोमपान से ज्ञानवृद्धि। (५) आनन्द-रस प्राप्त्यर्थ ज्ञानस्वरूप प्रभु की उपासना। (६) ज्ञानरस-पान से इन्द्रियदमन। (७) वीर्य रक्षा से प्रचुर बलप्राप्ति। (१२) परमेश्वर के महान् सामर्थ्यों का वर्णन। (पृ० ४९०–४९४) इति षष्ठोऽध्यायः।

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१२०]—इन्द्र। सर्वोत्पादक जगत्स्रष्टा परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में ज्येष्ठ ब्राह्मणवर्ग का वर्णन। (२) सर्वशरण्य प्रभु। (३) सर्वोपास्य प्रभु। (४) प्रजापालक राज्य के कर्त्तव्य। (५) बलवान् सहायक राजा के सहयोग में प्रजावर्ग को उत्साह। (६) आप्तों से श्रेष्ठ आप्त आत्मा की प्राप्ति, उसके सामर्थ्य का वर्णन। (७) आत्मा के सामर्थ्य और कर्म। (८) प्रभु के बल, सुख आदि का वर्णन। (९) परमेश्वर का विराट् रूप। (पृ० ४९४–४९८)

सू० [१२१]—प्रजापति का वर्णन। हिरण्यगर्भ परमेश्वर।

पृथिवी आदि का धारक। (२) सर्वोपास्य शरण्य मुक्तिप्रद प्रभु। (३) सब चराचर का राजा प्रभु। (४) समस्त विश्व विभूतियों का स्वामी प्रभु। (५) महान् बलशाली प्रभु। (६) सर्वाश्रय प्रभु। (७) सर्वाश्रय, सर्वजीवनदाता प्रभु। (८) सर्वासाक्षी प्रभु। (९) परमेश्वर के अनेक लक्षण। (१०) सर्वव्यापक प्रभु से ऐश्वर्यों की याचना। (पृ० ४९८–५०३)

सू० [११२]—अग्नि। प्रभु और विद्वान् की स्तुति और उपासना। परमेश्वर के अनेक गुण और वह विश्व का स्वामी है। (२) सर्वज्ञ प्रभु से ज्ञान की याचना। (३) सर्वव्यापक, ऐश्वर्यप्रद प्रभु की शरण-ग्रहण और उससे अनुग्रह याचना। (४) ज्ञानमय तेजोमय, सुखरसवर्षी, प्रभु की उपासना। (५) भक्त्यर्थ प्रभु की स्तुति। (६) विश्वपोषक गौवत् प्रभुवाणी से इष्ट कामना करते हुए परमेश्वर की उपासना करना। (७) प्रातः-उपासना होमादि का विधान। उनके अभिप्राय। (८) प्रकाश स्वरूप प्रभु की उपसना, और उससे ऐश्वर्य की याचना। (पृ० ५०३–५०७)

सू० [१२३]—वेन। प्रकाशस्वरूप जगत्स्रष्टा का वर्णन। (२) समुद्र से तरंग, सूर्य से उषा आदि दृष्टान्तों से प्रभु से ज्ञानप्राप्ति का वर्णन। (३) वेदवाणियों का परमप्रतिपाद्य प्रभु। (४) विद्वानों द्वारा स्तुत्यपद। उपासक और उपास्य में चातक मेघ का-सा सम्बन्ध। नाविक जैसे समुद्र में प्रवेश करता है वैसे सिन्धु रूप प्रभु को प्राप्त होना। (५) उपास्य-उपासक का दाम्पत्य का-सा विशुद्ध स्नेह। (६) सूर्यवत् तेजोमय, अज्ञानावरण का नाशक, सर्वशक्ति सर्वपोषक प्रभु का साक्षात् दर्शन। (७) सर्वोपरि शासक प्रभु। गन्धर्व परमेश्वर का देहरूप विश्व कवच है। (८) आत्मा का तेजोमय प्रभु में प्रवेश (पृ० ५०७–५१२)

सू० [१२४]—अग्नि, वरुण सोम । यज्ञ में आत्मा का चिन्तन । (२) अमृतत्व की प्राप्ति । आत्मसाक्षात्कार । (३) प्रभु से मोक्ष-याचना । (४) आत्मा का स्वतः मोक्षमार्ग-दर्शन । (५) दोनों आत्माओं का साक्षात् योग-दर्शन । (६) आत्म-साक्षात्कार, आत्मा सुखमय और प्रकाशमय । (७) विश्वस्रष्टा का अद्‌भुत कर्म और स्वाभाविक व्यापन । प्रकृति में ब्रह्मबीजोत्सर्ग । (८) प्रकृति का ईश्वराश्रय, गर्भ-ग्रहण और जगत्प्रसव । (९) परमेश्वर वा आत्मा का शुद्ध रस स्वरूप (१०) मैत्रीभाव से उसका साक्षात्कार । (पृ० ५१२–५१९)

सू० [१२५]—वाग् आम्भृणी । परमात्मा का आत्मशक्ति वर्णन । आत्म विभूति-प्रकाश । (पृ० ५१७–५२०)

सू० [१२६]—विश्वेदेव । पाप से रक्षा । सत्संग द्वारा सज्जनों की कृपा से पाप से पार होना, सब बुराइयों से छूटना । (पृ० ५२१–५२४)

सू० [१२७]—रात्रिस्तव । रात्रि के दृष्टान्त से जगत्-शासिका प्रभुशक्ति का वर्णन । (६–८) प्रभुशक्ति का वर्णन । (पृ० ५२४–५२७)

सू० [१२८] विश्वेदेव । तेजस्वी पुरुष, अग्रनायक, सेनापति, और राजा के कर्त्तव्य । सेना, प्रजा आदि प्रधान व्यक्ति को चमकावें, उसका मान-आदर, सत्कार और शक्ति-वर्धन करें । (२) इन्द्र वा स्वामी वा नायक पति का अधीनों के प्रति आदेश । (३) उसकी शुभ कामना और आज्ञाएं । (४) ६ प्रकार की विशाल शक्तियां । उनके सदृश ६ प्रकार के पूज्य व्यक्ति । अध्यात्म में—षड्धातु । विद्वानों के कर्त्तव्य प्रभु से प्रार्थना । (६) रक्षक के कर्त्तव्य । (७) प्रभु से प्रार्थना । (८) प्रधान तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य, (९) प्रधान पुरुष की अन्य वीरों, विद्वानों से प्रार्थना । (पृ० ३२७–५३४)

सू० [१२९]—नासदीय सूक्त । भाववृत्त । जगत्सर्ग के पूर्व प्रलय

अवस्था में अव्यक्त दशा का वर्णन। अम्भस् तत्त्व का वर्णन। (२) सब से अधिक सूक्ष्म परम शक्ति तत्त्व का रूप। (३) सृष्टि के पूर्व क्या था? तमस्तत्त्व का वर्णन। (४) ईश्वरीय जगत् सर्ग, संकल्प रूप। (५) असत् अम्भस् सलिलादि का विस्तार, उसमें अन्य शक्तियां और प्रभु की स्वधा शक्ति। (६) जगत् का मूल कारण अज्ञेय, अव्यक्त। (७) मूल तत्त्व को जानने वाला है तो एकमात्र परमेश्वर ही है। (पृ० ५३१—५३४)

सू० [१३०]—भाववृत्त। १०० वर्षों के दीर्घ-यज्ञ का पट रूप में वयन, उसका स्पष्टीकरण। (२) परम पुरुष ही यज्ञ-पट तनता है, यज्ञ पट बुनने के अन्य साधनों की भी श्लिष्ट योजना। (३) उपास्य प्रभु के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न। देवयज्ञ के स्वरूप की जिज्ञासा। (४) छन्दोऽनुरूप देव गुणों का विभाग। (५) ऋषियों का छन्दोबल। (६) यज्ञ से ऋषि-मनुष्यादि का प्रादुर्भाव। (७) पूर्व-पुरुषाओं की परिपाटी के अनुसरण का उपदेश। अध्यात्म में प्राणगण ७ ऋषि। आत्मा प्रजापति। जीवन रूप शतवार्षिक यज्ञ। (पृ० ५३४—५३७)

सू० [१३१]—इन्द्र, अश्विगण। राजा के कर्त्तव्य। दुष्ट शत्रुओं को दूर करे। (२) कृषिवत् नियम से प्रभु भक्ति करने वालों की रक्षा प्रार्थना। (३) उत्तम बैलों वाली गाड़ी के तुल्य बलवान् प्रभु से जगत्-सर्ग और दृढ़ पुरुषों से गृहस्थ संपादन करने का उद्देश्य। (४) जितेन्द्रिय गृहस्थ स्थिर पुरुषों के कर्त्तव्य। (५) मां बाप के बीच पुत्रवत् राजा की दशा। वह सेना शक्तियों और प्रजाओं के बीच बढ़े। (६—७) राजा अपनी पालक शक्तियों से प्रजा में अभय स्थापन करे और प्रजाएं उसके अधीन द्वेषरहित होकर रहें। (पृ० ४३७)

सू० [१३२]—लिङ्गोक्त। ज्ञानी लोगों के सहयोग में यज्ञशील पुरुष की वृद्धि। (२-३) उसके प्रति अन्यों के कर्त्तव्य। वे उसको

सदा वृद्धि करें। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। वे ऐश्वर्य की खूब वृद्धि करें। (४) सभापति का कर्त्तव्य। (५) उपरिस्थित शासकों के छोटे २ दोष भी अधीनों में अधिक हानि उत्पन्न करते हैं। (६) माता वा आचार्य के कर्त्तव्य और उनके प्रति पुत्रों वा शिष्यों का कर्त्तव्य उनका प्रियाचरण। (७) उत्तम स्त्रीपुरुष उत्तम रथ आदि पर विराजें सेनापतिवत् शक्तिशाली पुरुष प्रजा की सदा रक्षा करें। (पृ० ५४१—५४४)

सू० [१३३]—इन्द्र। बलवान् सेनापति की प्रतिष्ठा। उसके कर्त्तव्य। (२) शत्रु के प्रति उसके नाश के लिये उचित भावना। (३-५) दण्डनीय पुरुषों को उचित दण्ड। (६) प्रधान नायक के कर्त्तव्य। (७) शासक ज्ञानी के कर्त्तव्य। वह अधीनों को उत्तम शिक्षा दे। (पृ० ५४४—५४७)

सू० [१३४]—इन्द्र। माता पिता के तुल्य परमेश्वर प्रकृति का जगत्-सर्जन। (२) दुष्टों के दण्ड करने की प्रार्थना। (३) उत्तम अन्न-सम्पदाओं के पाने की प्रार्थना। (४) ऐश्वर्य की प्रार्थना। (५) हमें कैसे तेजस्वी शस्त्रास्त्र प्राप्त हों और कैसे हमारे शत्रु दुष्ट नाश हों इसमें घृतविन्दु और तृण के दृष्टान्त। (६) व्यापक प्रकृति को धारण करने में अज के दृष्टान्त से सर्वनियन्ता के कार्य का वर्णन। (७) विधि विधानानुसार यज्ञादि कार्य करने का आदेश। (पृ० ५४७—५५०)

सू० [१३५]—यम। देह द्वारा कर्मफल भोग का वर्णन। (२) पुनः पापाचरण करने वाले पर निन्दा और दयादृष्टि से देखने का उपदेश। अथवा अधः-पतन होने में चित्त की निर्बलता। (३) देह-यन्त्र का रहस्य। ज्ञानी अज्ञानी जीव का देह-रथ में आना। (४) वह देह में आत्मज्ञान को प्राप्त करे। (५) जीव के सम्बन्ध में कुछ जिज्ञासाएं। (६) मन से प्रतिक्षण श्वासानुश्वास-क्रिया के तुल्य संकल्प-मय प्रभु से जगत् की उत्पत्ति और संहार का होना। (७) पाञ्चभौतिक

देह-नियन्ता आत्मा का आश्रय है। देह में स्थित वाणी, राजा की रण-भेरी के तुल्य है। (पृ० ५५०—५५३)

सू० [१३६]—जूति, वातजूति, विप्रजूति, वृषाणक, करिक्रत एतश, ऋष्यश्रृंग और केशिगण। ज्योतिर्मय प्रभु केशी। (२) देह में इन्द्रिय प्राणों की जागृत और चेतन दशा में भेद। (३) देह में प्राणों के सूक्ष्म और स्थूल रूप। (४) देहाश्रम में स्थित आत्ममुनि का वर्णन। दो समुद्र के बीच उसका सुन्दर आश्रम। आलंकारिक सत्यता का स्पष्टीकरण। (६) ज्ञानी का विचरण। आत्मा का विवरण, सूर्य के जलपान के समान आत्मा का विविध विषय का भोग। विद्युत् के समान वाणी के कार्य (पृ० ५५३—५५७)

सू० [१३७]—विश्वेदेव। विद्वानों, तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य। जलों को रश्मियों के तुल्य नीचे गिरों को बार २ उठावें। अन्यों को जीवन प्रदान करें। (२) विशाल जगत् में दो प्रकार के प्रबल वातों का वर्णन। देह में श्वास-निश्वास का वर्णन। (३) रोगनाशक वायु का वर्णन। (४) शान्तिदायक मृत्युनाशक उपायों से अन्नादि देने और रोग नाश करने का उपदेश। (५) रक्षा के उपायों से रक्षा प्राप्ति का उपदेश। (६) रोगनाशक जलों का वर्णन। (७) रोगनाश के लिये वाणी के प्रयोग के साथ हाथों की दशों अंगुलियों के स्पर्श का प्रयोग। (पृ० ५५७—५५९)

सू० [१३८]—इन्द्र। प्रभु के मैत्रीभाव में मननशील पुरुषों का अज्ञान नाश। पक्षान्तर में जगत् में सूर्य के सहयोग में वायुओं का मेघ वर्षणादि कार्य। (२) भौतिक जगत् में सूर्य के कार्यों का वर्णन। तदनुसार प्रभु के कर्मों का वर्णन। (३) भौतिक जगत् में सूर्य और विद्युत् के अनेक कर्म। तत्सदृश तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्यों का वर्णन।

(४) सूर्यवत् राष्ट्र में राजा के कर्त्तव्यो का वर्णन। शत्रु से करादान, दण्ड-ग्रहण की व्यवस्था। (५) विना युद्ध के विजय करने का आदेश। कण्टकशोधन करने का उपदेश। (६) शत्रुनाश के कार्य में सेनापति के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर के महान् कार्य। (पृ० ५६०—५६४)

सू० [१३९]—सविता, और विश्वावसु। जीवनप्रद प्राभातिक सूर्योदय के समान परमेश्वर के जगत्सर्जन के अद्भुत कार्यों का वर्णन। (२) मध्यान्हकालिक सूर्य के समान विद्वान् के कर्त्तव्य। (३) सूर्य के समान धर्माध्यक्ष का वर्णन। (४) सूर्य के प्रति जाते हुए वाष्पमय जलों के तुल्य प्रभु के प्रति जाते हुए उपासकों का वर्णन। सूर्यानुसारी वायु के समान प्रभु का देवानुगमन। (५) दिव्य गन्धर्व परमेश्वर का वर्णन। उससे ज्ञान की याचना। (६) विद्वान् गन्धर्व का वर्णन। ज्ञान-प्रवचन, उसका कर्त्तव्य। पक्षान्तर में मेघ सूर्यादि का वर्णन। (पृ० ५६४—५६७)

सू० [१४०]—अग्नि। प्रकाशस्वरूप प्रभु की स्तुति। (२) माता पिता के तुल्य प्रभु का प्रजापालन। (३) सर्वाश्रय, सर्वपालक प्रभु। पक्षान्तर में यज्ञाग्नि का वर्णन। (४) पालक राजा और प्रभु का वर्णन। उससे ऐश्वर्य-वृद्धि की प्रार्थना। (५) महान् दाता यज्ञकर्त्ता प्रभु का वर्णन। (६) दर्शनीय, विश्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वदाता प्रभु वा विद्वान् की उपासना और साक्षिता। (पृ० ५६७—५७०)

सू० [१४१]—विश्वेदेव। विद्वान् तेजस्वी पुरुष वा प्रभु से शुभ चित्त होने और प्राप्त होने की विनति। (२) न्यायकारी से न्याय, वेदज्ञ से ज्ञान, विदुषी से वा भूमि से नाना ऐश्वर्यादि का याचना। (३) सोम राजा, विद्वान् शासक प्रभु, विद्वानों, और वेदज्ञों की और धनसम्पन्नों की उचित प्रार्थना। (४) उनका राष्ट्र में सादर आमन्त्रण और सबकी शुभ चित्तता की आशा। (५) राष्ट्र के बड़े २ आदरणीय पुरुषों को

दानशील उदार होने की प्रार्थना । (६) राजा को प्रेरणा कि वह अन्य शासकों से दानी, उदार होने की प्रेरणा करे । (पृ० ५७०—५७२)

सू० [१४२]—अग्नि । त्रिभूमिक गृह के समान प्रभु शरण्य को प्राप्त कर परम मोक्ष और उसकी बन्धुता प्राप्ति और उससे दया की याचना । (२) वशी आत्मा का वर्णन । (३) भोक्ता आत्मा । (४) कर्मफल भोक्ता का तृणादि दाहक अग्नि के तुल्य वर्णन । (५) अग्नि, सेना, वायु आदि के तुल्य आत्मा का वर्णन । (६) सेनापति के समान आत्मा का वर्णन । (७) विद्वान् का अग्निवत् वर्णन । (८) आत्मा का इस वा अन्य लोकों में आने जाने का वर्णन । लोकों में रहने विहरने योग्य स्थानों का वर्णन । (पृ० ५७२—५७६) इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोऽध्यायः

सू० [१४३]—दो अश्विगण । प्रधान प्रकृति और परमेश्वर का वर्णन । उनका कार्य जीव को पुनः जन्म देना । कक्षीवान् जीव । (२) जीव पर प्राण-कोशोंका बन्धन । उसके मोक्ष देने में कारण प्रकृति और परमेश्वर । (३) दोनों जीव को ज्ञान देते हैं । (४) दोनों की जीव पर कृपा । (५) रजःसमुद्र में बहते डूबते जीव पर दोनों की कृपा । (६) दोनों ज्ञानदाता और कामनापूरक है । (पृ० ५७६—५७९)

सू० [१४४]—इन्द्र । जीव की उर्ध्वगति । मोक्षमार्ग । (२) ऊर्ध्वकृशन आत्मा । उसकी सब बाधाओं को दूर करने वाला प्रभु । (३) प्रकाशमय आत्मा का वर्णन । (४) जितेन्द्रिय दीर्घजीवी साधक । (५) ब्रह्मचर्य पूर्वक धारित, रक्षित वीर्य का महत्व । वीर्य सन्ततिवर्धक और दीर्घ जीवन-कारक है । (पृ० ५७९—५८१)

सू० [१४५]—उपनिषत्-सपत्नीबाधन। सपत्नीबाधक, पति-प्रापक ओषधि, पापदाहक, प्रभुप्रापक ब्रह्मविद्या। (२) अविद्या दूर करने की प्रार्थना। (३) ब्रह्मविद्या की सर्वोत्तमता। (४) अविद्या-नाश का वर्णन। (५) सौत के तुल्य अविद्यानाश का उपदेश। (६) अविद्या नाशक ब्रह्मविद्या के प्रति मनका बछड़े के समान आना। (पृ० ५८१—५८४)

सू० [१४६]—अरण्यानी। वानप्रस्थ पुरुष की पत्नी के कर्त्तव्य। (२) वानप्रस्थ पुरुष के कर्त्तव्य। (३) वानप्रस्थ का कर्त्तव्य ज्ञाना-भ्यास, वेदाभ्यास। (४) अरण्यानी ऋणों से मुक्त दशा। उसमें ईश्वरोपासना का कर्त्तव्य। उसकी अहिंसा व्रत की साधना। अरण्यवास का अध्यात्म रहस्य। (पृ० ५८४—५८७)

सू० [१४७]—इन्द्र। विश्वधारक प्रभु परमेश्वर का वर्णन। प्रभु के मेघ और विद्युत् के तुल्य कृपालु और उग्ररूप। (३) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य पुत्र पौत्र धन आदि के लिये भी स्तुत्य प्रभु। (४) इन्द्र विद्युत् की साधना उससे अनेक रथादि का निर्माण। (५) ऐश्वर्यवान् पुरुष के कर्त्तव्यों का उपदेश। (पृ० ५८७—५८९)

सू० [१४८]—इन्द्र। धन समृद्धि आदि के लिये परमेश्वर की प्रार्थना। (२) महान् प्रभु की उपासना और ध्यान-धारणा। (३) आत्मा की उपासना। (४) और रक्षा की याचना। (५) प्रभु की उपासना। (पृ० ५८९—५९२)

सू० [१४९]—सविता। सर्वजगत् का उत्पादक और संचालक परमेश्वर। (२) परमेश्वर से सृष्टि का प्रकट रूप से उत्पन्न होना। उसमें परमेश्वर की सूर्य के साथ तुलना। (३) परमेश्वर के महान् सामर्थ्य से, संयोग-विभाग से जगत् की उत्पत्ति। उससे सूर्य की उत्पत्ति। (४) गौ, योद्धा, गौवत्स पति-पत्नी आदि के समान प्रभु के प्रति।

प्रेम-प्रदर्शन। प्रभु के प्रति नित्य जागृतचित्त होकर रहना। (पृ० ५९२–५९५)

सू० [१५०]—अग्नि। सर्वोपसित प्रभु से सुख की प्रार्थना। (२) प्रकाशस्वरूप प्रभु की उपासना। (४) देवों का पुरोहितवत् साक्षी प्रभु। सर्वोपास्य यज्ञाग्निवत् उसी को हृदय में प्रज्वलित करना। सर्वरक्षक प्रभु सच्चा सहायक, सर्वश्रेष्ठ, सर्वोपास्य है। (पृ० ५९५–५९७)

सू० [१५१]—श्रद्धासूक्त। श्रद्धा से करने योग्य कनेक कर्त्तव्यों का उपदेश। (३) श्रद्धा योग्य वचन होने की प्रार्थना। श्रद्धापूर्वक उपासना करने का उपदेश। 'श्रद्धा' नामक सत्यधारक प्रभु की शक्ति की उपासना। (पृ० ५९७–५९९)

सू० [१५२]—इन्द्र। विश्व का बड़ा भारी शासक परमेश्वर। (२) वह सर्वकल्याणकारक, सर्वपालक, बलवान्, अभयदाता है। (३) उससे विघ्ननाश आदि की प्रार्थना। (४) इन्द्र, वीर सेनापति से भी शत्रुनाश की प्रार्थना। (पृ० ५९९–६०१)

सू० [१५३]—इन्द्र। सेनापति का वर्णन। (२) इन्द्र अध्यक्ष की उत्पत्ति। (३) उसका विशेष पराक्रम। (४) सैन्यों के प्रति उसका कर्त्तव्य। वह उसे तीव्र बनाये रखे। उसका वशकारी सामर्थ्य (पृ० (६०१–६०३)

सू० [१५४]—भाववृत्त। ज्ञानोपासक आत्मा वा शिष्य को सन्मार्गोपदेश। 'सोम' आत्मा की निरुक्ति। (२) मोक्षगामी तपस्वियों की ओर जाने का आदेश। (३) युद्धवीरों और दानशीलों के प्रति जाने का उपदेश। (४) सत्य, न्याय, तपादि के उपासकों, गुरु जनों के प्रति जाने का उपदेश। (५) वेदवाणियों के निष्ठ, ज्ञाता, कवि ऋषियों के प्रति जाने का उपदेश। सूक्त के विनियोग पर विवेक। (पृ० ६०३–६०५)

सू० [१५५]—अलक्ष्मीघ्न सूक्त। ब्रह्मणस्पति, विश्वेदेव। परशत्रु, सैन्य और जलादि न देने वाली दुर्भिक्ष कालिक दशा, इन दोनों के नाश का उपाय। (२) बृहस्पति सेनापति को परशत्रु सैन्य के नाश का उपदेश। (३) सागरादि तरने के लिये नौका, जहाज़ आदि का उपदेश। (४) शत्रुनाशक, गोली छोड़ने वाले (मशीनगन आदि) यन्त्रों का उपदेश। (५) अजेय वीर। (पृ० ६०५–६०८)

सू० [१५६]—अग्नि। सेना द्वारा वीरों का ऐश्वर्य विजय। (२) नायक के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में गुरु के कर्त्तव्य और आत्मा का वर्णन। (४) परमेश्वर का सूर्य-स्थापन रूप अद्भुत कार्य। (५) प्रकाशक प्रभु का सर्वोच्च पद। (पृ० ६०८–६१०)

सू० [१५७]—विश्वेदेव। जीवों आदि का भुवनों को प्राप्त होना। (२) आदित्यों सहित इन्द्र के महान् सामर्थ्य। (३) आदित्यों की शासकों से तुलना। उनका शरीरों आदि की रक्षा करने का गुण। (४) विजेयच्छुक के कर्त्तव्य। (५) पक्षान्तर में साधकों का चिति शक्ति का दर्शन। (पृ० ६१०–६१२)

सू० [१५८]—सूर्य। सबका संचालक प्रभु सूर्य। उससे रक्षा की प्रार्थना। (२ ३) सर्वोत्पादक सविता प्रभु, उससे रक्षा, प्रकाश, चक्षु आदि प्राप्ति की प्रार्थना। (पृ० ६१२–६१३)

सू० [१५९]—शची पौलोमी। सेना और स्त्री का आत्मपति-वरण और उद्योग-उत्साहयुक्त भाव। दोनों के पतियों के कर्त्तव्य। (३) माता के सन्मानों के प्रति उत्तम भाव (४) पति के प्रति उत्तम भाव। (५ ६) वीर सेना और वीराङ्गना की विजयादि की महत्वा कांक्षा।

सू० [१६०]—इन्द्र। सेनापति के कर्त्तव्य। (४) समर्थ होकर

दानशील पर प्रभु की कृपा। उसका निष्कण्टक मार्ग। (५) ऐश्वर्य प्राप्तयर्थ प्रभु की स्तुति। (पृ० ६१६–६१८)

सू० [१६१]—राजयक्ष्मघ्न सूक्त। राजयक्ष्मा और ग्राही नामक रोगों को दूर करने के लिये अग्नि और विद्युत् के प्रयोग का उपदेश। (२) मृत्यु-मुख में पड़े रोगी की रक्षा का उपदेश। (३) शतवर्ष आयुष्कर ओषधि का उपदेश। 'इन्द्र' की वैदिक निरुक्ति। (४) वीर्य द्वारा १०० वर्ष के जीवन की शक्ति प्राप्ति का उपदेश। (५) रोगी को रोगमोचन, दीर्घ-जीवन दान को प्राप्त कराने का उपदेश, वैद्य के कर्त्तव्य। (पृ० ६१८–६२०)

सू० [१६२]—गर्भ-संस्राव में प्रायश्चित्त सूक्त। गर्भनाशक कारणों के नाश करने के उपायों का उपदेश। (पृ० ६२०–६२२)

सू० [१६३]—यक्ष्मघ्न सूक्त। रोगी के आंख, नाक, कान, ठुड्डी, मस्तिष्क, बाहु, धमनियों, और अस्थियों गुदा, आंतों, आदि पेट के भीतरी अंगों से और जांघों, पैरों, टांगों, एड़ियों, पंजों, नितम्बों से, मूत्र, मलादि द्वारों और अन्य अनेक जोड़ों से राजयक्ष्मादि नाश करने का उपदेश। (पृ० ६२०–६२४)

सू० [१६४]—दुःस्वप्नघ्न सूक्त। मन के दुःसंकल्प को दूर करने का उपदेश। (२) मन को सन्मार्ग में लगाने का उत्तम उपाय। ईश्वराराधन में कल्याण-दर्शन। (३) दूर करने योग्य बुरी वासनाएं। (४) पारस्परिक द्रोह भाव को दूर करने की प्रार्थना। (६) विजय और सफलता की भावना। (पृ० ६२४–६२६)

सू० [१६५]—कपोतोपहति पर वैश्वदेव प्रायश्चित्त। वक्ता का ठीक तात्पर्य दर्शाने वाला चतुर दूत वा उपदेष्टा कपोत। उसके आदर सत्कार का उपदेश। (२) परदूतों का आदर-सत्कार करने का

उपदेश । (३) दूत सदा प्रजा की सुख शान्ति का ध्यान रखें । ऊलूक और कपोत दो प्रकार के दूतों का वर्णन, उनके लक्षण और भेद । (५) कपोत वर्ग के दूत के साथ व्यवहार का उपदेश । (पृ० ६२६–६२९)

सू० [१६६]—सपत्नघ्न सूक्त । सर्वश्रेष्ठ होने की प्रार्थना । (२) स्वयं अहिंसक होकर शत्रु को पददलित करने का संकल्प । (३) शस्त्र-बल और मन्त्र-बल दोनों से शत्रु को अधीन करने का उपदेश । (४) शत्रु वा प्रजा के समान कर्मों वा समितियों आदि पर राजा को वश करने का उपदेश । (५) राजा को शिरोमणि होने का उपदेश । जलों में मेंडक के तुल्य सर्वोपरि और स्वच्छन्द, निर्भय होने का उपदेश । (पृ० ६२९–६३१)

सू० [१६७]—इन्द्र और लिङ्गोक्त देवता । राजा के समान आत्मा का वर्णन । (२) विजयी आत्मा से समस्त कामनाओं की पूर्त्ति की अभिलाषा । (३) सर्वशासक प्रभु के अधीन रह कर हम सब ऐश्वर्य का भोग करें । (४) आत्मा को स्वच्छ कर उसके दर्शन का उपदेश । (पृ० ६३१–६३३)

सू० [१६८]—वायु । वायुवत् महारथी का वर्णन । (२) वायु और स्त्रियों के तुल्य सेनापति और सेनाओं के कर्त्तव्य । अध्यात्म में आत्मा और प्राणों का वर्णन । (३) वायुवत् तेजस्वी राजा का वर्णन । (४) प्राणात्मा का वर्णन । परमेश्वर के पक्ष में योजना का स्पष्टीकरण । (पृ० ६३३–६३६)

सू० [१६९]—गौएं । गो-सम्पत्ति के प्रति शुभ कामना । परमेश्वर से उनके लिये सुख दया याचना । श्लेष से गौओं, भूमियों का वर्णन । पक्षान्तर में आचार्य की वाणियों का वर्णन । (४) प्रभु से गौओं, वाणियों द्वारा उत्तम ज्ञान, सन्तान, सुख आदि की याचना । (पृ० ६३६–६३८)

सू० [१७०]—सूर्यवत् प्रभु से पोषण की प्रार्थना । (२) ज्योतिर्मय प्रभु का वर्णन । (पृ० ६३८–६४०)

सू० [१७१]—इन्द्र। प्रभु से रक्षा की प्रार्थना। (२) प्रभु से दुष्टों को दण्ड देने की प्रार्थना। (४) गिरे को पुनः उठाने की प्रार्थना। (पृ० ६४०–६४१)

सू० [१७२]—उषा। उत्तम गृहिणी के कर्त्तव्यों का उपदेश। गृहस्थ यज्ञ का उपदेश। (३) प्रजातन्तु को धारण करने का उपदेश। स्त्री को उषावत् गृह को सुप्रसन्न बनाए रखने का उपदेश। (पृ० ६४१–६४२)

सू० [१७३]—राजा की स्तुति। राजा का सर्वत्र भ्रमण, उसकी स्थापना उसका द्रढीकरण। राजा को स्थिर, दृढ़ होने का उपदेश। (३) उसको उत्तम वेदज्ञ का उपदेश। (४) प्रजाओं के धारक राजा को ध्रुव होने का उपदेश। (५) राष्ट्र के धारण करने वाले पुरुष का वर्णन। (६) राजा के सहयोगी बलाध्यक्ष का कर्त्तव्य। (पृ० ६४२–६४४)

सू० [१७४]—राजा की स्तुति। अभीवर्त्त हविष् का वर्णन। राज्यकर्म के साधक सेनापति, महारथ, सैन्यादि अभीवर्त्त हैं। (२) उनके है कर्त्तव्य, प्रयाण। (३) राजा का अभीवर्त्त स्वरूप। (४) शत्रु-रहित ऐश्वर्य होने का साधन। (५) शत्रु पराजयकारी होने का लक्ष्य। भीतरी ६ शत्रुओं पर विजय का उपदेश। सूक्त की अध्यात्म योजना। (पृ० ६४५–६४७)

सू० [१७५]—ग्रावगण। उत्तम विद्वानों और वीरों के कर्तव्य। वे योग्य पदों पर नियुक्त हों। (२) वे अज्ञान और दुर्बुद्धि का नाश करें, बल धारण करें। (४) प्रजा के हितार्थ राजा उन वीरों विद्वानों को सन्मार्ग में चलावे। (पृ० ६४७–६४८)

सू० [१७६]—ऋभुगण। सूर्य की किरणों के तुल्य विद्वानों के

कर्त्तव्य का वर्णन। (२-३) अग्नि जातवेदा। वेदज्ञ विद्वान् का अग्नि के समान वर्णन। (पृ० ६४७–६५०)

सू० [१७७]—माया-भेद। जगन्निर्मात्री शक्ति से व्यक्त हुए परमेश्वर के स्वरूप का साक्षात्कार। (२) आत्मा का वर्णन। उसका गुरु द्वारा शिष्य को उपदेश। रक्षक प्रभु वा आत्मा का दर्शन। (पृ० ६५०–६५२)

सू० [१७८]—तार्क्ष्य। विद्युत्-तत्त्व का निरूपण। पक्षान्तर में योग्य नेता का वर्णन। प्रभु के तुल्य गुण। विद्युत् के द्वारा यन्त्रों का प्रयोग उनसे आकाश स्थलादि का विवरण। अतिशीघ्र अदम्य वेगवान् विद्युत् का वर्णन। पक्षान्तर में तार्क्ष्य आत्मा। पांच कृष्टि पांच इन्द्रियगण। शर्या युवति का रहस्य। (पृ० ६५२–६५४)

सू० [१७९]—इन्द्र। राजा के कर की व्यवस्था। (२) राजा का मित्र राजाओं के साथ व्यवहार। गृहस्थ की भोजन-व्यवस्था। (३) मध्याह्न सूर्यवत् राजा के कर-ग्रहण का प्रकार। (पृ० ६५४–६५५)

सू० [१८०]—इन्द्र। राजा का शत्रु-विजय। (२) शत्रुनाश का प्रकार। (पृ० ६५५–६५९)

सू० [१८१]—विश्वेदेव। मेघ से विद्युत् आदि प्राप्ति का उपदेश। ज्ञान-पक्ष में गुरु से विद्या प्राप्ति का उपदेश। (२-३) प्रभु और गुरुओं से ज्ञान-प्राप्ति। (पृ० ६५७–६५८)

सू० [१८२]—बृहस्पति। महान् ब्रह्माण्ड के प्रभु से संकटमोचन की प्रार्थना। इसी प्रकार राज्यपालक प्रभु के कर्त्तव्य। (२) मार्ग-दर्शक के कर्त्तव्य। अग्रणी नेता के कर्त्तव्य। (पृ० ६५९–६६०)

सू० [१८३]—यजमान पत्नी। होत्राशिषः। (१-२) पुत्र-कामना

सू० [१९०]—भाववृत्त। अघमर्षण सूक्त। तप से ऋत, सत्य की उत्पत्ति। उससे जगत् का प्रादुर्भाव। प्रभु का अनादि प्रवाहयुक्त जगत्सर्ग (पृ० ६७०–६७१)

सू० [१९१]—अग्नि। संज्ञान। प्रभु का वेदवाणी रूप में प्रकाश। ऐश्वर्यों की याचना। (२) मनुष्यों को मिलकर चलने, एक समान मन वाणी रखने, और एक समान देवोपासना करने आदि का उपदेश। (३-४) सबके विचार, संगति, ज्ञान, संकल्प, मन के अभिप्राय, हृदय और बैठना आदि सब एक समान रहने का उपदेश। (पृ० ६७१–६७३) इत्यष्टमोऽध्यायः। इत्यष्टमोष्टकः॥ इति दशमं मण्डलम्॥

इति ऋग्वेद-विषयसूची समाप्ता॥

भाष्यकर्त्तुरुपसंहारवचनम् (१-२)
